मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास हिन्दी पुष्पमाला—८

कविवर गुमानी मिश्र

कृत

कृष्ण-चन्द्रिका

सम्पादक

तक्षशिला-काव्य, विक्रमादित्य, दाहर अथवा सिन्धपतन, शकुन्तला नाटक, सूरदास के दृष्टिकूट आदि पुस्तकों के रचयिता एवं टीकाकार

श्री उदयशङ्कर भट्ट

प्रकाशक

मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास

हिन्दी संस्कृत पुस्तक विक्रेता

सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर

प्राक्कथन

बुन्देलखण्ड कवियों की भूमि है। कविकुल चूडामणि गोस्वामी सीदास को उत्पन्न करने का गौरव इसी प्रदेश को प्राप्त है। महाकवि ाव ने ओड़छा दरबार को अलंकृत किया था। कविवर बिहारीलाल ने लखण्ड में ही अपना बाल्यकाल बिताया था।

इसी कवि-प्रसवा भूमि में श्री गुमानी मिश्र भी हुए हैं। इन्होंने णचन्द्रिका नामक उत्कट काव्य द्वारा अमरत्व प्राप्त किया है। साधारण- हिन्दी-साहित्य में गंगा-यमुना-स्वरूपिणी राम-कृष्ण की दो प्रेमधाराएँ हैं, उन दोनों धाराओं को प्रवाहित करने का श्रेय इन्हीं उपर्युक्त कवि- वों का प्राप्त है। जहाँ गोस्वामी जी ने रामचरितमानस द्वारा अवधी श्रित ब्रजभाषा को साहित्य की भाषा बना डाला वहाँ कृष्णभक्ति की रा ने केवल ब्रजभाषा को साहित्य के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया। नी मिश्र की कृष्णचंद्रिका भी कृष्ण-साहित्य की परम्परा में एक विशेष न रखती है, ऐसा मेरा विचार है। इसकी शैली भी अन्य कृष्ण- हित्य से भिन्न है। कृष्ण-चरित्र अधिकांश रूप में पदों में ही लिखा गया परन्तु इस पुस्तक में केशव की रामचंद्रिका की भाँति बदलते हुए हैं जो पाठक के मन में एक सुखद वैभिद्य उत्पन्न कर देते हैं। इस में : सभी प्रकार के वर्णिक-मात्रिक छंद आये हैं, जिनके द्वारा पाठक शास्त्र का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। फिर काव्य का तो कहना क्या, वह तो काव्यधारा में एक प्रकार की तरंगायित उथल पुथल पैदा देती है तथा कवि की कविता-कल्लोलिनी मानसिक काव्य उल्लास को बरबस ोर कर देती है।

कवि ने श्रीमद्भागवत का अनुकरण किया है, इस से इसकी कथा ब
प्रामाणिक है। इसके वर्णन बड़े सरल, स्वाभाविक और सरस है। इ
प्रकृतिके वर्णन विशेष कर जो महारास के सम्बन्ध में हैं, बहुत ही र
हैं। इसका वर्षा वर्णन गोस्वामी जी के वर्णन से बहुत कुछ मिलता जुल
है क्योंकि दोनों ही कवियों ने श्रीमद्भागवत की छाया ली है।

इस काव्य के अध्ययन को सुलभ बनाने के लिये विद्वान् सम्पादक
छंदा के लक्षण भी बड़ी स्पष्टता और सरलता के साथ बतला दिये हैं। पु
के प्रारम्भ में एक विस्तृत और विवेचना पूर्ण भूमिका भी दे दी है।
में ब्रजभाषा साहित्य पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। योग्य सम्पाद
ब्रजभाषा की लिपि और उच्चारण पर जो विचार प्रकट किये हैं, वे
करने योग्य हैं। अन्त में विद्यार्थियों के लाभार्थ कठिन शब्दों की ता
भी दे दी गई है। पुस्तक में वर्णन की अपेक्षा सिलसिले का ध्यान र
सम्पादक ने छंद अपने फुटनोट के साथ नीचे दिये हैं।

ऐसी महत्त्व की पुस्तक को प्रकाश में लाकर श्री भट्टजी ने ब्रज
भाषियों का बड़ा उपकार किया है। ब्रजभाषा में ऐसे बहुत से रत्न हैं
को प्रकाश में लाना प्रत्येक समर्थ हिन्दी प्रेमी का कर्तव्य है। अन्त
श्री भट्ट जी को बधाई देता हूँ कि उन्होंने अपने सम्पादकत्व के का
बड़े उत्तरदायित्व के साथ पूरा किया है।

बुन्देलखण्ड से मेरा प्राय: बीस वर्ष सम्बन्ध रहा है, इसलिय
उस भूभाग से विशेष प्रेम है। बुन्देलखण्ड के एक श्रेष्ठ कवि के सम्ब
मुझ से दो अक्षर लिखवा कर भट्टजी ने मुझे जो गौरव दिया है
लिए मैं उनका विशेष रूप से अनुगृहीत हूँ।

नागरीप्रचारिणी सभा, **गुलाबराय (एम. ए.)**
आगरा। (भूतपूर्व प्राइवेट सेक्रेटरी, छतरपुर सी.
१।१२।३४.

भूमिका

आज से कोई दस साल पहले की बात है। वर्षा की ऋतु थी और साँझ का झुटपुटा। मैं अपने बन्धुओं के साथ छतरपुर की बाहरी सड़क पर सैर करने जा रहा था। पुष्पों से मुस्कराती हुई पवन इठला रही थी। आनन्द की सुधा धारा में नहाये हुए पुष्प कलियों से किलोलें कर रहे थे। नई कोंपले उन के मानमनौवल को चुप चाप ध्यान मग्न होकर सुन रही थीं। तरुराजि थके हुए पथिक की भाँति विश्राम ले रही थीं। मेघ अस्थिरचित्त कामी की तरह पार्थिव प्रकृति के चुम्बन को झुके से पड़ते थे। सब ओर सन्नाटा था, किन्तु हम सब अपनी अपनी धुन में किसी अज्ञात दिशा की ओर पैर बढ़ाये चले जा रहे थे। हठात् मेरे एक बन्धु ने कहा "इसी प्रकृति के साम्राज्य में कवि पैदा होते हैं"।

मैंने जैसे चौंककर कहा—"निस्सन्देह।"

बात चीत का सिलसिला चल पड़ा।

"केशव और विहारी की जन्मभूमि यही है।"

मैंने जैसे कुछ सुना नहीं। "अरे आप इतने ध्यानमग्न हैं जो हमारी बात सुनते भी नहीं।"

"क्या मुझ से कुछ कहा आपने ?" मैंने उधर मुँह फेर कर कहा।

"नहीं तो और किस से !"

"कहिये !"

वे बोले—"हाँ, याद आगया। मेरे पास "कृष्णचन्द्रिका" नामक पुस्तक की हस्तलिखित प्रति है। बड़ी सुन्दर कृति है।"

मुझे जैसे किसी अज्ञात बेचैनी ने आकर दबोच लिया हो। मैंने कहा—आपके पास हस्तलिखित प्रति!

जी हाँ, बहुत सुन्दर पुस्तक है। देखते ही लोट पोट हो जाइएगा!

ऐसा क्या! इतना कहते हुए मेरे पैर जैसे वहीं ठिठक गये। अब तो मुझे आगे चलना दूभर होगया। रह रह कर पैर पीछे की ओर पड़ते थे। आखिर मैंने कहा—चलिये, वह पुस्तक देखी जाय।

जरा और आगे न चलें, क्या सलाह है; बड़ी सुन्दर ऋतु है। उन के इतना कहने के साथ ही टप टप करके दो बूँदें मेरे चश्मे पर गिरीं। मैंने कहा देखो, बारिश के आसार हैं। इधर बादल भी घिर रहे हैं, घर ही क्यों न लौटा जाय!

हम लोग लौट पड़े।

उस रात मुझे नींद नहीं आई। एक अपूर्व पाण्डुलिपि हाथ लग गई थी। उसे खतम किये बिना मुझे चैन कहाँ! उसे रात मैंने सारी पुस्तक समाप्त कर डाली। कविता क्या थी कहीं कहीं तो अमृत के घूँट थे। ... ... निस्सन्देह, यह अपूर्व पुस्तक है।

इसी लिये तो पन्ने पलटते आँखों में रात कटी! मेरे साथी ने कहा। जैसे तैसे वह पाण्डुलिपि मैंने उनसे माँग ली। मुझे खेद है कि मेरे अथक यत्न करने पर भी पुस्तक अभी तक प्रकाशित न हो सकी और अब उसके प्रकाशन की बारी आई।

विषयप्रवेश

मूल पुस्तक की कत्थई खद्दर की जिल्द के दूसरे पृष्ठ पर मोटे अक्षरों में लिखा है "गुमानी मिश्रकृत कृष्णचंद्रिका"। इतिहास में गुमानी नाम के कई कवि हैं।

परन्तु इनके ग्रन्थ द्वारा जो कुछ ज्ञात होता है पहले उसी का उल्लेख करना आवश्यक है। दुर्भाग्य से मेरे पास कृष्णचंद्रिका की जो प्रति है उस में वंश भाग गायब है। कवि के वंश का जो कुछ भाग छिन्न भिन्न अवस्था में मिला, वह इस प्रकार है :—

...न के पद बन्दि के सब का भला मनाइ ।
कछुक बंश बर्नन करौं नाम सग्राम सुहाय ॥ ७१ ॥
नगर महेबा बसत हैं विप्र त्रिपाठी जान ।
तिन में द्विज गोपालमनि प्रभुपद में सज्ञान ॥ ७२ ॥
चारि पुत्र तिनके भये चारि चारु सुखदेन ।
हरि आइस गिरि पर र... ... ॥ ७३ ॥

इससे आगे का भाग फटा है। फिर ७६ वें पद्य में इस प्रकार पाठ है :—

... ... नद ।
क्रस्नचंद्र की चन्द्रिका रचहुँ सुमति स्वच्छन्द ॥ ७६ ॥
तिनि लघु नाम अमान जे सहनसील परबीन ।
गुरु गुरुजन हरिभक्ति में रहत सदा लवलीन ॥ ७७ ॥
बसु गुन बसु ससि ठीक दै यह संबत निरधार ।
मधु माधव सित पक्ष की त्रयोदसी गुरुबार ॥ ७८ ॥
ताही दिन नँदनंद पद बन्दि महा आनंद ।
क्रस्नचन्द्र की चन्द्रिका रची सुमति स्वच्छन्द ॥ ७६ ॥

मूल पुस्तक में केवल यही कवि का परिचय है। इससे मालूम होता है कि गुमान महेबा नगर के रहने वाले त्रिपाठी ब्राह्मण थे। गोपालमणि इनके पिता का नाम था। उनके चार पुत्र थे। कृष्णचन्द्रिका के रचयिता के एक भाई का नाम अमान था। कवि ने १८८३ वसन्त ऋतु, वैशाख मास, त्रयोदशी बृहस्पतिवार के दिन पुस्तक निर्माण प्रारम्भ किया।

नागरी प्रचारिणी सभा की रिपोर्ट में लिखा है "गुमान कवि के पिता का नामगोपालमणि था। ये 'महोबा' के रहने वाले थे। इनके तीन भाइयों का नाम दीपमणि, खुमान और अमान था। इन्होंने 'छन्दाटवी' नामक एक और ग्रन्थ भी बनाया था।"

रिपोर्ट में दो ही बातें खटकने वाली हैं। वह है गुमान का महोबा निवासी होना और छंदाटवी का निर्माण। मूल पुस्तक में लेखक ने अपने गाँव का नाम महेबा लिखा है। मुझे इस के संबन्ध में जाँच करने पर

मालूम हुआ कि कवि का गाँव महेबा ही था, महोबा नहीं। कवि द्वारा निर्दिष्ट महेबा आज कल बुन्देलखण्ड की पन्ना रियासत में है। यह स्थान छतरपुर से १२ मील है और महोबा ३४ मील। महोबा हमीरपुर जिले में एक तहसील है। शायद महेबा का ठीक ज्ञान न होने से रिपोर्ट में महोबा लिख दिया गया है।

जार्ज ए. ग्रियर्सन और शिवसिंह सरोज का कथन भी अप्रामाणिक है। इन दोनों ने क्रमशः इस प्रकार लिखा है:—

He is possibly the same auther Guman Kavi mentioned by Shiv Singh as born in 1731 and the auther of a work entitled Krishna Chandrikā.

"माडर्न वर्नाकुलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान"

शिवसिंह ने शिवसिंहसरोज में गुमान कवि का समय १७८८ लिखा है। परन्तु पुस्तक के आधार पर दोनों प्रमाण अयुक्त ठहरते हैं। छंदाटवी का उल्लेख ग्रन्थ में तो कहीं मिलता है नहीं। रिपोर्ट में छन्दाटवी के बारे में और कुछ नहीं लिखा। कृष्णचन्द्रिका भी छंद शास्त्र का एक ग्रन्थ है। इस की बनावट से मालूम होता है कि कवि छंदशास्त्र के पूर्ण पंडित थे। उन्होंने छंदाटवी ग्रन्थ भी लिखा होगा। वह ग्रन्थ कृष्णचंद्रिका के बाद ही लिखा गया होगा, ऐसा मेरा विचार है। अन्यथा छंद लक्षण निर्धारण करते समय गुमानी उस का उल्लेख अवश्य करते।

कृष्णचन्द्रिका

यह काव्य सत्ताईस प्रकाशों में बटा हुआ है। आरम्भ में प्रायः सभी देवी, देवता, ग्रह और अवतारों की स्तुति दोहा, सोरठा और यत्र तत्र कवित्तों में की है। यह प्रकाश इनकी कविता का अच्छा नमूना नहीं है। तौ भी भक्ति भाव अधिक है। अन्त में गुरुजन बन्दना तथा वंश परिचय है। इसी में यह प्रकाश समाप्त हो जाता है।

दूसरे प्रकाश में राजा परीक्षित का शिकार खेलने जाना और प्यास से पीड़ित होने के कारण किंकर्त्तव्य-विमूढ होकर तप करते हुए एक मुनि के

गले में मरा हुआ साँप डाल देना, घर आकर अपने किये पर पश्चात्ताप करना, इधर ऋषिपुत्र का किसी के द्वारा पिता के गले में पड़े हुए मृतक साँप का समाचार पाकर साँप डालने वाले को शाप देना, ऋषि का अपने किसी शिष्य द्वारा यह समाचार राजा के पास पहुँचाना, राजा का पुत्र को राज देकर गंगा के किनारे आना और ऋषियों से कथा-प्रसंग द्वारा कृष्ण के जीवन का कीर्तन सुनना आदि कथाएँ वर्णित हैं।

विशेषताएँ

(१) नवीन छन्द और उनके दोहों सोरठों में लक्षण।

(२) भाषा पर प्रकाण्ड अधिकार।

(३) गंगा के किनारे का मनोहारी वर्णन। इस वर्णन में कवि की प्रकृति परीक्षणशीलता का सुन्दर परिचय मिलता है। उस का थोड़ा अंश यहाँ दिया जाता है।

पद्धटिका

नरनाह मंत्र मन में बिचार, ऋषि शाप मृषा नहिं सत्यसार।
न्रप सुहृद बंधु मंत्रिन बुलाइ, सुत राजभार सौंप्यौ सुराइ॥
मुनिब्रंद संग दुज ज्ञानत्रान, सुचि सेवक अज्ञा सावधान।
उर उपजि बिमल बैराग्य आइ, चलि आसन रची सुधुनी जाइ॥
थल पुन्य पाल पावन अपार, जस लोक लोक कीन्हें प्रचार।
जनु मुक्ति भुक्ति आकर अनूप, तहँ देत देह दुति दिव्य रूप॥
जलधार सुगसरनी सुरेस, दिवि आरोहन सोहन सुबेस।
जलु छीयत पीयत हीतल जुडाय, फिरि तपन ताप पातक छुडाइ॥
उठि लहरि छटा तट परति आइ, कन परत प्रबल दुर्मद नसाइ।
सुख रहत बारिचर बारि लीन, छवि उछल छहर छहरात मीन॥
तहँ प्रफुलि कमल डुलि झुकत झौर. करहाट गंध लै उडत भौंर।
मधु भरतु ढरतु जल मिलतु जाइ, रज उडति सुमन धुंधर मचाइ॥
कलहंस ललित कुल कलित वाक, थिर करत तरल चित चक्रवाक।
जल परस पवन सीतल सुचाल, मिलि दरद दवागिनि बुझति ज्वाल॥
तन मज्जत मुनिजन गुन गँभीर, तप करत तपोधन परम धीर॥

वर्णन में माधुर्य है। कितना स्वाभाविक वर्णन है, उत्प्रेक्षाएँ कितनी सुन्दर हैं !

(४) राजा परीक्षित के पूर्वजों के गुणगान तथा महाभारत का चित्र खींचते हुए श्रीकृष्ण की महत्ता का वर्णन भी बहुत रोचक है। इसमें महाभारत का खाका खींचकर कवि ने वीररस का अच्छा दिग्दर्शन कराया है। वर्णन पढ़ने योग्य है।

मुझे इस प्रकाश में एक त्रुटि मालूम होती है। वह केवल इसी प्रकाश में नहीं सम्पूर्ण ग्रन्थ में पाई जाती है। वह यह है कि कवि ने भूतकालवाची 'राख्यौ' के लिये आज्ञा और विधि के रूप में 'राखियौ' का प्रयोग किया है।

तीसरे प्रकाश में पाप के भार से आक्रान्त होकर पृथ्वी का ब्रह्मा की शरण में जाना, ब्रह्मा का सब देवताओं के साथ क्षीरसागरशायी भगवान् के पास जाकर प्रार्थना करना, भगवान् का सन्तोषजनक उत्तर देना, वसुदेव के विवाह में कंस का संताप आदि बातों का वर्णन है।

वर्णन साधारण, कहीं चमत्कारपूर्ण, कंस का देवकी के प्रति भाव, मनुष्य-गत क्रूर चरित्र का दिग्दर्शन, बहिन समझ कर उसका आदर आदि विशेषताएँ है।

कवि ने 'प्रश्न' शब्द को स्त्रीलिङ्ग माना है। यथा—

'मुनि नरेस की प्रश्न सुनि उमगि प्रेम उर आइ।

(३ का पूर्वार्द्ध, तृतीय प्रकाश)

चतुर्थ प्रकाश में, नारद के उपदेश से वसुदेव देवकी को कारागृह में डाल देना, उनकी दुःखजनक दशा, चतुर्भुज रूप में भगवान् का दर्शन देना, उनके पूर्वजन्म की कथा, पुत्रोत्पत्ति, पुत्रस्नेह के कारण आँधी पानी की पर्वाह न करके कृष्ण को गोकुल पहुँचाना, यमुना का भयंकर प्रवाह, यशोदा की सद्योजात कन्या को लाना, कन्या का कंस द्वारा शिला पर पटक

कर मारा जाना आदि विषय वर्णित हैं। कृष्ण का स्वरूप बड़े सुन्दर और सुमधुर शब्दों में वर्णन किया गया है। यथा :—

सिर पुरट मुकट छवि धृत उदंड, मनिजटित जोति को टिन प्रचंड।
सुभ भाग्य भाल सोभा नरिन्द, मृगदान बिन्दु निन्दक मिलिन्द।
भ्रूभंग भाल अवलीन ऐन, रहि अमल कमल दल नवल नैन।
कच कुंच मेच चिकने अबंध, जे सने दिव्य सौरभ सुगंध।
मनि किरन मकर कुंडल बिलोल, छवि गिलत उगल गौरव कपोल।
सुक तुंड मंडि नासा सुकोस, झल झलत खुलत जनु जलज जोस।
छवि अधर सधर रंग चुवत लाल, बंधूक दूब बिम्बा प्रबाल।
दवि दसन दीप्ति दमकत सुदेस, जनु कुंद कुलिस कर निकर बेस।
मृदु मंद हास हुलस्यौ हुलास, सुख सिन्धु सींव कीन्हौं प्रकास।
ठोडी सुरूप द्रग ठहरि बाढि, मनु परिव गडि को सकहि काढि।
कल कम्बु कंठ लावरय चारु, तहँ कौस्तुभ किरनोदय उदारु।
सुभ वच्छ लच्छ भ्रगु पद रसाल, मनि मुकुलि मल्लिका मुक्तमाल।
भुज चारि चारु आलम्ब चारि, दर पद्म गदा कर चक्र धारि।
अज्ञान बाहु मनि गहु बंध, उन्नत बिसाल मनि बंध कंध।

वर्णन बहुत लम्ब है। प्रत्येक पद की योजना नपी तुली और भाषा भावानुरूप है। शब्दविन्यास भावों को मानो अपने आप खींच कर नेत्रों के सन्मुख रख देता है। आगे चलकर देवकी की स्तुति में वेदान्त के विशद शब्दों का प्रयोग किया गया है। वे शब्द अनुचित नहीं मालूम होते। अंधकार का वर्णन और यमुना का अप्रतिहत रूप से प्रवाहित होना बड़े भयंकर शब्दों में दिखलाया गया है। भयानक रस का अच्छा परिपाक है। एक तरफ पुत्र का स्नेह दूसरी तरफ प्रकृति की प्रकाण्ड प्रचण्डता कवि के शब्दों ही में पढ़ने लायक है। इस प्रकाश में कवि के करतव अच्छे और अभ्यस्त हैं। फलतः प्रकाश अच्छा है। भाषा परिमार्जित है।

पाँचवें प्रकाश में पुत्र जन्मोत्सव, कंस का कृष्ण के जन्म की खबर पाना, पूतना, सकट और तृणावर्त्त आदि राक्षसों का मारा जाना आदि विषय

कहे गये हैं। इस में वृद्ध नंद के आनंद का उद्रेक, नगर निवासियों की खुशी, स्त्रियों के स्वरूप आदि का वर्णन बड़ा सुन्दर है। कवि ने भोले भाले भावुक स्त्री पुरुषों का बड़ा हृदयग्राही और सुन्दर वर्णन किया है। स्त्रियों की सजावट और कृष्ण के स्वरूप को देख कर उनके मुग्ध हो जाने का वर्णन अत्यन्त रमणीय है। उसके थोड़े से अंश से ही स्त्रियों के चरित्र और तद्विषयक कवि की बहुज्ञता का आभास मिल जाता है:—

मालिनीः—मृदु तन बर बेली, संग सोहैं सहेली।
भुज भुज गहि झेली, काम की कोक चेली।
मदन कल कलासी, अंग सोभा प्रकासी।
छवि तड़ित लतासी, सोहती मंद हाँसी।
सुख बस मुख खोलैं, जातु राकेस जोलैं।
मधुकर मधु डोलैं, कंज के कोस भोलैं।
उर भरि छविसाला, मंडती मुक्तमाला।
मुखरित सुरजाला, किंकिनी रव रसाला।
कटितर दुति दैनी, डोलती चारु बैनी।
कलरव पिकबैनी, गीत गावैं सुनैनी।
झल झल झल सोहैं, देखि को हैं न मोहैं।
धुनि सुनि मुनि छोहैं, मंजु मंजीर जोहैं।

इस मालिनी की माला से स्त्रियों के सौन्दर्य में अपूर्वता, नवीनता आगई है। अनुप्रास, शब्द विन्यास का खासा चमत्कार है।

छठे प्रकाश में गर्ग मुनि का आना, कृष्ण के भविष्य का कथन, कृष्ण का मिट्टी खाना, मुख में ब्रह्माण्ड देख कर यशोदा को ज्ञान होना, दूध पीने की इच्छा से माता के पास दही की मटकियाँ फोड़ना, ऊखल से बाँधा जाना, यमलार्जुन वृक्ष गिराना, वृक्षों का टूट कर गिरना आदि विषयों का सुन्दर वर्णन है। इस में बालकृष्ण के स्वरूप और उन की क्रीडा का भी अच्छा वर्णन है।

सुधामधुरः—

कनक मनिमय मनहिं मोहत, परम सुन्दर अजिर सोहत।
मृदुल पगतल लसत लालन, झकत उझकत करत चालन॥
हँसत किलकत लखत छाँहिय, उर उमाह न भरत वा हिय।
जुगल तन फवि धूरि धूसर, अतुल छवि उपमा न दूसर॥
कच झडूले झलकि झूमत, उडत अलि फिरि घुमडि घूमत।
अखिल छवि आनन अखंडित सरद ससि जनु अमिय मंडित॥
पय बदन द्वै रदन राजत, बिसद छवि वि वि बीज छाजत।
बचन कल कल कहत तोतल, अम्रतरस ससि अवत सोतल॥
कंठ कठला मनहिं मोहत, बज्र मिलि नख सिंघ सोहत।
मुखन रसना चलत चालिय, काम दूती वाकजालिय॥
रुनित नूपुर कुनित पाइन, हंस सुत सुर चढे चाहन।
पद पद्म नख की नवल राजिय. मनहुँ मिलि नखतालि साजिय॥

यशोदा का दधिमंथन बड़े मनोहर शब्दों में कहा गया है। रचना बड़ी स्वाभाविक और प्रतिपद मधुर है।

छप्पयः— रजु खैंचति भुज धारि भार मचकत भुज बैनी।
रुरत ढुरत उरहार झरत सुमननि की श्रैनी॥
चंचल करनाभरन कनक कंकन कर खनकत।
श्रमजल झलकत चलत अंग भूषन छवि छलकत॥
घाँघर घुमंडि झूमत झहरि उडतु सुपट फहराति लहरि।
घन गरज घमंडत माठ दधि घम घमातु घमकतु घहरि॥

स्वभावोक्ति तथा श्रुत्यनुप्रास का समुच्चय है। एक एक वाक्य में रस सा छलक रहा है। आगे यमलार्जुन वृक्षों के पतन द्वारा भयानक रस तथा तज्जन्य भीषणता का वर्णन अति सुन्दर है।

मज़ा तो यह है कि कवि ने भिन्न विषयों के वर्णन में भिन्न भिन्न छंदों का आश्रय लेकर भी विषय प्रतिपादन में कमाल कर दिखाया है।

त्रिभंगीः—

जहँ जननी डरके चितवत छरके सूध नजरिके बिटप लगे।

खै ऊखल ररके नंद महरि के तन मन भरके ख्याल पगे ॥
चलि पहुँचे तट के जब द्रुम अटके गहि पद झटके जोसभरे।
त्यौं मूलन चटके लटपट लटके तब छिति पटके रोसधरे ॥
तरु टूटत चरके झरमर झरके फिरि भरभर के भूमि परे।
धर थल थल धरके लोग नगर के थर थर थरके चौंकि परे ॥
तहँ उर सब नर के इमि खरखर के जनु घनतर के झरप तहाँ।
जे गिरत न सरके ग्रह सब वर के को कहि हर के गुननि महाँ ॥

कितनी सानुप्रासिक भाषा है! चूल से चूल मिला दी गई है। कहीं जरासा भी छिद्र नहीं है। यह प्रकाश अन्यापेक्षा अधिक चमत्कार पूर्ण है।

सातवें प्रकाश में कृष्ण का दामोदर नाम पड़ना, वृन्दावन वास, बकासुर अघासुर आदि राक्षसों का मारा जाना है। इस में कृष्ण के बालोचित स्वरूप का अभिनव वर्णन बहुत सुन्दर है। वृन्दावन की शोभा का वर्णन भी अच्छा है। साधारणतया राक्षसों के मारने के समय कृष्ण का स्वभावतः गंभीर होना तथा उन महाकायों का विकट आक्रमण प्रशस्य है।

आठवें प्रकाश में ब्रह्मा द्वारा कृष्ण के सखा तथा बछड़े आदि का अपहरण, कृष्ण का अपनी योगमाया द्वारा उन सबका निर्माण, ब्रह्मा का अपनी भूल समझकर पश्चात्ताप और कृष्ण की स्तुति आदि का वर्णन है। विषय वर्णन सुन्दर है।

नवम प्रकाश में वन की शोभा, धेनुक राक्षस का मारा जाना, काली नाग का मान मर्दनादि विषयों का रसानुसार भाषा में वर्णन है।

वनवर्णन

मन्दक्रान्ताः—प्यारी प्यारी मृदु द्रुमलता मंजु रंजै नवेली।
देखौ झूमैं मिलि सुमन कौं स्वच्छ गुच्छै न वेली ॥
फूले फूले नव बिटप ते पुष्प सौ भूरि भारैं।
मानौ चाहैं तव चरन लै चूमि पै सीस धारैं ॥

शिखरिणीः—लखौ फूले फूले जिन पर भ्रमैं भौर सरसैं।
उडैं दौरैं भौंरे भरि भरि रमैं रंग बरसैं ॥

महामाते बोलैं परिभ्रत खरीं कूक करतीं।
किधौं खोलें तेरे बिसद जस कौं मोद भरतीं॥

शार्दूलविक्रीडितः—कालिन्दी उठती अनंद करती देखौ तरंगें घनी।
तैसी सोहति है बयारि बहती मीठी सुगंधी सनी॥
राजैं जे अरबिन्द वृन्द बिकसे लै मत्त भृंगै जहाँ।
फूली हैं नव मल्लिका पुलिन में बाढ़ें सुगंधै महाँ॥

दो०:—डुलत सुमन मधु श्रवत तहँ धुंधर उडत पराग।
बहतु गंध अलि बंध जे लेत उमगि अनुराग॥

प्रातःकाल का वर्णन

मनहरनः—

जब रवि कर निकर जगत जग मग जग खग कुल कलरव करत महाँ।
तहँ प्रफुलित अमल कमल मिलि मधुव्रत मधुरस भरि भरि भ्रमत तहाँ॥
उठि रिखि मुनि बिपुल बिसद हरि गुन करि निगम अगम गुन धुननि करैं।
जहँ सुनि जगि जगत जनक जगपति लखि जगजन प्रमुदित हृदय भरैं॥

कालीदह वर्णन भी सुन्दर है।

नौ प्रकाश तक ही नवीन छंदों में रचना की गई है। आगे दशमप्रकाश से उन्हीं पिछले छंदों में कथा वर्णित है। इस प्रकाश तक करीब सवा सौ छंद आगये हैं। वर्णिक मात्रिक सभी तरह के छंद हैं। सारांश यह कि पिङ्गल के आधे के करीब छंदों का इस में समावेश होगया है। इस में जितने भी पद्य आये हैं सब में छंदों के लिहाज से सुन्दरता आगई है।

दशम प्रकाश में कालीनाग के रमनक छोड़ने का कारण, ग्रीष्मऋतु की प्रचंडता, प्रलम्बासुर का बध, जंगल में प्रचंड आग का लगना, श्रीकृष्ण का अग्निपान आदि विषय कहे गये हैं। इस प्रकाश में ग्रीष्म की प्रचण्डता का नमूना देखिये :—

छप्पयः—ऊक फूटि दस दिसनि छूटि झारन पर झारनि।
धूम घूमि नभ चढिव धाइ धारनि पर धारनि।

अग खेचर गन जरत सरब खरबर भय भग्गेय ।
सोवत ब्रज जन सकल सोर सुनतन उठि जग्गेय ।
लखि उवाल माल चहुँघा फिरिव हूह कूह किन्हिय नरन ।
घनस्याम राम रक्षा करहु दहन दाह पीडा हरन ।

चंचरीः—आइ ग्रीषम तेज तीषन भानु भीषम देखिये ।
मंडि भू नभ खंड मंडल कौं तच्यौ अवरेखिये ।
तप्त वेग प्रचंड ह्वै चलि सो प्रभंजन आइकैं ।
रूंध रूंधि दिसानि पूरत धूर धूरनि धायकैं ।
सूर वोजन की जलाकनि जक्क कौ उरतापहीं ।
बासु जे ब्रज में करहिं तिनकौं प्रतापु न व्यापहीं ।

अग्नि का वर्णन भी पठनीय है ।

नाराचः—दसौं दिसानि में कृसानु भार भार धाइकैं ।
प्रचंड मंडि ब्यौम लौं सिखी सिखा बढाइकैं ।
झझाइकैं झकोर झोक उग्र ऊक फूट हीं ।
महा भयान भीम रूप सौं भभूक छूटहीं ।
सधूम देखिये अकास धुन्ध रुन्ध जाइकैं ।
दिसानि द्वार दाबियौ सगाढ बाढ छाइकैं ।
सँसातु पौन साँइ साँइ सबँरातु धावही ।
प्रकोप भौंरि भभँरातु झर्झरातु आवही ॥
अनादि चट चटातु पटपटातु बेनु जाल सौं ।
चिरारि चर्चरातु तर्तरातु है तमाल सौं ॥
फलादि फूटि टूटि झूमि भूमि पै परे तहाँ ।
उडैं फुलिङ्ग लैंफि गैल गेरिकैं फिरैं महाँ ॥
समूल भस्म भूत होत अग्नि के अकूत सौं ।
अँगार उल्क आदि दारु होत तेज तूत सौं ॥
हुँकारि हूँक दे कपीस कूदहीं उछाह सौं ।
चिहारि चीह घुघुंरात है बराह दाह सौं ॥

गँग।इ व्याघ्र साँस रूँध धूम्र जोर सौं उठैं।
उद्गार लेत झार सौं बिहाल भूमि पै लुठैं॥

वर्णन में भीषणता है, व्याकुलता है, तज्जन्य वेदना का अच्छा चित्रण है।

ग्यारहवें प्रकाश में वर्षा और शरद का वर्णन है। प्रकृति के मनोहारी चित्र खीचने में कवि ने इसमें कमाल कर दिया है। यह वर्णन तुलसी-दास जी के शरद्वर्णन से बहुत मिलता जुलता है। मैंने इस प्रकाश में तुलसी-दास जी के रामचरित मानस की चौपाइयाँ देकर दोनों का मिलान किया है। पाठक वहाँ देखेंगे। अन्तर केवल इतना ही है कि गुमानी जी ने पद्य अच्छा चुना है। गुमानी जी के पद्य में बहुत विस्तार है, अनुप्रास है और है माधुर्य। इस दृष्टि से इन का वर्षा और शरत् वर्णन अच्छा हो गया है। कहीं कहीं गोस्वामी जी के समान पथ पर चलकर इन्होंने उन के भावों में नवीनता सी उत्पन्न कर दी है। प्रकृति वर्णन में यह प्रकाश अत्युत्तम है। बात यह है कि दोनों ही कवियों ने भागवत की छाया लेकर प्रकृति वर्णन किया है, इसी लिये दोनों की छायापहारी कविता है। इन के शरद्वर्णन का थोड़ा सा नमूना देखिये :—

चतुरंसा:—देखत वन सोभा तहँ मन लोभा बिमुख कदंब विकासे।
लिपटी द्रुमबेली मंजु नवेली प्रफुल प्रसून प्रकासे॥
द्रवतीं मधु धारैं सौरभ भारैं लखि आनँद मनपागे।
चहुँ दिसिते दौरैं भरि भरि भौरैं मधुब्रत मधु अनुरागे॥
जमुना जल लहरैं उठ तट छहरैं हंस किलोल बिहारी।
तहँ परसत कंजन आवत रंजन पवन सुगन्धन बारी॥
जहँ तहँ खग डोलत कलरव बोलत कुंजन कुंजन माहीं।
ठाडे प्रभु सुनहीं हिय सुख लहहीं सघन ब्रज की छाहीं॥

शरत् के सौन्दर्य में कृष्ण की वंशी पर मुग्ध होकर स्त्रियों की अस्तव्यस्त अवस्था का वर्णन भी अच्छा है।

बारहवें प्रकाश में साधारणतया वर्णन अच्छा परन्तु अन्यापेक्षा सामान्य है। इसमें वस्त्रहरण लीला, माथुर लोगों की यज्ञ क्रिया, कृष्ण

का भोजन माँगना, पुरुषों द्वारा अनादर पाकर स्त्रियों से माँगना आदि कथाएँ हैं।

तेरहवें प्रकाश में नंद द्वारा इन्द्रयज्ञ का आयोजन, श्रीकृष्ण का उसकी पूजा रद करके गोवर्धन की पूजा कराना, इन्द्र का कोप, महावृष्टि और गोवर्धन की शरण लेना आदि कथाएँ हैं। इस प्रकाश में महा-वृष्टि की भयंकरता पठनीय है।

त्रिभंगी:—

घन पर घन धाये चहुँ दिस छाये सो झपि आये भूमि महाँ।
बिज्जुल की चमकनि घन की घमकनि झंझा झमकनि झरप तहाँ॥
करि करि बल भारैं अति रिस धारैं छोड़त धारैं जल सोऊ।
बुन्दन अरराहट मिलि सरराहट मिलत न आहट कहुँ कोऊ॥
लागी अँधियारी तम अधिकारी नर भय भारी भभरि रहे।
येकनि इक टेरैं लखहिं न हेरैं गिरि भट भेरैं भूलि रहे॥
गौवें अकबकतीं चल नहिं सकतीं सीतहि कँपतीं दुखित जहाँ।
तहँ गोप पुकारैं हिय भय धारैं होत कहारे प्रलय महाँ॥
गोपी कर मींडैं जब सिसु हींडैं तब तन पींडैं धाइ धरैं।
भरि भरि तिनि अंकनि करि करि संकनि लचकत लंकनि लचकि परैं॥
सीदैं नहिं थोरी पवन झकोरी नवल किसोरी दुख दरसैं।
बिछुरी पिय संगनि निचुरी रंगनि लिपटे अंगनि बसन लसैं॥
बिगलति तहँ बैनी चकित सुनैनी बिथुरी सैनी सुमन झरैं।
छूटे सो बारन टूटे हारन भूषन भारन पग न परैं॥
आवैं नहिं कहने गिर तन गहने साँसत सहने सुख दलकैं।
तमकैं तड़ितासी कनकलतासी दीपसिखासी तन झलकैं॥

भुजंगप्र:—

उदै भार आये भरे अम्बु भारे परे टूटि कैं जे धरा धूमधारे।
करैं रोस सौं घोसके घोघ छंडे महा वृष्टि उत्पात पविपात मंडे॥

कहूँ कौन पै आइ आकूत भाखें दिसाद्वार धुंआनि सौं रूँधि राखें।
उठैं चंचला के चहूँ चमचमाटे उठैं चौंधिकैं हैं कहूँ झलझलाटे॥
उठैं मेघ के नाद के तर्तराटे उठैं आइकैं जे धरा धर्धराटे।
उठैं बूँद के पात पै पर्पराटे उठैं सो हवाके झरा झर्झराटे॥
उठैं पूरकैं दूरतैं घर्घराटे उठैं अम्बु पाषान के गर्गराटे।
उठैं जुल्मुकाते फिरे हर्हराटे उठैं बिस्व में देखिकैं खर्भराटे॥

सारांश यह कि वर्णन सुन्दर है । प्राकृतिक शब्दों का विन्यास भी सुन्दर और बामुहाविरा है ।

चौदहवें प्रकाश में इन्द्र का पश्चात्ताप, श्रीकृष्ण की स्तुति आदि विषय वर्णित हैं । यह प्रकाश साधारण है ।

पन्द्रहवें प्रकाश में शरद वर्णन, रासलीला, श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों की प्रेमपरीक्षा आदि है। यह प्रकाश बहुत ही सुन्दर है । श्रीकृष्ण का सौन्दर्य्य, गोपियों के अंग वर्णन में बहुत ही चमत्कार आ गया है। यह प्रकाश सोलहवें प्रकाश से सम्मिलित समझना चाहिये। दोनों में रासलीला का ही वर्णन है । वर्णन बहुत लम्बा है, अतः उसका उदाहरण नहीं दिया जा सकता । रास लीला के लिये यहाँ एक अलग छंद की कल्पना की गई है । छन्दःप्रभाकर में 'रास' नामक एक छंद है, परन्तु छन्दःप्रभाकर के छंद से इस का लक्षण नहीं मिलता । सम्भवतः यह छद कवि की नवीन कल्पना ही होगी ।

सत्रहवें और अठारहवें प्रकाश में इन दोनों के अवशिष्ट भाग का ही वर्णन है, अतः यह भी उसी का एक भाग है । इस में गोपियों की विरह दशा का चित्र अच्छा है ।

उन्नीसवें प्रकाश में दूसरी बार रास लीला का वर्णन है । रचना दृष्टि से यह प्रकाश अत्यन्त उत्तम है । कवि की कृति का यह अच्छा नमूना है।

बीसवें प्रकाश में शंखचूड़ मणि का अपहरण वर्णित है । यह साधारण है ।

इक्कीसवें प्रकाश में वृषभासुर का व्रज में आकर ऊधम मचाना, कंस का

सचिवों के साथ मंत्रणा करना, केशी राक्षस का कृष्ण को मारने आना आदि कथाएँ वर्णित हैं। प्रकरण सामान्य है। युद्ध वर्णन अच्छा है।

बाईसवें प्रकाश में अक्रूर का कृष्ण को राजसभा में ले जाना, कृष्ण की महिमा, ग्राम वासियों की अवस्था आदि का वर्णन है।

कथा प्रसंग की भाषा अच्छी है। अक्रूर का जमुना में स्नान करते हुए कृष्ण स्वरूप का देखना बहुत ही सुन्दर है।

तेईसवें प्रकाश में श्रीकृष्ण का मथुरा प्रवेश, नगर का दृश्य, सैरन्ध्री से मिलना, रजक का मान मर्दन, कुवलयापीड हाथी को मारना आदि कथाएँ कही गई हैं। यह प्रकाश कहीं कहीं बहुत मनोरम है।

चौबीसवें प्रकाश में चाणूर आदि मल्लों से युद्ध, कंस को मारना आदि प्रसंग है। इस में कुश्ती के दाँव पेच का वर्णन अच्छा है। युद्ध वर्णन भी घटिया नहीं है।

पच्चीसवें प्रकाश में माता पिता से मिलना, राजा उग्रसेन का अभिषेक, श्रीकृष्ण और बलराम का यज्ञोपवीत संस्कार, गुरु के घर पढ़ने जाना, गुरु दक्षिणा में उनके पुत्र को ढूँढ कर लाना आदि कथाएँ हैं। प्रकरण सामान्य है।

छब्बीसवें प्रकाश में उद्धव का व्रज में आना, नंद, यशोदा और गोपी जनों को संदेश देना, उनका विलाप, उचित सान्त्वना आदि वर्णित हैं। यह प्रकाश विरह वर्णन के कारण सब में मुख्य हैं। इस के कुछ पद्य सूर-दास से मिलते हैं। छंद भिन्न हैं। भाषा कहीं कहीं टकराती है। तो भी इस प्रकाश में कविता के तत्त्व का अच्छा निचोड़ है। इधर उद्धव का वेदान्तो-पदेश, चर और अचर की नश्वरता, संसार की अनित्यता। उधर गोपियों का प्रेमोन्मत्त होकर वेदान्त की चर्चा का प्रतिवाद आदि विषय बड़े सुन्दर हैं। कहीं बनावटीपन की बू नहीं है। भाषा और भाव ोनों चोखे और अच्छी तरह रखे गये हैं। कहीं कहीं वर्णन इतना उत्कृष्ट है कि पढ़ने वाला मंत्र-मुग्ध सा हो जाता है। गोपियों द्वारा कृष्ण के अनुराग का चित्र इतनी अच्छी तरह खींचा गया है कि पढ़ते ही बनता है। प्रेम के उद्रेक में गोपियों के कथन

असामान्य हैं। विप्रलम्भ शृंगार का उदाहरण प्रात पद पर व्यक्त होता है। मैं यहाँ उसका उदाहरण न देकर पाठकों से अनुरोध करूँगा कि वे सम्पूर्ण प्रकाश पढ़ने का कष्ट उठाएँ।

सत्ताईसवें प्रकाश में श्रीकृष्ण द्वारा अक्रूर का पाण्डवों की खबर लेने जाना, विदुर, कुन्ती का कृष्ण को संदेश, अक्रूर का धृतराष्ट्र को नीति उपदेश, उनका उत्तर आदि कथाएँ वर्णन की गई हैं। इस में पाण्डवों की अवस्था तथा दुर्योधनादि की कुटिलता का वर्णन अच्छा है। नीति का उपदेश भी सार गर्भित है। इस प्रकार सत्ताईस प्रकाश में यह ग्रन्थ समाप्त होता है। अन्त में एक फल स्तुति भी है।

संस्कृत और हिन्दी साहित्य में प्रेम की अवतारणा कृष्ण से हुई है। इस से पूर्व प्रेम की परिभाषा पर इतना जोर कभी नहीं दिया गया। भक्ति एवं प्रेम का स्वच्छ प्रवाह कृष्ण के जीवन से चला। रामानुज, माध्व, वल्लभ और निम्बार्क आदि आचार्यों के शिष्यों ने हिन्दी और संस्कृत साहित्य को भक्तिरस से परिप्लावित कर दिया। उन्होंने परतंत्र देश में भक्ति की स्रोतस्विनी प्रवाहित करके सांसारिक लोगों में मोक्ष की कामना उत्पन्न कर दी। यहाँ उसी रूप पर कुछ विचार करना अप्रासंगिक न होगा।

प्रेम का स्वरूप

कुछ पाश्चात्य विद्वानों का विचार है कि हिन्दी तथा संस्कृत के शृंगार सम्बन्धी निबन्धों और काव्यों में सांसारिक प्रेम की उलझनें और अत्यन्त चरित्रहीन कल्पनाएँ ही पाई जाती हैं। प्रेम का विशुद्ध रूप इन ग्रन्थों में नहीं दीख पड़ता। एक अंश में यह बात सत्य हो सकती है। वह यह कि बहुत से नाटकों तथा काव्यों में विवाह सम्बन्ध तक ही नायक नायिका के विभ्रम और विलास होते हैं। परन्तु उन नाटकों के लेखकों का दृष्टिकोण मनोविनोद ही है। वहाँ विप्रलम्भ शृंगार की परिधि भी विवाह ही है। परन्तु धार्मिक वाता-वरण के दृष्टिकोण से भवभूति, दिङ्नाग आदि के नाटकों में सांसारिक प्रेम की

झलक नहीं हैं। वहाँ सीता और राम तथा अन्य पात्रों का प्रेम विशुद्ध है। वह प्रेम आध्यात्मिक है, भौतिक नहीं। इसी तरह कृष्ण साहित्य के साथ साथ प्रस्तुत पुस्तक में जहाँ कहीं भी गोपियों के विरह का कवि ने वर्णन किया है वहाँ वह प्रेम लौकिक नहीं है। उसका सम्बन्ध है अध्यात्म विभूति और चिरस्थायी मानसिक उद्वेग से। यहाँ गोपियों ने जो विलास परिहास रूप में रासलीला की है उस में पति पत्नी भाव, काम वासना तृप्ति और अचिरस्थायी प्रेमालाप का लेश भी नहीं है। वह विशुद्ध और हार्दिक प्रेम का निदर्शन है। उस में विलास की छाया नहीं, आत्म-परितुष्टि का प्रकाश है। लोलुपता नहीं, प्रेम का सात्त्विक उद्रेक है। सच तो यह है कि कवि ने कृष्ण को परमात्मा कह कर गोपियों में लौकिक भावना ही नहीं उत्पन्न होने दी। जो लोग इस रहस्य को न समझ कर कृष्ण और गोपियों के चरित्र को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं वह उनका दृष्टिकोण वस्तु से भिन्न है। फलतः प्रस्तुत प्रबन्ध में गुमानी ने इस प्रेम परिपाक को अच्छी तरह निबाहा है।

इसके अलावा प्रेम की अवस्थाओं के कई भेद हैं। भारतीय भक्तों ने प्रेम की सभी अवस्थाओं में भगवान् को देखा और पाया है। यदि मीरा ने पति रूप में भगवान् की उपासना की है, तो सूरदास, चैतन्य महाप्रभु आदि लोगों ने उसे मित्र, सखा, ईश्वर कहकर उसकी उपासना की है। मेरा विचार है कि सांसारिक प्रेम के जितने रूप हो सकते हैं उतने ही रूपों और भावों से भक्त अपने भगवान् का चिन्तन करता है। उनके विचार के अनुसार आखिर यह संसार भगवान् की प्रेरणा का फल है, उसकी इच्छा का चमत्कार है तो फिर भीतरी बाहरी रूप भिन्न किस प्रकार हो सकता है?

ऐसी जगह पाठक के दृष्टिकोण में अन्तर हो जाता है। निर्गुणोपासना और सगुणोपासना का उद्देश्य केवल एक ही है। इसी निर्गुणोपासना में जहाँ हम कबीर को पागल और मस्त फिरते देखते हैं। वहाँ सगुणोपासना करने वाले सूरदास और चैतन्यमहाप्रभु भी कुछ कम पागल नहीं थे।

बाबा मलूकदास ने एक जगह क्या ही अच्छा कहा है:—

दर्द दिवाने बावरे अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा ले रहे ऐसे मन धीरा॥
प्रेम पियाला पीवते बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूमते ज्यों माता हाथी॥
उनकी नजर न आवते कोइ राजा रंका।
बंधन तोड़े मोह के फिरते निहसंका॥
साहब मिलि साहब भये कहुँ रही न समाई।
कह मलूक तिस घर गये जहँ पवन न जाई॥

कैसा अल्हड़पन है। इनके सामने इन्द्र का वैभव तिनके के समान है, विश्व की विभूति भस्म के समान है, सागर की कल्लोल तरंगों पर हँसते, पर्वतों के शिखरों पर विहार करते और निस्तब्ध निशीथ में अनहद नाद का नीरव गान सुनते हुए इन्हें कौन सी संसार-सम्पदा वशीभूत कर सकती है। इनका काल्पनिक जगत् भी वास्तविक है।

इसी लिये कबीर ने कहा है :—

नैना की करि कोठरी पुतली पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारि कै पिय को लिया रिझाय॥

कितनी अच्छी सगुणोपासना है। गोपियों के प्रेम में भी तो यही विचार था। उनके हृदय में भी तो ये ही विशुद्ध सात्त्विक भाव काम करते थे। इसी प्रकार गुमानी मिश्र ने भी गोपियों की परवशता और मोह का नकशा खींचा है :—

खग मोहे मृग मोहे नग मोहे नाग मोहे
पन्नग पताल मोहे धुनि सुनि जासुरी।
सुर मोहे नर मोहे सुरन सुरेस मोहे
मोहि रहे मुनि के असुर अरु आसुरी।
भनत 'गुमान' कहा मोहिबे को बानि कहु
चर औ अचर मोहे उमँग हुलासुरी।
गोपिन के वृन्द मोहे आनँद मुनिन्द मोहे
चंद मोहे चंद के कुरंग मोहे बाँसुरी।

मोहि रह्यौ ब्रह्माण्ड सब जाकी धुनि सुनि कान।
ता मुरली की कथा को कहि सके 'गुमान'॥

इस संसार व्यापिनी मोहिनी शक्ति से कौन बच सकता है! यह है प्रेम की छोटी सी कथा, जिसके सामने संसार के आचार, व्यवहार, आदर्श पानी भरते हैं।

प्रेम की इसी साधना में भक्त कवियों की कल्पनाएँ उड़ती हैं। इसी में उन्होंने संसारचक्र के कोल्हू से निकले स्नेह के समान अजस्र स्नेह की अमृतधार का पान किया है। इसी विश्वचक्र से प्रेम की धारा टपककर संसार में प्रेम, करुणा, दया और सौन्दर्य का संचार करती है। गोपियों का वही प्रेम था। और वह था शुद्ध सात्त्विक, करुणापूर्ण, हृदय की आधि व्याधियों से सर्वथा मुक्त उज्वल आलोक। कबीर ने इसी प्रेम के स्वरूप पर कहा है :—

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भुँइ धरै तब बैठे घर माँहि॥
सीस उतारै भुँइ धरै तापर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहे ऐसा हो तो आव॥

प्रकीर्ण वर्णन

छंदःक्रम—कृष्णचंद्रिका में दोहों के बाद सोरठा जरूर आया है। पुस्तक में कोई कोई स्थल ऐसा भी है जहाँ इस नियम का पालन नहीं किया गया। अन्यथा पुस्तक में यह क्रम अनिवार्य सा है। छंदों के लक्षण प्रायः दोहों में हैं, कहा सोरठों में भी छदों क लक्षण लिखे गये हैं। परन्तु बहुत थोड़ी जगह ऐसा हुआ है। मालूम होता है दोहे की बनावट सुगम है इसी लिये ऐसा किया गया है। सोरठा छंद दोहे का उलटा स्वरूप है, अतः वह भी इसी सुगमता के कारण काम में लाया गया है।

ढंग—कवि ने प्रत्येक प्रकाश के प्रारम्भ में उस प्रकाश की मुख्य कथा का वर्णन कर दिया है। कहीं कहीं मुख्य कथा का वर्णन प्रारम्भ में नहीं मालूम होता। कदाचित् उन कथाओं को कवि ने उपकथा समझ कर उनका

उल्लेख नहीं किया, तोभी उस प्रकाश में आने वाली कथाओं का प्रसंग वर्णन है जरूर । ज्ञातव्य विषय की जानकारी के लिये यह क्रम है अच्छा । इससे कवि ने पाठकों की सहूलियत का ध्यान रखा है । अन्त में वर्णित कथा प्रसंगों का उल्लेख करके विषय को और भी स्पष्ट कर दिया है । दोनों हालतों में यह काम अच्छा हुआ है । यह क्रम बहुत कम पुस्तकों में पाया जाता है । परन्तु यहाँ इस प्रकार का ध्यान रखना कवि का ग्रन्थ लेखन पाण्डित्य सूचित करता है ।

लक्षण—कहीं छंदों के लक्षण उसी छंद में दिये गये हैं । पर यह क्रम दो एक स्थानों के अतिरिक्त कहीं नहीं पाया जाता । यदि यह क्रम सभी जगह होता तो पुस्तक की उपादेयता अधिक बढ़ जाती । शायद काठिन्य के कारण ऐसा नहीं हो सका है ।

छंद—छंदों के विषय में यही कहना है कि कवि का ज्ञान इस विषय में बहुत ही उत्कट है । प्रत्येक नये निर्दोष छंद रखकर उनके उदाहरणों द्वारा कथा के प्रसंग को न टूटने देना वस्तुतः बड़ी योग्यता का काम है । केशवदास की रामचंद्रिका से कवि को इस विषय में अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा है । परन्तु जिस प्रकार इन्होंने अपने विषय को निबाहा है, वह भी कम प्रशंसनीय नहीं । यद्यपि कई स्थान ऐसे भी हैं जहाँ छंदों के लक्षण अन्य शास्त्रों से भिन्न लिखे हैं तोभी वे स्थान मौलिकता के लिहाज से ग्राह्य हैं । इससे यह भी स्पष्ट है कि कहीं कहीं वे नियम कवि को अग्राह्य हैं । इससे तो इनके छन्दःशास्त्र विषयक ज्ञान की और भी पुष्टि होती है । इस में निम्नलिखित छंद हैं :—

दोहा, छप्पय, सोरठा, रूपमाला, कवित्त, हरिगीतिका, पद्धटिका (पद्धटि), संयुता, चतुष्पदी, चंचरी, सुमुखी, चामर, दोधक, उपेन्द्रवज्रा, स्वागता, भुजंगप्रयात, षट्पद, लक्ष्मीधर, सारंग, तोटक, वंशस्थ, इन्द्रवंशा मधुभार, तोमर, शालिनी, सुंदरी, प्रमिताक्षरा, मोदक, दंडक, मरहठा, कुसुमविचित्रा, मोतीदाम, तारक, कन्दु, पंकावलि, झूलना, मालिनी, वसन्ततिलका, कुंडलिया, निशिपालिका, अरिल्ल, चरणानुकूल, पद्मावती,

चक्रपद, मत्तगयंद, चम्पकमाला, भ्रमरावलि, नाराच, श्रवणसुखद, मनहंस, लीला, सुधामधुर, चंचला, पृथ्वी, क्रीड़ा, चतुरंसा, वर्णगीतिका, मंथानु, शंखनारी, सारवती, त्रिभंगी, मालाधर, हंस, चंद्रमाला, मालती, भुजगशिशुभृता, मणिबंध, हरिपद, चौपाई, चौपई (दूसरी), समानिका, सुवासिका, करहची, वसुमती, प्रमाणिका, मल्लिका, महालक्ष्मी, कुमारललिता, मदलेखा, विद्युन्माला, तुंगा, कमल, दुर्मिला, प्लवंगम, उद्धति, मानवक्रीडा, सारंगिका, चौबोला, हाकलि, चित्रपद, मोटनक, स्रग्धरा, पाइत्ता, कमला, बिम्ब, गगना, हलमुखी, उपजाति, सुखमा, पादाकुलक, आभीर, दीपका, सिंहावलोकित, मत्ता, मदिरा, सेनुका, चुलियाला, धवला, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित, मदनहरा, निसानी, लालवती, किरीट, सवाई, नरेन्द्र, हंसी, मनहरन, श्लोक,चकोर, चंद्रकला, विजय, द्वितीय त्रिभंगी, रास ।

कुछ छंद के अन्य नाम भी छंदोग्रन्थों में मिलते हैं ।

व्रजभाषा की लेखन और उच्चारणप्रणाली :—

यहाँ व्रजभाषा के रूप पर भी कुछ विचार करना आवश्यक जान पड़ता है । पिछले दिनों व्रजभाषा ने ही हिन्दी साहित्य की कीर्ति-कौमुदी अक्षुण्ण कर दी थी । अब तो नहीं, हाँ, कुछ समय पहले इस बात के कहने में बहुत कुछ वजन था कि यदि व्रजभाषा का साहित्य हिन्दी से निकाल दिया जाय तो वह 'पंगु' और श्रीहीन हो जायगी । जहाँ गोस्वामी तुलसीदास जी की सर्वतोमुखी प्रतिभा ने रामचरितमानस जैसे साहित्यरत्न का प्रणयन किया वहाँ सूरदास, नाभादास, नंददास, छीतस्वामी और बिहारी आदि कवियों ने इस साहित्य में चार चाँद लगा दिये । खेद है कि उसी व्रजभाषा की लिखावट के सम्बन्ध में अभी तक कोई उचित निर्णय नहीं हो पाया । आधुनिक कुछ पुस्तकों में व्रजभाषा की प्राचीन लिपि से बहुत अन्तर है । जो शब्द उच्चारण की दृष्टि से किसी और रूप में लिखे जाने चाहिये वे न जाने क्यों एक और ही रूप में लिखे गये हैं । उदाहरण के लिये सूर-सागर के गोपी-उद्धव संवाद का एक पद कविता-कौमुदी में इस प्रकार लिखा गया है :—

गोवर्द्धन प्रभु आ निके ऊधो पकरे पांइ ।
ऊधो ब्रजको नेम प्रेम बरनो सब आइ ॥
(कविता कौमुदी पृष्ठ १२६)

इस जगह 'ऊधो' 'ब्रजको' 'बरनो' ये तीन शब्द विचारणीय हैं। ब्रजभाषा में 'ऊधो' कहीं भी नहीं बोला जाता। वहाँ 'ऊधौ' एक प्रकार का 'ओ' और 'औ' के बीच का अर्धविवृत स्वर बोला जाता है। जैसा- 'औरत' 'औसत' 'औलाद' के 'औ' का उच्चारण है ठीक वैसा ही 'ऊधौ' का उच्चारण है। कुछ खास शब्दों को छोड़ कर प्रायः औ विभक्त्यन्त शब्द इसी तरह बोले जाते हैं। इसी प्रकार 'ब्रजको' की जगह 'ब्रजकौ' होना चाहिए। 'बरनो' भी ब्रजभाषा की दृष्टि से अशुद्ध है।

संस्कृत का असली शब्द 'उद्धव' है। सुबन्त और सन्धि कर देने पर 'उद्धवो' प्राकृत के रूप में आता है। अपभ्रंश भाषा में 'उद्धउ' और 'उद्धवु' रह जाते हैं। ध्वनि विकार से आखिरी 'उद्धवु' के 'वु' का उच्चारण कुछ कम हो जाता है उस में 'व' ऊष्मत्व रहित (disaspirate) होकर 'उद्धउ' रह जाता है।

उसी ध्वनि की सहूलियत के लिये उस में से 'द्' का लोप हो जाता है, और लुप्त 'द्' उद्धवु के 'उ' को दीर्घ कर देता है। ऐसी अवस्था में 'ऊधउ' ब्रजभाषा का रूप रह जाता है। अब इस 'ऊधउ' शब्द पर विचार कीजिये कि इस का उच्चारण किस प्रकार होगा। मालूम होता है साहित्यिकों ने इस शब्द के अन्तिम 'उ' के स्थान पर 'औ' को निश्चित रूप से लगा दिया और वह शब्द आखिर में 'ऊधौ' बना। एक और उदाहरण देकर मैं अपने विषय को स्पष्ट करूँगा। संस्कृत में 'काल' शब्द को सुबन्त बना कर 'कालः' बनाया गया। सन्धि के बाद वह 'कालो' बना। वही प्राकृत में 'कालओ' बना। अपभ्रंश में उसी का रूप हमें 'कालउ' मिलता है। ब्रजभाषा में 'ल' का प्रायः 'र' कर दिया जाता है। इस नियम से वह 'कारउ' बना। अब 'कारउ' को साहित्यिक दृष्टि से 'कारौ' तो लिख सकते हैं किन्तु 'कारो' लिखना

नितान्त अस्वाभाविक जान पड़ता है। इसी नियम से 'ताकौ' 'याकौ' 'जाकौ' ये व्रजभाषा के प्रयोग ठीक मालूम होते हैं। रिवरेन्ड एस, एच, कीलोग ने A Grammar of Hindi Language में Pronominal Adjectives बतलाते हुए 'इतनौ' 'इतौ' 'याकौ' ताकौ' व्रजभाषा के प्रयोग दिये हैं। प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में उपरोक्त प्रयोग ही पाये जाते हैं। भक्तमाल के रचयिता नाभादास रचित भक्तमाल में पृष्ठ ११ पर लिखा है :—

"जाकौ जो सरूप जो अनूपलैं दिषाइ दियौ
कियौ यों कवित्त पट मिही मद्ध लाल है।"
"सब संतन मिलि मत कियौ मथि श्रुति पुरान इतिहास।
भजिबै कौं दोइ सुघर कैं हरि कैं हरिदास।"

इसी प्रकार भक्तमाल की भक्तिरस बोधिनी टीका के ३ पृष्ठ पर लिखा है :—

"मानसी सरूप में लगे हैं अग्रदास जू वे
करत बयारि नाभा मधु रस भारसौं।"
"बोल्यौ कर जोर याकौ आवत न ओर छोर,
गाऊं राम कृस्न नहीं पाऊं भक्ति दावकौ॥"

इन पुस्तकों में भी 'जाकौ, दियौ, कियौ, भजिबै, कौं, कैं, भारसौं, दावकौ आदि स्पष्ट बतला रहे हैं कि व्रजभाषा में ये ही शब्द उच्चारण की दृष्टि से ठीक हैं। परमानंद दास के कुछ पदोंवाली पाण्डु लिपि में भी इसी प्रकार के पाठ हैं :—

"जाकौ मन राम चरण अनुरागी।
जीवन जनम सुफल भयौ ताकौ सोइ परम बड़भागी॥" (३ पृष्ठ ७०)
बिरह बिन नहीं प्रीति कौ षोज।
... ...
हौं जानति हौं अपने पिय की।

लै उठाइ हस्त अम्बुज करि लोचन निरषि तौ कठ लगाइ ।
बहुत बिचार कियौ चित्त अंतर यह उपरते किहि छिटकाइ ॥
(५१ पृष्ठ)

ऊधौ जी अब हरि कहा करयौ ।
राम काज चित दियौ साँवरे गोकुल क्यौं बिसरयौ ।
जौ ला घोष रहे तौ लौं हम संतत सेवा कीनी ।
बारक कबहुं अलूषल पर से यहै मान जिय लीनी ॥ (१ पद)

इन पदों की पाण्डुलिपियों में रेखांकित शब्द आजकल लिखे जाने वाले शब्दों से सर्वथा भिन्न हैं । न मालूम क्यों हिन्दीशब्दसागर जैसे बृहत् कोश में भी इन शब्दों को स्थान नहीं मिला । हाँ, स्वर्गीय श्री जगन्नाथ दास रत्नाकर के उद्धव शतक में व्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग ठीक है ।

"साधि लै हैं जोग के जटिल जे विधान ऊधो ।"
"अब जो कहो तौ कहैं कछू व्रजबाला हू ॥ " (पृष्ठ ६२)

इन्होंने कवित्तों में व्रजभाषा के उच्चारण के अनुसार शब्दों का प्रयोग किया है । इससे मालूम होता है रत्नाकर जी ने व्रज के उच्चारणानुसारी शब्द लेखन पर अधिक ध्यान दिया था ।

हिन्दी के विद्वानों से मेरा विनम्र निवेदन है कि वे व्रजभाषा के इस रूप पर भी विचार करें । और उच्चारण की दृष्टि से उन शब्दों को जैसा का तैसा रहने दें । कृष्णचन्द्रिका में व्रजभाषा का यही रूप है ।

इन बातों को लक्ष्य में रखते हुए मैंने कृष्णचन्द्रिका की पाण्डुलिपि में फेरफार नहीं किया ।

भाषा

कृष्णचन्द्रिका की भाषा पूर्णरूप से व्रजभाषा कही जा सकती है । एकाध जगह बुंदेलखंडी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया गया है । वृष्टि, आँधी, अग्निदाह के वर्णन में ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग किया गया

है। कुछ प्रयोग तो अपभ्रंश भाषा के भी हैं। साहित्य की दृष्टि से इस प्रकार के प्रयोग उत्तम काव्य में नहीं गिने जा सकते। भाषा सरल कहीं कहीं क्लिष्ट तो भी सुबोध है। मालूम होता है इन्होंने भाषा को सुन्दर बनाने की चेष्टा की है, परन्तु कृत्रिमता नहीं आने पाई है। कहीं कहीं शब्दों के प्रयोग बहुत ठीक बैठाये गये हैं। मुहाविरे एकाध जगह को छोड़ कर प्राय ठीक हैं। शब्दालंकारों के ऊपर विशेष ध्यान दिया गया मालूम होता है। इन की भाषा में प्रायः सब ही शब्दालंकार आगये हैं। क्लिष्ट कल्पना की मात्रा नहीं के बराबर है। ठूसाठूस कहीं भी नहीं है। कहीं कहीं एकार्थ-वाची दो शब्दों का प्रयोग किया है। फलतः इनकी भाषा संस्कृत मिश्रित परन्तु सुन्दर, सरस और सरल है। देशी भाषा के शब्दों का प्रयोग भी अखरने वाला नहीं है। इतनी सुन्दर और सरस वाक्य-योजनाएँ कम ही देखी गई हैं। यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि कवि का भाषा पर प्रकाण्ड अधिकार था। मिश्र-बन्धुओं ने इनको पद्माकर की श्रेणी में रखा है। मेरे विचार से कवि की सब से उत्तम कृति वही है जिसमें काव्य के गुण, अलंकार सौष्ठव तथा रसों का यथास्थान अच्छा चमत्कार हो। जिस विषय का आरम्भ किया जाय उसको अन्त तक अच्छी तरह निभाया जाय। पद्माकर के विषय में यही कहा जाता है कि वे भाषा के पूर्ण पंडित थे, परन्तु भावों की रक्षा में उन्हों ने अधिक ध्यान नहीं दिया। उनकी भाषा चमत्कार पूर्ण होती थी। भाव शिथिल थे। इस कसौटी से परखने पर गुमानी मिश्र इन से कुछ बढ़े चढ़े मालूम होते हैं। इन्होंने भाषा के साथ भावों को भी सुरक्षित रखा है। यह कवि की कृति का दोष नहीं है कि भाव के साथ उसकी भाषा भी सुघड़ बन जाय। इसलिए गुमानी जी कम से कम कृष्णचन्द्रिका के लिहाज से साधारणश्रेणी के शब्दशास्त्री ही नहीं अपितु पूर्ण कवि थे।

कवि-प्रकृति

कवि की प्रकृति के विषय में उन के ग्रन्थ से यही मालूम होता है कि वे धार्मिक प्रकृति के पुरुष थे। इन्हों ने कृष्ण के विपक्षियों को बुरे शब्दों

में याद किया है। दुष्ट, छलिया, अज्ञानी आदि शब्दों का प्रयोग मौके मौके पर किया है। (२) श्रीकृष्ण को परमात्मा सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। (३) विपक्षियों से भी श्रीकृष्ण को ईश्वर सिद्ध कराया है। (४) स्त्रियों को अबला कह कर उनके प्रति अच्छा भाव व्यक्त नहीं किया। गोपियों को 'अहीरी' शब्द से सम्बोधित किया है।

स्वभावचांचल्य

कंस के द्वारा भेजे गए राक्षसों के युद्ध में पुरवासियों, सखा आदि को युद्ध के प्रारम्भ में ही विह्वल बना दिया गया है। जीतने पर खुशियाँ मनाई हैं। नंद और यशोदा द्वारा बार बार ब्राह्मणों को दान दिलाए गये हैं। गंधर्वों, अप्सराओं का नाच कराया गया है।

संस्कृतज्ञान

इन्हों ने कृष्णचन्द्रिका में कठिन से कठिन और सरल से सरल संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है। कहीं इनको बिगाड़ कर देशी भाषा के रूप में उनका प्रयोग किया है। इससे मालूम होता है कि यह संस्कृत के अच्छे पंडित थे।

नीतिकुशलता

पांडवों की खबर लेने के लिये श्रीकृष्ण द्वारा हस्तिनापुर भेजे गये अक्रूर के मुख से धृतराष्ट्र को नीति वाक्य, राज्य संचालन प्रकार, समदर्शिता का अच्छा परिचय दिया है। श्रीकृष्ण और चाणूर के मल्ल युद्ध में उसके दाँव पेच का वर्णन किया गया है।

अनभिज्ञता

इन्हों ने श्रीकृष्ण और बलराम को लेने के लिए मथुरा से वृन्दावन जाने में अक्रूर को बड़े वेग वाले घोड़ों के रथ पर बिठा सुबह से शाम को पहुँचाया है। समझ में नहीं आता कि लिखते समय क्या कवि को इतना भी ज्ञान न रहा जो तीन कोस की दूरी को इतना लम्बा माना।

सारांश यह है कि पुस्तक में दोषों की अपेक्षा गुण अधिक हैं। बल्कि दोष तो गुणों के सामने नहीं के समान हैं।

मूल लिपि के विषय में

पुस्तक की लिपि बहुत ही अशुद्ध लिखी गई है। जहाँ तहाँ कुछ छंद के भाग छूट गये हैं। कहीं कहीं तो उसमें दूसरी स्याही से फिर कुछ लिखा गया है, परन्तु वह बहुत नहीं थोड़ा। मालूम होता है कि पाण्डुलिपि-कार संस्कृत के ज्ञान से शून्य था। उसने प्रति प्रकाश के अन्त में "इति श्री सज्जनकुल कैरव आनन्द ब्रन्द दायिना सरद चन्द्र चारु मरीचिकायां श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिकायां दुज गुमान विरचित ... प्रकासः" लिखकर संस्कृत अनभिज्ञता का परिचय दिया है। मूल पुस्तक रफ कागज़ पर २३४ पृष्ठ में समाप्त हुई है। कहीं कहीं लिपिकार ने छन्दों की गणना में अशुद्धि की है।

मैंने कथा प्रसंग को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये छंद के लक्षण आवश्यकतानुसार फुट नोट के साथ नीचे दे दिये हैं। जहाँ वृत्तरत्नाकर, छंदःप्रभाकर और पिंगल के ग्रन्थों से कवि का मतभेद है, उस का भी उल्लेख कर दिया है। जहाँ तहाँ कवियों के साथ तुलना भी कर दी है। और अन्त में एक शब्दार्थ सूची भी दे दी है।

मैंने इस पुस्तक का सम्पादन करके काव्य मर्मज्ञों के सामने धृष्टता ही की है। वस्तुतः इस पुस्तक का किसी योग्य व्यक्ति द्वारा ही सम्पादन होना चाहिए था, जिस से इसकी कीमत और भी बढ़ जाती; परन्तु साहित्य मर्म-ज्ञों के मौनावलंबन ने मुझे इस बात के लिये मजबूर कर दिया। तदनुसार कवि की आत्मा को सन्तुष्ट करने का यह प्रयास पाठकों के सामने प्रस्तुत है।

पुस्तक के कुछ भाग के प्रूफ देखने में **श्री पं० विजयानन्द खण्डूड़ी शास्त्री** ने मेरी सहायता की है। एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

२४ दिसम्बर १९३४
शिवनिवास, लाहौर

विनयावनत
उदयशंकर भट्ट

विषय-सूची

नवम प्रकाश

दशम प्रकाश

एकादश प्रकाश

द्वादश प्रकाश

त्रयोदश प्रकाश

चतुर्दश प्रकाश

पंचदश प्रकाश

षोडश प्रकाश

सप्तदश प्रकाश

अष्टादश प्रकाश

एकोनविंशति प्रकाश

विंशति प्रकाश

एकविंशति प्रकाश

प्रथम प्रकाश

गणेश स्तुति

दो०—सिन्धुर मुख बंदन भरथौ, बन्दौं पद नख गोत ।
चित चकोर चाहत हियै, हरिजस ससी उदोत ॥ १ ॥

बिघन हरन सब सुभ करन, एक रदन गननाथ ।
दुखदारुन श्रम भ्रम हरौ, देहु ज्ञान गुन गाथ ॥ २ ॥

छ०—बदन सुंड कुंडली उच्च उत्फाल सुमंडन ।
रदनचंद झलमलत श्रवत सीकर श्रमखंडन ॥
उन्मीलन दृग मील करन चल चाल प्रभंजन ।
बिघन अघन दुख गनन सघन घन पटल विभंजन ॥
मनिमान सिद्धि नवनिद्धि लहि बुद्धि सुद्ध पावहि तबहिं ।
गिरिजा कुमार हेरम्ब के रम्य पाँइ बंदहि जबहिं ॥ ३

दो०—बिघन कोटि अघ मोट घटि, सत्रुचोट भय छोट ।
गुनन गोट मिलि जोट सुख लम्बोदर की वोट ॥ ४ ॥

सरस्वती स्तुति

छं०—मनिन तिलक ताटंक तरल, झलझलित अखंडित ।
कबरी भ्रमत मिलिंद इन्दु सुखमा मुखमंडित ॥
मुक्तहार मंदार भुजा भूषन भर भूषित ।
कर बीना बर हसनि कुन्द कलिकनि कलदूषित ॥
सुखमा घमंडि छीरोधि निधि, सरद घटाघन छटापट ।
सुभ हंसवाहिनी दाहिनी सदा बसहु प्रिय मानघट ॥ ५ ॥

दो०—जाके मुख अरबिन्द को, है मकरन्द सुबासु ।
फैलि रह्यौ संसार में बरन विकास प्रकासु ॥ ६ ॥

रूपमा०—तार पर्बत शृंग ऊपर रंगभूमि अमोल ।
बज्र संचित रंजिकै निकसे सुअंस अडोल ॥
पारजातिक बारि जो सुकुमार बेलिन बृन्द ।
फूल फूल पराग में अलि लेत हैं मकरन्द ॥ ७ ॥

शिव स्तुति

व्याघ्रचर्म विचित्र आसन जगत के सुख बान ।
चंद्रसेखर राज ही शिव सर्वमय भगवान ॥
मौलि जूटजटा छटा तडिता विनिन्दित हाल ।
जन्हुजा जल की झलाझल बीचि बीचिन जाल ॥ ८ ॥

कालकूट कराल की लपटें लपेटत गाल ।
बाल इन्दु अमी भर्यौ झलकै झलाझल भाल ॥
रुद्र रूप समुद्र आनन मद्धि सस्मित हासु ।
अग्निलोचन ज्वाल मुद्रित करति छुद्रनि नासु ॥ ९ ॥

बच्छमाल कपाल बिभ्रत अच्छ स्वच्छ बिसाल ।
नाग खालनि चोल सोभित सोभ परम रसाल ॥
बाहु भूरि भुजंग भूषण, भीम भैरव संग ।
उग्रदीपति बन्दिनी, गिरिनन्दिनी अरधंग ॥ १० ॥

भक्तरत्तन कौं करैं प्रभु कोटि कोटिन ताक ।
दुष्टदाहक मुष्टमय तिरसूल पीन पिनाक ॥
भस्मभूषित अंग में नवरस्मि अस्मि प्रकासु ।
अंघ्रि अद्भुत पद्म से तजि छद्म बंदहुँ तासु ॥ ११ ॥

राजहीं त्रिपुरारि तुंबरु तारदै भरितान ।
सिद्ध विद्याधर प्रसंसित अग्र गंध्रप गान ॥
बृद्धि देत समृद्धि सों जग में प्रसिद्धित बानि ।
भूतनाथ अभूत विश्व बिभूति के बरदानि ॥ १२ ॥

मोहि आरत जानि कै प्रभु दीजिये सुख मानि ।
राधिकाजुत क्स्न के गुन सों बसैं उर आनि ॥ १३ ॥

दो०—औढरढरनि महेस की, ताके रहत हमेस ।
धनद सुरेस जलेस सुर चाहत हैं महिसेस ॥ १४ ॥

क०—आधे सों सिन्दूर धूर, आधे दिव्य धुनी पूर-
आधे मनचूड आधे चन्द्र चूड नाधे हैं ।
आधे लाल माल आधे, सोभित कपाल माल-
आधे मुक्त माल आधे बिस ज्वाल साधे हैं ॥

भजत 'गुमान' आधे राग आधे औ बिराग,
आधे बाहुबन्द आधे ब्यालबृन्द बाधे हैं ।
आधे विज्जुछटा आधे सरद घटा से रंग-
ऐसौ मिलि अंग सिवा संभु आधे आधे हैं ॥ १५ ॥

दो०—सिवा संभु अनुकूल है, सुख समूह को मूल ।
आन उदोत हिये करो तन मन उपजे फूल ॥ १६ ॥

स्वामि कार्तिकेय स्तुति

दो०—षटमुख सनमुख होत ही सुख बरसे दुख जाय ।
जिनके चरनन के भजें काहे न बिघन नसाय ॥ १७ ॥

मत्स्य स्तुति

दो०—प्रथम मीन औतार कों पुनि पुनि करौं प्रनाम ।
वेद उधारें असुर तें देवन दीन अराम ॥ १८ ॥

कूर्म स्तुति

कूरम रूप अनूप प्रभु को कहि सके अपार ।
धसत मंदराचल जलधि धरिय पिस्ट पर भार ॥ १६ ॥

बाराह स्तुति

महारूप बाराह कौं बिनऊँ मन सुबिचार ।
जिन धरनी धरि डाढ पर डारेउ असुर बिदार ॥ २० ॥

नृसिंह स्तुति

महासिंह नरसिंहजू हिरनकसिप उरफार ।
राखि लियो प्रहलाद को इमि रच्छो प्रनतार ॥ २१ ॥

छ०—खम्भ फट्यौ अराय, भगे भराय असुर गन ।
कोट कुलिस सम भयो, महारव मनहु कलप घन ॥
पंजन नखन हराय धाय धर हिरनकसिप कर ।
झपट झोक झक झोर दाबि फारिय सुरारितर ॥
जिमि महाबली नरसिंह जू, राखि लियो प्रहलाद जन ।
इमिरोग सोकहर 'मान' के रच्छ रच्छ प्रभु निज सरन ॥ २२ ॥

वामन स्तुति

दो०—बामन ध्याऊँ पग परसि दूर करौ भ्रमभार ।
बलदानी मानी समुझि लियो अपन अवतार ॥ २३ ॥

परशुराम स्तुति

छत्रीबरन बिधंस करि परसराम रनधीर ।
जिन चरनम के सरन में सब बिध सुद्ध सरीर ॥ २४ ॥

प्रथम प्रकाश।

रामचन्द्र स्तुति

दो०—दिनमन कुल अवतंस प्रभु मोहि देंय आराम।
भार उतारन भूमि को रावनार श्रीराम॥ २५॥

बलदेव स्तुति

आकर खन जमुना करी महाबली बलदेव।
मन लगाय हिय में धरो जिन चरनन की सेव॥ २६॥

छ०—छीर उदधि ससि कढिब बढिव मुखरूप अतुल्लित।
अलसित अच्छ उदार बाल कल्हार प्रफुल्लित।
करनालंबित ललित लोल कुंडल कपोल कर।
चंदन चरचित हृदयमाल अर्पित नीलाम्बर।
भन 'मान' मुसल लांगल लिये देव रच्छ दानव दवन।
चल झूमझुकत पग मग धरत महाबली रेवतरमन॥ २७॥

क०—लटपटे भूषन विभूषित मयूखन सों,
लोचन विलोल छके काऊ नीके पन में।
कलित कल कुंडल कपोल लोल लीला सों,
नीलांबर तूल की न तूलताई घन में।
भनत 'गुमान' तरबंध कंधहल धारें,
मूसल सम्हारें जो कुसल देत छन में।
अटपटी चाल सुबचन कछु अटपटे,
अटपटौ भेस देख अटक्यों है पन में॥ २८॥

दो०—डगमगात पग मग धरत, डगमगात असुरेस।
सगबगात बन्दत रहैं, देवन सहित सुरेस॥ २९॥

बुद्ध स्तुति

अष्टसिद्धि नवनिद्धि बुध, देत बुद्ध अवतार।
दीन जानि मोपे ढरौ, दीन दया भरतार॥ ३०॥

निष्कलंक अवतार स्तुति

संकत जहु निरसंक है, सो प्रन अंकहि धारु।
दुष्ट संहारनु होइ छिति, निहकलंक अवतारु॥ ३१॥

मच्छ, कच्छ, बाराह, हरि, बावन, राम सरूप।
राम, राम, बुध कलकि दस, कस्न तुम्हारे रूप॥ ३२॥

प्रद्युम्न स्तुति

सो०—प्रदवन पद जल जात, बंदौं मन बच काय करि।
अभय करहु मम गात, विनय करों कर जोर करि॥ ३३॥

अनिरुद्ध स्तुति

दो०—श्री अनरुद्ध महा प्रभो, बसहु सुमम मन आनि।
लेस न रहहि कलेस को, जिन चरननिकी बानि॥ ३४॥

वासुदेव स्तुति

देव देव यह देउ उर, सुमति सजा सज्ञान।
यह आसा पुजबहु सकल, वासुदेव भगवान॥ ३५॥

सप्तर्षि स्तुति

चंदन हू बंदन करों, सप्तरिषी पद कंज।
जिनके पद बंदन करे, सुख समूह मन रंज॥ ३६॥

सप्त पुरी, नव ऊखला, कन्या पंच सुभाइ।
तिनके पग सुमिरन करै, कोटिन बिघन नसाइ॥ ३७॥

दुर्गा स्तुति

जगत मातु जगईसुरी, जगदाधार सहाइ।
अभय करौ दीजै जननि, यह माँगत सुख पाइ॥ ३८॥

सूर्य स्तुति

सहस अंस उद्दोत कर, खिल ब्रह्मांड प्रमान।
मेरे दुख दलि दूरि करु, जगत चक्षु भगवान॥ ३९॥

चंद्र स्तुति

जिन किरननि वरख्यो सुधा, रहस माँझ नखतेस।
तिन किरननि करि रुज हरौ, मेरे कठिन कलेस॥ ४० ॥

मंगल स्तुति

धरासूनु मंगल कहत, मंगल करता देव।
रुज दुख दंगल मेटि कै, मंगल मोकों देव॥ ४१ ॥

बुध स्तुति

बुध चरननि बंदन किये, होत हिये आराम।
सुद्ध बुद्धि मेरी करौ, अखिल बुद्धि के धाम॥ ४२ ॥

बृहस्पति स्तुति

सुर-गुरु के गुन गुरु महा, बंदौ पद जलजात।
कर जोरैं बिनती करौं, बिरुज कीजिये गात॥ ४३ ॥

शुक्र स्तुति

स्वामि धर्म में निपुन अति, सुक्र सुक्रत को रूप।
रुज मेरो हरिये भ्रगुज, बंदहुँ चरन अनूप॥ ४४ ॥

शनि स्तुति

सो०—सनि दिन मनि को मार, तुव चरननि बंदन किये।
होत हिये सुभ सार, करहु कृपा मो दीन पर॥ ४५ ॥

राहुकेतु स्तुति

दो०—जदिप असुर सतसंग में, थपे जानि सज्ञान।
मेरी भव बाधा हरौ, राहुकेत बलवान॥ ४६ ॥

विष्णुआदि देवता स्तुति

श्री पति मनु श्री देव रिषि, देत सबहि उपदेस।
तिन के पग बंदन करै, कटत जु कठिन कलेस॥ ४७ ॥

राधाकृष्ण स्तुति

राधाकृस्न किशोर के, करि चरननि कौ ध्यान।
दखल दूरि हो तुरत ही, यह जिय जान गुमान॥ ४८ ॥

छं०—सुन्दर मुकट बिसाल भाल मृगदान बिन्द फबि।
कच कुंचित अभिराम स्याममुख रहे छूटछबि॥
कुंडल मकर अमोल लोल झलझलत कपोलन।
अम्भोरह दृगअरुण अमृत बरसत मृदुबोलन॥
भनि 'मान' बच्छ लच्छन चरन श्रीनिवास सुखको भवन।
श्रृंगार रूप बाधादवन सुजैजैजै राधारवन॥ ४६॥

श्रीवृन्दावन भूमि झूमि तरुलता सुझौरत।
कुसुम कलिन संकुलित भौर झौरनि झपि भौरत॥
पुलिनि खुलनि मल्लिका अनिल मृदु मधु झकझोरत।
जमुन लोल कल्लोल उमगि कन अंबु झकोरत॥
बरसत पियूष राकेस निसि रमि राधा माधव सुवन।
यह ध्यान मान मन जासुके घन्य धन्य जीवनसुजन॥ ५०॥

दो०—रहस रमत दम्पति उठत, रूपपयोधि हिलोर।
उछल छहर बूडत तरत, तरुनी चख झखजोर॥ ५१॥

कृष्णद्वैपायन स्तुति

जासु कृपा प्रगटै सुलभ, हरिलीला उरआइ।
बंदौं द्वै कर जोरिकै, द्वैपायन के पाइ॥ ५२॥

गरुड़, हनुमान् स्तुति

बैनतेय, हनुमान के पद कमलनि सिरुनाय।
दुज 'गुमान' हरि जस कहत भाषा छन्द बनाय॥ ५३॥

दैवी प्रेरणा

हरि-इच्छा इच्छा भई, कछु उपदेसहिदीन।
ता 'गुमान' हिय आनिके, हरि जस पर रुचि कीन॥ ५४॥
छन छन तर्क अनेक उर, उकति न ठिक ठहराय।
प्रभु जसु इक कविता कठिन, नहि विद्या बल आय॥ ५५॥

असामर्थ्य

थिर करि बुद्धि बिचार लखि, अगमपन्थ गुनगूढ़।
मनु मतंग मुरक्यौ नहीं, लिपट उठ्यौ तँह मूढ ॥५६॥

गोपद उतरत पग डगत, मन ऐसो अज्ञान।
बिन तरनी सरनी सके, चाहत पारे जान ॥ ५७ ॥

यह मन सठ हठ करि कहत, हरि जस लेहु निबाहि।
चन्द किरनि चाहत दुहौ, करि पियूष की चाह ॥ ५८ ॥

जकतु न थकतु उपाइ कह, कहतु सुकुटिल सुभाइ।
फूल तूल की सकति नहिं, लैहौं मेरु उठाइ ॥ ५९ ॥

नहि सेयौ सतसंग मनु, भयौ न प्रभु पद लीन।
परथौ बहसमें जसु कथै, बस रावर आधीन ॥ ६० ॥

बुद्धि हीन मति हीन मनु, पाइउ परथौ अयान।
अब आसा पुजवत बनै, हे प्रभु कृपानिधान ॥ ६१ ॥

एक बात में सहल सब, सब बातें सहजोर।
जो कहु चितवो करि कृपा, एजू नंदकिसोर ॥ ६२ ॥

सठ सेवक अरु दीन की, रुचि राखत अरु मान।
इन के और अधार नहि, यहै धार भगवान ॥ ६३ ॥

को प्रभु दीन दयाल सौ, जो राखे सिर भार।
करै अनबनी की बनी, सूछम करै पहार ॥ ६४ ॥

मोरि भनिति दूषन सहित, हरिजस भूषन संग।
साधु आदरैं जान इमि, मिलि पावन रज गंग ॥ ६५ ॥

मोरि भनिति तमते असित, प्रभुजस सितता हेत।
कहु कहु मिलि मुकतालि में, स्यामलता छबि देत ॥६६॥
यह भरोस दृढ मंत्र करि धीरज मन हिय धार।
प्रभु गुन बरनत हूँ भलौ, आन न सधै उपाय ॥ ६७ ॥

* उक्ति जुक्ति सं······

······नके पद बंदिके सब का भला मनाइ।
कछुक बंस वरनन करौं, नाम सग्राम सुभाइ॥ ७१॥

नगर महेवा बसत हैं विप्र त्रिपाठी जान।
तिन में द्विज गोपाल मनि, प्रभु पद में सग्यान॥ ७२॥
चारि पुत्र तिन के भये, चारि चारु सुख देन।
हरि आइस गिरि पर र······　　॥ ७३॥

कृष्णचन्द्र की चन्द्रिका रचहु सुमति स्वच्छंद॥ ७६॥

तिनि लघु नाम अमानजे, सहन सील परबीन।
गुरु गुरुजन हरिभक्ति में, रहत सदा लवलीन॥ ७७॥

बसु गुन वसु ससि ठीक है, यह संबत् निरधार।
मधु माधव सित पक्ष की, त्रयोदसी गुरुबार॥ ७८॥

ताही दिन नद नंद पद, बंदि महा आनंद।
क्रस्नचंद्र की चन्द्रिका, रची सुमति बहुछंद॥ ७६॥

इति श्रीसज्जनकुल कैरवानंद बृंददायिन्यां शरचंद्र चारु मरीचिकायां द्विजगुमान विरचितायां श्रीकृष्णचन्द्रिकायां मंगलाचरण देव पद-बंदना-वंश वर्णनोनामा प्रथमः प्रकाशः समाप्तः।

---

* यहाँ से आगे का भाग मूल पुस्तक में फटा हुआ है। सम्भवतः इसमें भी कवि ने अपना असामर्थ्य ही प्रकट किया है।　　सम्पादक

द्वितीय प्रकाश

दो०—यहै सुदुतिय प्रकास चलि कथा प्रसंग बिसाल
नृपति परीच्छित को चरित कहिवी परम रसाल ॥ १ ॥
प्रभु गुन गन को गनि सकै, कछुअक कहौं सप्रीति ।
रचत छंद लच्छन सहित, बिरचि वृत्ति की रीति ॥२॥

गणों का शुभाशुभ विचार

छ०—मगन त्रिगुरु प्रभु धरा धाम सुभ श्रीकौ दाता ।
यगन आदि लघु अम्बुनाथ बहु ऋद्धिय दाता ॥
अन्तर लघु लख रगन अग्नि पति भय उपजावै ।
सगन छोर गुरु पवन देव बहु देस भ्रमावै ॥
कहि तगन अन्तलघु नभ त्रफल, गुरु मध्य जगन रवि रोग लहि ।
भनि भगन आदि गुरु इंदुजस, त्रिलघु नगन अहि सुख फलहि ॥

दो०—प्रथम चरन तेरह कला, दूजे ग्यारह देव ।
फिरि तेरह ग्यारह कला, दोहा इमि रचि लेव ॥
विवि लघुदै इकइस कला, अन्तरगन अभिराम ।
छंद यहै 'हरिगीतिका' गीतनि मध्य सनाम ॥

हरि०—हरिजन अनिन्द अजातरिपु सुन्दर सहोदरबंससौ।
छितिपाल छितिपर है परीछत छिति नृपति अवतंस सौ।
भुव इन्द्र भूमि नरिन्द्र मनि गोबिन्द पद अनुराग है।
दुर्जन दरन असरन सरन दुखहरन पूरन भाग है॥ ३॥

परीक्षित का रूप गुण वर्णन

सतसिन्धु रिंछ अगाध मति धर्मज्ञ गुननिधि धाम है।
सर धनुष पंडित मंडि जसु छत्रिय अजय संग्राम है।
नहि जात बरनी करिय धरनी अमित करनी को सकै।
जेहि राज देसनि देस बिन कलिजुग कलेस न आ सकै॥४॥

शिकार खेलने जाना

भुव मंडि प्रबल प्रताप तीखन भान ग्रीसम सौ तच्यौ।
उडिगे तिमिर खलबिन समर अरिकुल कलह करि कौ बच्यौ।
कर निकर उज्जल होत झलझल भान सोभासौं भलौ।
मनि मुकुट माथे धारि नृप आखेट खेलन कौं चलौ॥ ५॥

कल करन कुंडिल राज ही उर मुक्ति मनि माला भरथौ।
मनि जटित कंकन करनि राजत तेज रवि किरननि खच्यौ।
बलवान भुज अज्ञान जे बहुदान दे दुजपाल हीं।
जनु दिग विजय के धुजा राजहिं अरि उरन में साल हीं॥६॥

कटि तून कसि कोदण्ड काँधे बसति रुचि सुभकर्म की।
जनु लसति मूरति परम सुन्दर मनहु छत्री धर्म की।
कर तट प्रतंचा चिन्ह अंगुलत्रान पंजन रंज है।
रन सुभट सूरौ साहसी ध्रत धीरता द्रढ अंग है॥ ७॥

जनु तुरँगसजि रँग सुरँग ल्यायौ जलद मारुत कौ भला।
मनमीत सौं चटसार सीखी सुगति गति चंचल कला।
हयपीठ पै अवनीप बैठ्यौ डीठि न्रप जोवौ करै।
तकि छाँह जाकी बाह बल दिगपाल सुख सोवौ करै॥ ८॥

चलि जाइ गह्वर बिपिन में मृगयादि खेल रच्यौ सबै।
बन भ्रमत में तन श्रम भयो आश्रममुनिन्द लख्यौ तबै॥
तन खीन मुनि तप ब्रद्ध आसन सिद्ध सौ आसीन है।
तँह ध्यान धारि समाधि धारै ब्रह्म में मतिलीन है॥ ६॥

नृप पूछियो तिहि वेनरिषि चित चैन थिर ह्वै के लग्यौ।
नहिं सुनै उत्तर देइ को मुनि ब्रह्म आनन्द में पग्यौ॥
रिषिनाह लखि नरनाह कै आवेस कलियुग आइगौ।
ससि छप्यो ससि हरि खुद्र सो त्यों बुद्धि आगम छाइगौ १०॥
जँह जानि आइस भंग त्रप रिस रंग गति मन में बसी।
सब धर्म हति सुभ कर्म हति मति कुमति कीरति में लसी॥
मन बुद्धि पलटि सुभाइ पलट्यो ज्ञान गौ रिस के भरैं।
तिहि असुभ आसीविष मृतक ले त्रपति रिषि मेल्यौ गरैं॥११॥

जिहि रची संचि विरंचि रंच बचै न जो होनी जहाँ।
त्रप ज्ञानमय विज्ञानमय अज्ञानमलि कीन्ही तहाँ॥
चलि सेन संग महीप ग्रह पहुँचे परे कलि फंद में।
विसरयौ तहाँ सुनि पाप कारन राजसी आनन्द में॥१२॥

रिषि पुत्र जनक सु आइ देख्यौ उरग ग्रीवा में परयौ।
उर उमगि कोहानल जरयौ दै स्राप तप ज्वाला भरयौ॥
जिहि पुरिष ने मन तात कौ अपमान कीन्हो लच्छि है।
तिहि आजु ते दिन सप्तमें विष विषम तच्छक भच्छि है॥१३॥

रिषि च्छमा रूप विनीतिमय छूटी समाधि सुनी जहीं।
हे पुत्र, राजहिं साप दीन्ही तात, बात बनी नहीं॥
भूपाल भूपर राजधानी भूमि मण्डल है सुखी।
नर नारि भोग बिलास रत लखिये न कहुँ कोऊ दुखी॥१४॥
सुख प्रजा पालत धर्ममय संपन्न गुननिधि साज में।
मख व्रत तपस्वी तप करें निहकंटता के राज में॥

बिन न्रपति बिघ्न अनेक उपजै बिस्व पीड़ा सों बचै।
तुव वच प्रबल होनी प्रबल जो रची कहुँ कैसे बचै ॥ १५ ॥

अब खबर लै रिषि जाइ न्रप पै सीघ्रता कौं साधि कै।
परलोक साधन के करै श्रीक्रस्न पद आराधिकै।
सुनिकै चल्यौ न्रपनगर प्रविस्यो राजमंदिर कौं गयौ।
कहि साप विधिवत भूप सों मग फेरि आश्रम कौ लयौ ॥१६॥

दो०—अति अमोघ रिषि स्राप की, न्रपति सुनी सब गाथ।
हरष विषाद न मन कर्‌यौ भयौ ज्ञान कै साथ ॥ १७ ॥

* पद्धटिका—नरनाह मंत्र मन में बिचार।
रिषि साप म्रषा नहि सत्य सार ॥
न्रप सुहृद बंधु मंत्रिन बुलाइ।
सुत राज भार सौंप्यौ सुराइ ॥ १८ ॥

मुनि बृंद संग दुज ज्ञानवान।
सुचि सेवक आज्ञा सावधान ॥
उर उपजि विमल वैराग्य आइ।
चलि आसन रचि सुर्धुनी जाइ ॥ १९ ॥
थल पुन्य पाल पावन अपार।
जस लोक लोक कीन्हें प्रचार ॥
जन मुक्ति भुक्ति आकर अनूप।
तह देत देह दुति दिव्य रूप ॥ २० ॥
जनु धार सुर्ग सरनी सुरेस।
दिवि आरोहन सोहन सुवेस ॥
जलु छियत पियत हीतल जुडाइ।
फिरि तपन ताप पातक छुडाइ ॥ २१ ॥

---

* सोडस कला विचित्र पद, जगन अंत बुधवानि।
पद्धटिका पद्धति यहै, पिंगल मति अनुमानि ॥

उठि लहरि छटा तट परति आइ ।
कन परत प्रबल दुर्मद नसाइ ॥
सुख रहत बारि चर बारि लीन ।
छबि उछल छहर थहरात मीन ॥ २२ ॥
तह प्रफुलि कमल डुलि झुकत झौर ।
करहाट गंध लै उडत भौंर ॥
मधु भरतु ढरतु जल मिलतु जाइ ।
रज उडति सुमन धुंधर मचाइ ॥ २३ ॥
कल हंस ललित कुल कलित वाक ।
थिर करत तरल चित चक्रवाक ॥
जल परस पवन सीतल सुचाल ।
मिलि दरद दवागिनि बुझति ज्वाल ॥ २४ ॥
तन मज्जत मुनि जन गुन गभीर ।
तप करत तपोधन परम धीर ॥
थल देखि न्रपति गौ हिय सिहाय ।
मन विसय बासना ते विहाय ॥ २५ ॥
तजि भोग राग इन्द्रीनि जीति ।
प्रभु चरन कमल दृढ कीन्ह प्रीति ॥
सब असन बसन भूषन बिसारि ।
दिन सप्त लियो व्रत ध्यान धारि ॥ २६ ॥
यह खबरि पाइ सुक मुनि प्रवीन ।
परमारथ गामी अघ बिहीन ॥
तप तरनि किधौं तप मूर्त्तिमान ।
अवधूत भेस परब्रह्म ध्यान ॥ २७ ॥
फिरि जियत मुक्ति प्रभु पद सनेह ।
जग जीव उधारन धरत देह ॥

चलि गये जहाँ सुरसरी तीर।
नहि छियत जिन्हें भवसिंध भीर ॥ २८ ॥

मुनि नाथ आवगम सुनौ राइ।
उठि करै दंडवत बंदि पाइ॥
धरि उत्तम आसन अति बिसाल।
मनि जटित सिंघासन किरन जाल ॥ २९ ॥
उर प्रेम मगन आनन्द भार।
मुनि पूजा करि सोडस प्रकार॥
कर जोरि बिनय करि पुहुमिपाल।
तुव दरसन ते का करिय काल ॥ ३० ॥
मुनि कृपा बिघन कोटिन बिलाइ।
पद सरस परस पापन पराइ॥
मुनि कहँहि सुनहुँ न्रप ब्रह्म नींक।
तुव कीर्ति बिस्व में विदित लीक ॥ ३१ ॥
नहि मिटति प्रबल होती सुराज।
सुर असुर चराचर के समाज॥
अब कहतु सुनहुँ तुम चित लगाय।
करि कृपा व्यास मोकों पढाय ॥ ३२ ॥
भगवान भागवत भक्ति रूप।
यह मुक्ति सरूपी सुमति भूप॥
सुचि सावधान ह्वै सुनहुँ राइ।
दिन सप्त सत्य देहों सुनाय ॥ ३३ ॥
धरि क्रस्न ध्यान पद व्यास बंदि।
उच्चार चारु कीन्हों अनंदि॥
जनु बरसि बलाहक सलिल धार।
भरि स्त्रवन कूप उमगे अपार ॥ ३४ ॥

कहि सूत सुनहुँ सौनक सुजान।
न्रप परम भक्ति अविचल निदान॥
सुक कथा कही गुन ज्ञान मोद।
न्रप चित्त क्रस्न लीला बिनोद॥ ३५॥

दो०—नव असकंध मुनिन्द कहि, बन्दि नरिन्द बहोरि।
प्रेमाकुल गहवर गरै प्रस्न करी कर जोरि॥ ३६॥

हरि०—मुनि ज्ञान सागर गुननि आगर भक्ति तपसा के धनी।
जगजाल की त्रैकाल की सरबज्ञता तुम में सनी॥
सब बिस्व बिजय बिभूति तेरे कमल करतल में बसै।
दुख दोस सोक उपाधि जेते होत दरसन के नसै॥ ३७॥
मुनि, सोम सूरज बंस के महिपाल तुम बरनैं खरे।
गुन राजसी बल सील सौं दुस्तर पराक्रम के करे॥
अब कहौ गोपीनाथ के गुन गाथ हिय सरसी भरे।
दिल दरद दारुन दाबिकैं मुनि मिलि उछाहन ही तरे॥३८॥
तुम व्यास पुत्र पवित्र मति जग मित्र जिय की जानिकै।
गुन कहि दयाकरिं दया भरिकै उर दयानिधि आनिकै॥
ब्रजचंद आनँदकंद कौ जसु बन्दबोधन कौं करै।
जिय की जरनि मिट जाय सुरसंताप पातक कौं हरै॥ ३९॥
तन छुधा जुत पीडित पिपासा जो अश्रद्धा मानिये।
तजि अमीरस चाहै कुरस को अधम ऐसौ जानिये॥
तुम है प्रसन्न अनिन्न मति परजन्नि की बानी लहौ।
सुभ कथा स्वच्छ विचच्छ मुनिजू भक्त बच्छल की कहौ॥४०॥
जिनि लसत माथे मुकुट मनिमय छबि छटनि कौं नाधिकैं।
जिनि करन कुंडल करत तंडव किरन मंडल बाधिकैं॥
जिनि अमिय सर आनन अमीकर समी को कैसे करै।
मन अमी झलकनि रुचनि की सौरभ सनी कैसे टरै॥४१॥

जिनि करन कंकन माल उर भर भुजन अंगद साजहीं ।
छवि की कलासी मेखला कौस्तुभ झलाझल राजहीं ॥
खगराज जिनि अंकित धुजा भ्रगुचरन अंकित अंक जो ।
प्रभु के महाँ यह ध्यान तें जम जाचना निअसंक जो ॥४२॥

जिनि चरन सुर ब्रह्मादि सेबत कबहुँ द्दगपल फेरहीं ।
प्रभु दीन को हँसि बात पूछत क्रपा करि करि हेरहीं ॥
जब जब महासंकट परथौ तब तब प्रभो तँह आइयौ ।
कर गहि उबेले मेलदै नहि झेल रंचक ल्याइयौ ॥ ४३ ॥

जदुबंस के अवतंस जे ममबंस राखन कौं कियो ।
फिरि दीनबन्धु दयाल मेरे प्रान दाननि कौं दियो ॥
कुरुनंद सेन समुद्र बाढिव सकतु कौ सहि भारु है ।
चतुरंगिनी चहुँ ओर आयुत अगम पाराबारु है ॥ ४४ ॥

तँह प्रबल सूर सनद्ध ठाढे सकल थल सों जानिये ।
जँह उमग अरु उतसाह साहस विषम भर सों मानिये ॥
ध्रत धीरता परि भौंर जलगंभीर बलछवि छाउनी ।
झलझलत उठत चमक दसदिसि लोललहरि भयावनी ॥४५॥
धुजकेतु फहरनि मच्छ छहरनि लच्छ लच्छन है परथौ ।
रसबीर बाडव कोह लपटनि उमगि सुभटन कै भरथौ ॥
पदचर खचर संघट्ट जलचर अपर जीवनि की गथी ।
रनधीर भीषम सेति मंगल द्रौन कर्न महारथी ॥ ४६ ॥
हय हीस, गरज गयंद घुमडत दुंदुभी हनि जोर सों ।
रथ सघन घर्षन प्राण धर्षन संख सब्दन सोर सों ॥
मिलि तुमुल कोलाहल सुभट टंकोर धनु खनि ह्वै रही ।
चहुँ ओर मानहुँ घोर दुर्घट नदीपति की छ्वै रही ॥ ४७ ॥
सित चँवर चहुँ दिसि त्रपन ऊपर डुलत ढुलत थिरात जे ।
पय फैन फैले बिपुल फैना उठत फेरि बिलात जे ॥

चहुँ ओर उमडि घुमंडि कै राकेस जस कों चाहि कै।
रन उमग उमगित रंगसौं कढिजात सीवाँ बाहिकै ॥ ४८॥

जहँ सकल विद्या समर पंडित उर भर्‌यौ मद मान कौ।
हठि रह्यौ मन लखि थाह गहिरौ सूर मरजी यान कौ ॥
सुर असुर पन्नग पवन के देखत मनहि कों छोहहीं।
इमि दुसह दीह भयंकरौ पाथोधि ऐसौ सोहहीं ॥ ४६ ॥

भयहरन असरन सरन कौ कह कहौं बिरद सह्यारिबौ।
तहँ दरद दारुन ते दरद हरि ल्याइ दीन उधारिबौ ॥
मम भुजनि आश्रित रहहिं जे कहु तिनहिं संकट क्यों परैं।
रन सिंघ की कह कठिन ते भवसिंधु गोपद ज्यों तरैं ॥५०॥

यह जानि पंडव ते निपच्छित आयु पच्छ सुभासियौ।
जँह जलधि धार अगाध बूडत साधि कर गहि राखियौ ॥
जगनाह पहि रिसनाह ठाढे अस्त्र सस्त्रन ना लये।
जनु भीरु लखि उर पीरु धरि कहु बीररस नैना भये ॥५१॥
कपिधीस धुज पर रथिय पारथ आयु सारथ ह्वै चढे।
जन पैज पालन अरिन घालन करन भारत कौं बढे ॥
रथ जोरि जवकारी पवन ते बाजि राजी ह्वै भले।
गति लच्छि पाइनि सों भरत मन के अतालक से चले ॥५२॥

करि तुरिय चंचल खुरिय फटकी रुरी फौज विलोरिकैं।
जनु चलतु झंझा कँपतु सागर डुलतु लोल हिलोरिकैं ॥
झुकि रह्यौ मंजुल मुकट माथे कर्न कुंडल डोलहीं।
उर स्वच्छ माल बिसाल उरझी मन मयूखन खोलहीं ॥ ५३ ॥
कच मेच कुंचित बदन विधुतट रहे सुथरे छूटि कैं।
प्रभु समर लीला ख्याल बाढे कवच बँधिगे टूटि कैं ॥
श्रम स्वेद कन हय रेनु मंडित कछु अरुन मुख भ्राजही।
जनु अमी सीकर भर्‌यौ ससि दिगते निवेसित राजही ॥५४॥

कर सजल जलधर नाद ज्यों गंभीर स्वर बोलै महाँ।
मुख सुनत सीतल सुजन अरि जरिगे जवासे से जहाँ।
कर एक हय डोरैं गहैं कर एक ताजन को करैं।
यह ध्यान जाके मन बसे संग्राम ताकी जय करैं॥ ५५॥

रघु करिव मंदिर फनिगपति पारथ पराक्रम कौं कियौ।
हरि भये मंथन हार मथि रज सिन्धु पय बल सौं भर्यौ॥
झख मकर कच्छप सुभट खर्भर मान मदु हति कै गयौ।
करि जतन चौदह रतन सम लै राजु प्रभु त्रप कौं दयौ॥५६॥

फिरि जानि पार अपार पाराबार पार बिचारियौ।
जलजान सम तट जानु करि जनुजानि पार उतारियौ॥
मुनि नाथ को यदुनाथ सौं जयनाथ दीन अनाथ के।
मुहि राखियौ जुग साखियौ अब कहतु गुन तिहि गाथ के॥५७॥

जब ब्रह्म अस्त्र सँभारि घाल्यौ द्रोन सुत रिस सौं भर्यौ।
तहँ गर्भ में अर्भक हतौ स्यौ जननि ज्वालनि हौं जर्यौ॥
जन की कसक मन में बसी उर आनि दीन दया भरी।
खर चक्र कर धरि अर्क धारा उदर में रच्छा करी॥ ५८॥

कहि दीनबन्धु दयाल करनासिन्धु को ऐसौ कहौ।
तिन के चरित्र न चित्त बसत न कष्ट पीड़ा क्यों लहौ॥
फिरि इते पर तुव ससी आनन अम्रत धारा सी द्रवै।
तँह श्रवन परिसीतल हियौ करि प्रेम कौ सरसी श्रवै॥५९॥
सुख करम पावन करन तरनी तरन भवनिधि काज की।
कलि के कठिन कलिमल हरन कहिये कथा जदुराज की॥
परब्रह्म अज अद्वैत अव्यय अलख अबिनासी सुनौ।
पुनि अकथ अविचल कहत तासों बिरुज निर्बचनी गुनौ॥६०॥
निरुपाधि नित्य निरीह जो निर्गुन गुनामय मानिये।
निरवध्य इच्छामय विभू अव्यक्त अनभय जानिये॥

निहचिंत व्यापक सर्वनिह संदेह मुनि गन ध्यावहीं।
फिरि प्रकृति पुरुष पुरान पूरन निगम नेति सुगावहीं ॥६१॥

मनतीत मायापरै रंजन सो निरंजन मुनि लहौ।
जनतार जगत अधार प्रभु अवतार कारन कौं कहौ॥
त्रिभुवन भवन पालन कर्थौ भुव भवन भारि उतारिकैं।
सुरधेनु दुज पाले सदा खल दल सबल बल मारिकैं ॥६२॥

कहिये कथा बलदेव की जब देवकी उर ह्वै गये।
फिरि सोहनी छवि मोहिनी बलि रोहनी कैं क्यों भये।
मधुपुरी में हरि जनम लीन्हौं गोकुलै प्रभु क्यों गये।
जहँ सघन घन गहराइ जमुना नाकि बसुदिव लै गये ॥६३॥

फिरि जाइ ब्रन्दा बिपिन में मिलि सखन में बिचरे जहाँ।
बन बन लिये गोधन फिरे सुख कुंज कुंज करे तहाँ॥
प्रभु ख्याल में अरि ध्वंस कर बिध्वंस दानव कौ कर्थौ।
अघजुत भुजंग दवागिकौं मद मान मघवा कौ हर्थौ ॥६४॥

फिरि रसिक सुन्दर साँवरे रचि रहस बस गोपी करीं।
जिन तार सों अनुराग सों नवला नवेलिन पी खरीं॥
तहँ ब्रखभ, केसी, मथन कौ जसु कथन में कथियौ घनौ।
फिरि जाइ मथुरा अतुल आतुल अबध मातुल कौं हनौ ॥६५॥

मगधेस न्रप चतुरंगिनी रनरंगिनी जाई घनी।
जहँ सूर सिंघन जुगल बंधुन कर पराक्रम सोहनी॥
अमरावती तें सरस मनि द्वारावती जल में रची।
जहँ बसे जदुकुल चंदमति जदुकुल नखत गन में सची* ॥६६॥

---

* यहां प्रसंग से कवि का तात्पर्य 'शशी' का मालूम होता है, कदाचित् तुकान्त रचना के कारण 'शची' शब्द रख दिया गया है। शची का अर्थ है इन्द्राणी। यह अर्थ बिल्कुल अप्रासंगिक है।

ससि मुखी तँह रानी हजारनि पट्टरानी जे सुनीं ।
सत सचीपति की बिभौ ते रुचि राजसी सुचि सौगुनी ॥
मुनि क्रपा करि समुझाइ प्रभुगुन देत जे जनमोख कौं ।
उर को दगध भव गद सकल मिटि जाइ लहि संतोख कौं॥६७॥

दो०—इहि प्रकार राजेन्द्र मनि पूछी प्रस्न बखानि ।
सुख पायौ सुक मुनि सुनै न्रपति साधु पहिचानि ॥ ६८ ॥

इति श्रीसज्जन कुल कैरवानंद वृन्ददायिन्यां शरच्चन्द्र चारु मरीचिकायां श्रीकृष्णचंद्र चन्द्रिकायां द्विजगुमान विरचितायां नृपति परीक्षित चरितपद्म वर्णनोनामा द्वितीयः प्रकाशः समाप्तः ।

तृतीय प्रकाश ।

दो०—यहै तृतीय प्रकास में ह्वै है कथा अनूप ।
ब्रह्मलोक पृथ्वी गई धरि सुरभी कौ रूप ॥ १ ॥

छीरोदधि कौं जाइ सुर जहाँ जगतपति आपु ।
बसुदिव ब्याह बरात में कंस होइ संतापु ॥ २ ॥
मुनि नरेस की प्रस्न सुनि उमगि प्रेम उर आइ ।
सुनि सौनक बोले महा व्याससूनु सुख पाय ॥ ३ ॥

संयु०—धनि राज राज सुसीलता उर प्रेम भक्ति लसी लता ।
नरनाह तो सम कौ लसै हरि ध्यान जेहि मन में बसै ॥४॥

प्रभु पद्म से पद ध्याइये नहिं और चित में ल्याइये ।
प्रगटौं सुगोप्य बखानि कैं सुचि पात्र स्रोतहिं जानि कै ॥५॥

दो०—सुर मुनि सुख सरसाइ कै रुख राजा पै कीन्ह ।
कहन लगे हरि जस बिमल अमल हृदै कौं चीन्ह ॥ ६ ॥

प्रथम सगन फिरि जगन द्वै, अन्त एक गुरु आनि ।
मुख संजुत रंजित गिरा, छन्द 'संजुता' जानि ॥

चतु०—श्रीकृष्ण धाम जो अजितधाम जो परम धाम जो जानौं।
तिनकी सुभ लीला परम सुसीला त्रिबिध रूपमय मानौं ॥
जो त्रिभुवन कर्ता पालनहर्ता अखिल लोक के भर्त्ता।
पर तैं पर जो हैं अपर न को है धर्म सनातन धर्त्ता ॥ ७ ॥

सेवत सनकादिक देव सिवादिक निगम नेति करि गावैं।
मुनि इन्द्रिन साधैं धरत समाधैं महाकष्ट करि पावैं ॥
गोदुज हितकारी पाप प्रहारी धरैं रूप अवतारी।
तिनकौं जसु कहिहौं सब सुख लहिहौं आनँद मंगलकारी ॥८॥

दो०—रोम गर्त्त ताके परे अमित कोटि ब्रह्मण्ड।
ता प्रभु की चर अचर में चेतन सक्ति अखंड ॥ ९ ॥

रो०—भक्त बछ्‌ल भगवन्त भक्त करुना के सागर।
भक्ति हेतु बसुदेव देवकी सुत नट नागर ॥
किय अग्रज बलभद्र हद्दबल बीर उजागर।
नंदादिक ब्रजमोहि गोप गोपिन गुन आगर ॥ १० ॥

दो०—सुनु न्रप जब जब भूमितल भाराक्रान्त जु होइ।
तब तब प्रभु अवतार लै दुष्ट सँहारैं सोइ ॥ ११ ॥

चंच०—दुष्ट भार बसुन्धरा भरि पाप तापनि सौं तई।
धारि धेनु सरूप भूचलि ब्रह्मलोकहिं कौं गई ॥
अब्ज आसन अग्र रोदिति होति व्याकुल है महाँ।

त्रिंसत कला बिचित्र पद, स्वच्छ बरन फिरि आनि।
दस बसु द्वादश पर बिरति, छन्द 'चतुष्पद' जानि ॥
षट पद की तुक अन्त की, दोइ अन्त की खोइ।
चारि आदि की सुभ पढै 'रोला' छन्द सुहोइ ॥
जहाँ रूपमाला चरन अन्त देहु गुरु और।
छन्द 'चंचरी' जानिये कवि कुल के सिर मौर ॥

हे पितामह राखु बूडत हौं प्रलोदक में तहाँ ॥ १२ ॥
बंस दानव अंस ते प्रकटे जु कंस कराल से।
धर्म दूषक जानिये सुर संत अंतक काल से ॥
बिघ्न कर्मनि भग्न धर्मनि पाप कीरति कौं लई।
नष्ट बुद्धि अरिष्ट जे जग हौं कलिष्टित कौं भई ॥ १३ ॥

सिन्धु कानन तुंग हैं गिरि भारु ना तिन कौं लहौं।
जाति भार रसातलै खल सेन सौं सुर, हौं कहौं ॥
मेदिनी करि बोध कौं बिधि सोधि सोधि बिचारिकैं।
धीर कौं धरि पीर मेटत दीनबन्धु निकारि कैं ॥ १४ ॥

जोरि कैं सुर बैठियौ बिधि मंत्र कौं ठहराइ कैं।
गीरबान उठै सबै भगवान के गुन गाइ कैं ॥
इन्द्र आदिक देव सम्भु स्वयंभु संग सबै लये।
बिरंचि ऊपर हैं जहाँ सब छीर सागर कौं गये ॥ १५ ॥

बैठि कैं तट के बिनय सुर जोरि अंजुलि कौं रहे।
त्राहि त्राहि बिभो हरे! मुख दीन बैननि कौं कहे ॥
ध्यान धारि समाधि कौं बिधि बाधि कैं थिर ह्वै गही।
ब्रह्मबानि भई जबै सुरजानि सरनागत कही ॥ १६ ॥
निर्जरा अब होहु निर्भय संक त्यागहु जाइ कैं।
लोक लोकनि में रमौ ग्रह भोग में सुख पाइ कैं ॥
हौं धरौं अवतार लै दुज दीन गोकुल पालि हौं।
भूरि भारन भूमि कौ खल मारि सेन सँहारि हौं ॥ १७ ॥
औतरौं महि जाइ कै सुभ कर्म धर्मनि संचरौं।
ध्यान मो पद राखि कैं उर भक्ति धारन कौं करौं ॥
बानि सो श्रुति सिद्ध सी श्रुति रंध्र देवन के परी।
दुःख पावक सान्ति कौं धुनि मेघ की जल सी भरी ॥१८॥
मोद सागर की तरंग भरी अमीरस पूरसी।

प्रान जीवनि दान कौं जनु है सजीवन मूरसी ॥
प्रेम सौं पुलकावली अँग अंग आनँद सों भरै।
मानि सासनि नाथ की इक बार जै जै कौं करै ॥ १६ ॥

भाँति भाँतिनि भूमि कौं बिधि नीति सौं समुझाइ कैं।
ब्रह्म पूरन औतरे बसुदेव के ग्रह आइ कैं ॥
सेस संग असेस अंसनि देवता सब आइ हैं।
नास दानव कौं करैं जसु नारदादिक गाइ हैं ॥ २० ॥

दो०—रसा प्रबोधि अनेक बिधि, प्रभु गुन कथे अनादि।
गये बिधाता लोक निज, संकर सुर सक्रादि ॥ २१ ॥
प्रभु अज्ञा धरि सीस पर, आपु काज पहिंचानि।
ब्रजमंडल जदुबंस में, अमर औतरे आनि ॥ २२ ॥

दोध०— माथुर, सूर, महिपति दो हैं।
बासव से छिति मंडल सोहैं ॥
माथुर की तनया सुभ स्यामा।
देवकि देवनि में अभिरामा ॥ २३ ॥

सूर नरिन्द तनै तिहि ब्याही,
नाम कहैं बसुदेब जु ताही।
ब्याह बरात चली मग भारी,
आनन्द मंगल भौ अधिकारी ॥ २४ ॥

दो०—जानि बरात बिदा भई, कंस नृपति बलवान।
राखि स्वसा पर प्रीति मन, मिलन चल्यौ मतिमान ॥ २५ ॥

तीन भगन जामें परे, दो गुरु अन्तहिं जानि।
पढत विमन बोधक करै, 'दोधक' छंद वखानि ॥

चरन आदि लघु चारि दे, दोइ मगन गुरु अन्त।
सुख उपजत मुख पढत ही, छंदु 'सुमुखि' बुधवन्त ॥

सुमु०—त्रप मनि कस चल्यौ जब हीं ।
गजबर बाजि सजे तब हीं ॥
उर भरि मोह महीप महाँ ।
सँग लिय दोह दहेज तहाँ ॥ २६ ॥

दो०—अष्टादस सत रथ अयुत, तुरग सुरँग जब मान ।
दो सत दासी दुगुन इभ, दै कीन्हौं सनमान ॥ २७ ॥
भई देव बानी गगन, प्रकट कह्यौ मत गूढ ।
सुसा आठवें गर्भ ते, तेरो बध है मूढ ॥ २८ ॥

चाम०—भै गभीर देव बानि कान कंस के परी ।
सीत भीत सूख सोक देह दु:ख में भरी ॥
काढि कैं क्रपान पानि काल कौल सी गही ।
केस गै निसंक जाइ संकि देवकी रही ॥ २९ ॥

छोडि मोह कोह सौं कठोरता कराल भौ ।
हाल कौं निहारि कै बिहाल हाल बाल भौ ॥
देह द्रोह सों भरी दया न जीव जानहीं ।
दुष्ट प्लुष्ट मंद सौं कुबुद्धि बुद्धि आनहीं ॥ ३० ॥

दो०—जब जानी बध करतु है, सठ अनरथ कौ मूल ।
बचन कहे बसुदेव तब ज्ञान नीति अनुकूल ॥ ३१ ॥

इन्द्र—राजाधिराजा महि मंडली के ।
देखे जसै चन्द सुअंस फीके ॥

गुरु लघु क्रम पन्द्रह बरन, आदि अन्त गुरु होइ ।
'चामर' छन्दु बिचार रचु, चतुर कवीसुर सोइ ॥

इन्द्रवज्र में द्वै तगन, जगन एक गुरु दोइ ।
जहाँ आदि गुरु लघु पढैं 'उपइन्द्रा' फिरि होइ ॥

भोजादि बंसी मनिमौलि भारी ।
कोदण्ड धारी तँह अग्रकारी ॥ ३२ ॥
चंडांसु सो तीखन तेज मंड्यौ ।
आखण्ड आखण्डल मानु खण्ड्यौ ॥
ज्ञाता सदा क्षत्रिय धर्म जो है ।
बाला सुसा बद्ध तुम्हें न सोहै ॥ ३३ ॥
है कोमलांगी जनु पर्न बेली ।
*एती कहा भौ तिहि कंठ मेली ॥ ३४ ॥

दो०—दयारहित हिंसा सहित, दनुज अंस पहिचानि ।
बचन कहे बसुदेव जू, फेरि अमी सम जानि ॥ ३५ ॥
चलै जहाँ लगि बुद्धि बल, अरु बचनिन कौ जोरु ।
तौ लौं रचना कीजिये, यहै नीति को छोरु ॥ ३६ ॥

नरेन्द्र जानौ यह बात साँची ।
विषै फस्यौ जीव नचै कुनाची ॥
लखै न माया पट लेसु गाढे ।
मदादि मोहादि मनोज बाढे ॥ ३७ ॥
जहाँ तहाँ मृत्यु रुकै न रोकी ।
ब्रथा बहै भार भ्रमै ससोकी ॥
वही सु होनी जु रची बिधाता ।
मिथ्या करै हर्ष विषाद गाता ॥ ३८ ॥
कही अनेकै न गनैं कुचाली ।
लसै बिलज्जासुर संतसाली ॥

* मूल पुस्तक में उपेन्द्रवज्रा के दो चरण ग़ायब हैं । कदाचित् इस अपूर्ण छंद के अवशिष्ट भाग में देवकी की विशेषताएँ ही बताई गई हैं । पुस्तक देखने से लिपिकार की ही त्रुटि मालूम होती है, कवि की नहीं ।

गहै वहै बात वहै प्रमानी ।
हठी नठी बुद्धि मनै जु आनी ॥ ३६ ॥
मनै बिचारी बसुदेव ज्ञानी ।
कही जु तासों लखि नारि हानी ॥
जु पै सुसा गर्भ ते नासु जानौं ।
तजौ यहै दुःख न दीह मानौं ॥ ४० ॥
जितेक है हैं सुत भूप याके ।
तितेक देहौं प्रन सत्य ताके ॥
सुनी तहीं हर्षित दुष्ट गाता ।
तहीं दई सौंपि सु देव माता ॥ ४१ ॥

दो०—बचन सुने बसुदेव के, कंस दया अवगाहि ।
बिदा करी दै देवकी, तिन कौं मनहिं सराहि ॥ ४२ ॥

स्वा०—दुंदुभीय बजतीं अति राजैं ।
घंट घोर गजनाद बिराजैं ॥
सील सिन्धु बसुदेव सुखारी ।
आइ गेह रचि मंगल भारी ॥ ४३ ॥
जे प्रसूतपथ में सुत जाये ।
कंसराज दरबारहिं ल्याये ॥
सत्य धाम बसुदेव प्रमानो ।
कंस आदि सब ही उर आनी ॥ ४४ ॥
साधु साधु बसुदेव सयाने ।
धर्मपाल सब तो कह जानैं ॥

रगन नगन फिरि रगन कहि, लघु गुरु अन्त बखानि ।
कवि मुख उद्गत पढत में, 'रथोद्धता' सो जानि ॥
चार यगन जामे परैं, पढत हर्ष अवदात ।
कवि मुख सुखमा देतु है, छंदु 'भुजंग प्रयात'

जाहु बेगि सुत लै ग्रह पाहीं ।
संक छाड़ि इन तें भय नाहीं ॥ ४५ ॥
पुत्र होइ जब आठव आनी ।
काल रूप कहियौ नभ बानी ॥
गेह नेह सुत लै फिरि आये ।
आनि मानि कौतूह बढाये ॥ ४६ ॥

दो०—नारद सारद बिमल जस, सरद छपाकर छीर ।
ता छिन आये कंस कै, परम हंस मति धीर ॥ ४७ ॥

रथो०—ब्रह्मपुत्र न्रप सों कही सबै ।
हे नरिन्द्र यह जानिये अबै ॥
अंस जानि जदुबंस गोपजे ।
इन्द्र आदि सब जानि देवते ॥ ४८ ॥
देवमातु यह जानि देवकी ।
देवतात बसुदेव भेव की ॥
हे अचेत चित चेत जानि कैं ।
दैत्यराज तनु आयु मानि कैं ॥ ४९ ॥

दो०—बासुदेव बसुदेव ग्रह, लैंहि अवनि अवतार ।
यों कहि कैं तहँ देवरिसि, गये ब्रह्म आगार ॥ ५० ॥

भुजंग—पर्यौ राव कौं सोचु भावै न आनैं ।
धराब्रन्द ब्रंदार अवतार जानैं ॥
धरैं देह दैत्यारि देवाधि जो हैं ।
परैं बह्म मायासु ब्रह्मादि मोहैं ॥ ५१ ॥
यहै दानवी देह है राज्य तामें ।
करौ क्रत्य जोई बचै म्रत्यु जामें ॥

रगन नगन पुनि भगन भनि, द्वै गुरु अन्तहिं आनि ।
श्रवन सुखद कहतनि बहै, सुमति 'स्वागता' जानि ॥

तहाँ देवकी देव कौं तात आनै ।
प्रसे साँकरै साँकरै में सुखाने ॥ ५२ ॥

हने अर्भके गर्भ अग्रे भयेजे ।
दुनी देखि संताप तापै दहेजे ॥
महादुष्ट कोही कृतघ्नी अदाया ।
गयौ राखि कै रक्षिकै क्षुद्रमाया ॥ ५३ ॥
पिता उग्रसेनै जबै बन्दि दीन्हौं ।
लियौ राज भूपाल ह्वै भोग कीन्हौं ॥
घने मत्त मातङ्ग के जूह राजैं ।
सुराजी भली बाजि राजी बिराजैं ॥ ५४ ॥
रथी सारथी सूर सामंत बाढे ।
बली बीर हैं धीर संग्राम गाढे ॥
रहै बाहुरक्षा अनी चारु सोहै ।
धरा कौं जुरै सक्र कौ मान मोहै ॥ ५५ ॥

कुरुदेस पांचाल हैं सल्य जीते ।
बिदेही दुरै दर्व बैदर्भ रीते ।
डरे सल्ल कौसल्ल कैकै जहाँ लौं ।
डरे मत्स्य कालिङ्ग मालौ तहाँ लौं ॥ ५६ ॥

भरे भीर आभीर जादौ भगाने ।
रहे सेब राजा सदा ही सकाने ॥
जरासिन्धु सों प्रीति कीन्हीं सुखारी ।
लसै आपुसौं जो सजौ कोस भारी ॥ ५७ ॥

अदंडानि को दंड दै बीज खण्ड्यौ ।
बढ्यौ कंस कौ तेज भूमंड मंड्यौ ॥
मिले अग्रवर्ती महा पापकारी ।
बली वीर दानौ परद्रोह धारी ॥ ५८ ॥

दो०—जैसी न्रप की कुटिल मति प्रकृति नीच रत सोइ ।
तैसो मिल्यौ सहाइ सब कुसल कहाँ ते होइ ॥ ५६ ॥

षट०—अघ, बक, सकट, सवत्त, पूतना, त्रनावर्त बर ।
केसी, व्योम, प्रलंब, धिंगु, धेनुक, धर्षनधर ॥
मधु, अरिष्ट, मतिनष्ट महामुष्टक, पुष्टक दह ।
क्रूर, सूर, चानूर भूर मातंग कुबलनद ॥
इन संग पाइ दुर्मद न्रपति कंस बिस्व पीडा करन ।
सब लोक लोक संतापमय भूमि भूप सेबहिं चरन ॥ ६० ॥

दो०—षट बालक कीन्हें निधन देवकीय दुखबान ।
फननाइक लाइक उदर बसे आइ बलवान ॥ ६१ ॥

महिपालनि के मुकट मनि, सुनहुँ परीच्छित राइ ।
भगवत अमित चरित्र ये, कहि सुक मुनि समुझाइ ॥ ६२ ॥

लक्ष्मी०—देव के तात की नारि आनंद कै ।
रोहिनी सोहिनी सो रहै नंद कै ॥
जानि श्रीनाथ ने ख्याल एकै लह्यौ ।
जोगमाया हि दै मातु तासों कह्यौ ॥ ६३ ॥

देवकी गर्भ में जान चाहौं यही ।
नाग कौं इन्द्र सो बासुकीन्हौ तहीं ।
कर्सि कै अर्क कौ तेज ल्यावौ महाँ ।
रोहिनी गर्भ में अर्भ राखौ तहाँ ॥ ६४ ॥

चारि चरन के चरन कल, ग्यारह तेरह जानि ।
पंद्रह तेरह छै चरन, 'षटपद' छन्दु बखानि ॥

चारि रगन जामें परैं, 'लक्ष्मीधर' यह छंद ।
याहीं सों फिरि 'अकविनी' कहत सुकवि आनंद ॥

राम है नाम ताको अनंतै लहै।
कामपाली बली बीर तासों कहैं।
अग्रजै अद्भुतै कर्म तामें बसैं।
धीर धारैं धरा, सो धरा पै लसैं॥ ६५॥
आप हू नंद के धाम में औतर्‌यौ।
दुष्ट संहारनी सुष्ट देहै धर्‌यौ।
नंदजा वैष्णवी नाम कृष्णा भनैं।
नाम नारायनी भीमकाली गनैं॥ ६६॥
अंबिका चंडिका भद्रिका वोक में।
धूप दै दान पूजा करैं लोक में।
सासना दै कही जाहु उत्ताल में।
जीव मोहौ महामोह के जाल में॥ ६७॥

दो०—दै प्रदच्छिना दच्छमति त्रिभुवन पति के जानि।
अभिबंदन करि नंद घरि आई आइसु मानि॥ ६८॥

सारं०—आनंदिनी जोगमाया ब्रजै आइ।
राख्यो तहाँ मंगलै दंगलै छाय।
खैंचे बली देवकी गर्भ तें मोचि।
राखे तहाँ रोहिनी गर्भ में सोचि॥ ६९॥
कीन्हौं तहाँ आयु अवतार को भासु।
लीन्हौं जसोदा हि के गर्भ में बासु।
फैली चहूँ दीप्ति है नंद के गेह।
आई तहाँ जोगमाया धरैं देह॥ ७०॥

दो०—तिहि अन्तर संतन सुखद अखिल निरंतर बान।
उदर देवकी आइगे सर्व लोक भगवान॥ ७१॥

बिमल बरन को छंदु यह चारि तगन के संग।
उपजतु बानी रंग रस, पढ़त छंद 'सारंग'॥

तो०—प्रभु आयव ताकहँ वेद रढैं।
मुखपंच बिरंचि सुरेस पढैं।
जग में जगजीवन जोति यही।
थल थंभन आदि अनादि कही ॥ ७२ ॥
हिय प्राचिय पूरन चंद बढ्यौ।
जनु रूप अमीतन सिन्धु कढ्यौ।
कहि कंस प्रभा लखि कैं भगिनी।
मम मृत्यु हुताशन की अरनी ॥ ७३ ॥
दुति आनन कानन कंज लजै।
छवि छोह करै मन धीर तजै ॥
तकि अन्तर बाहिर ओज घनौ।
षट अन्तर भानुहिं जानु मनौ ॥ ७४ ॥
तन ओज उदोत धरा परसै।
जनु बाडव तेज पयोधि बसै ॥
मन संपुट मध्य कि तर्कन में।
जनु दीप सिखा दुति दर्पन में ॥ ७५ ॥
छवि धाम मसाल उदौ सरसै।
जननी उरमें प्रभु यों दरसैं ॥
इमि अंग सुसा छवि रंग भयौ।
उपज्यौ प्रभु आनि सुजानि लयौ ॥ ७६ ॥
बध जोग नहीं मनु नाथिर है।
रमनीय सगर्भ सुसा फिरि है ॥
यह कर्म अघोर न होइ महाँ।
हिय बर्तिव आइ सुधर्म तहाँ ॥ ७७ ॥

चारि सगन तामें रचौं पिंगल मति अवरेखि।
कवि मुख रोचक पढत हैं 'तोटक' छंदु बिसेखि।

मनकौ मन माँझ बिचार कर्‌यौ।
लखि हिंसहि भूप हहाइ डर्‌यौ॥
चलि चित्त हि चित्त लपेटि लयौ।
तहँ सूर अनेकनि छंडि गयौ॥ ७८॥

दो०—मन अकुलाइ डराइ तन, छन छन तर्क अनेक।
उठत चलत बैठत परत, कल न परत पल एक॥ ७९॥
कहत सूत सौनक सुनहुँ, सुमति सुज्ञान निकेत।
आये सुर ब्रह्मादि जुरि, गर्भस्तुति के हेत॥ ८०॥

वंश०—स्वयंभु सम्भू सग सिद्धि सोहिजे।
पुलोमजा नाथ सुपर्ण मोहिजे॥
मुनीन्द्र के बृन्द्र अनंद राजहीं।
सनन्द सौं नारद संग साजहीं॥ ८१॥
अनादि जो ब्रह्म सगर्भ मानिकैं।
करैं प्रसंसा निज भाग जानिकैं॥
रिचानि सों वेद उचारि कौं करैं।
हिये महाँ प्रेम उमंगि सों भर॥ ८२॥

इन्द्रवं०—हे नाथ हे नाथ अनाथ देवकी।
धन्या सुमान्या वसुदेव सेवकी॥
भूतेस के मानस राज हंसौ।
जोगीस के ईस नगीस ईस सौ॥ ८३॥
त्राता त्रिलोकी भव भीर सोक के।
दाता सदा दीनन चिन्ह मोख के॥

उपेन्द्रवज्रा अन्तको गुरु लघु करि गुरु देव।
यही वृत्ति वंसस्थ की कवि जन बुध रचि लेव॥
दो०—जहाँ आदि वंसस्थ की लघु कौं गुरु पढि सोय।
होतु इन्द्रवंसा प्रकट यह जानौ सब कोय॥

अंभोज से वोजस अंघ्रि राजहीं ।
सुभ्रांसु की भा नख सोभ साजहीं ॥ ८४ ॥
चिन्हानि सौं अंकित अंकमेदिनी ।
कीजै प्रभो पावनि सृष्टि के धनी ।
माया परै रूप अनूप राजहीं ।
मायाहि संजुक्त अनूप साजहीं ॥ ८५ ॥
ब्रह्माण्ड कौं एक अनूप ही करौ ।
संसार कौ पालन भार ही हरौ ।
राकेस सौ आनँद देव देखियै ।
आनन्द ए लोचन मानि लेखियै ॥ ८६ ॥
दो०—गोद्विज सुर रच्छा करन प्रकट होहु जगदीस ।
गये पितामह लोक निज सुनासीर गौरीस ॥ ८७ ॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द बृन्ददायिन्यां शरच्चन्द्र चारु मरीचिकायां श्रीकृष्णचन्द्रिकायां द्विजगुमान विरचितायां गर्भस्तुति वर्णनो नामा तृतीयः प्रकाशः समाप्तः ॥

चतुर्थ प्रकाश

सो०—भगवत जन्म चरित्र, यहै चतुर्थ प्रकास में।
सुन न्रप परम पवित्र गोकुल कौं हरि जाँय फिरि ॥ १ ॥

चाम०—गीरबान के बिमान आनि द्वै अकासु ही।
लै प्रसून स्वच्छ सक्र हर्षि बर्षि आसु ही।
चित्तमोद मानि निर्त नाद कौं नटी करैं।
किन्नरी अनीक नीक तान मान सौं भरैं ॥ २ ॥

दुन्दुभी गभीर दीह गर्जि लर्जि बाजहीं।
देवजूह के कुतूह अंग अंग साजहीं।
संभु औ स्वयम्भु अंबिका उछाह जानिकैं।
अजन्म ब्रह्मजन्म देखि धन्य जन्म मानिकैं ॥ ३ ॥

दो०—गावत गंध्रप गुन खरे, भरे प्रेम के भार।
विद्याधर चारन चतुर, करैं प्रसंसा सार ॥ ४ ॥

दो०—कला वितक्रम कीजिये, दोहा का चतुरंग।
होत 'सोरठा' रतगढा पढत न बाढे रंग ॥

छ०—दिसा बिभाग प्रसन्न सघन परजन्न गगन मँह।
अमी बरस जलबिन्दु मधुर गुनि करत मगन मँह।
तिथि नछत्र ग्रह सकल सुग्रही उच्च सुहावन।
लग्न कर्न सुभ जोग सर्बरी प्रिय मन भावन।
भनि 'मान' लता मकरंद चुव त्रिविध अनिल हीतल सुखद।
गरज नदी सँग भीर सुर उमडि नदी नद पूरि हद ॥ ५ ॥

दो०—तेज अनिल नैरित्य कौ, बहन ज्वलन करि जोर।
भुवन भूरि मंगल जहाँ, उमगि भर्यौ चहुँ ओर ॥ ६ ॥
तो०—भगवान उदित जानि, ससि पूर्व पर्व प्रमानि।
वसुदेव के ग्रह आइ, अज ईस ताकँह ध्याइ ॥ ७ ॥

मधु०—अधरात होत, ससि के उदोत।
प्रकटै जुस्याम, प्रभु जक्त धाम ॥ ८ ॥
दो०—सोडस कला कलंक बिन, सरत मयंक समान।
अमीकिरन छवि तन परत दंपति देह जुडान ॥ ९ ॥
पद्ध—सिर पुरट मुकट छवि ध्रत उदण्ड।
मनि जुटत जोति कोटिन प्रचंड।
सुभाग्य भाल सोभा नरिन्द।
मृगदान बिन्दु निन्दक मिलिन्द ॥ १० ॥
भ्रूभंग बाल अवलीन ऐन।
रहि अमल कमल दल नवल नैन।
कच कुंच मेच चिकने अबंध।
जे सने दिव्य सौरभ सुगंध ॥ ११ ॥
मनिकिरन मकर कुंडल बिलोल।
छवि गिलत उगल गौरव कपोल।

तोमर जो वर कौ चरन सगन जगन जब दोइ।
वाही सों 'मधुमार' कहि एकु जगन ते खोइ।

सुक तुंड मंडि नासा सुकोस ।
　　झल झलत खुलत जनु जलज जोस ॥ १२ ॥
छवि अधर सधर रंग चुवत लाल ।
　　बंधूक दूख बिम्बा प्रबाल ।
दिवि दसन दीप्ति दमकत सुदेस ।
　　जनु कुन्द कुलिस कर निकर बेस ॥ १३ ॥
मृदु मंदहास हुलस्यौ हुलास ।
　　सुख सिन्धु सीव कीन्हौं प्रकास ।
ठोडी सुरूप द्रग ठहरि बाढि ।
　　मनु परिव गाढि को सकहि काढि ॥ १४ ॥
कल कम्बु कंठ लावन्य चारु ।
　　तँह कौस्तुभ किरनोदय उदारु ।
सुभ वत्त लत्त भ्रगु पद रसाल ।
　　मनि मुकुलि मल्लिका मुक्तमाल ॥ १५ ॥
भुज चारि चारु आबद्ध चारि ।
　　दर पद्म गदा कर चक्रधारि ।
अज्जान बाहु मनि बाहुबंध ।
　　उन्नत बिसाल बलि बन्ध कन्ध ॥ १६ ॥
कर कंज करज चितु लेत चोर ।
　　छवि बनक कनक कंकननि जोर ।
लखि रोम रेख नाभी रसाल ।
　　धसि अमिय कुंड कुंडलिय बाल ॥ १७ ॥
त्रिवलीन लीन मनु छोड़ि दम्भ ।
　　छवि होति जहाँ छन छन अरम्भ ।
जग मगति जोति जज्ञोपवीत ।
　　लिय सघन घटा दामिनी जीत ॥ १८ ॥

पटु पीत पीत धोती अनूप ।
जिन जातरूप कीन्हौं बिरूप ।
मनिबद्ध किंकिनी मद्धदेस ।
कलहंस बंस रव करि सुबेस ।। १६ ।।
प्रन प्रभा पीडुरिन लयो पीन ।
मनु गुलफ सुलफ आधीन दीन ।
दुख हरन चरन पँकरूह कोस ।
नख चंद्र चन्द्रिका वै अदोस ।। २० ।।
पगतलनि चिन्ह चिन्हित सुरेस ।
धुज बज्र गदा दिक जव विसेस ।
जिनि चरन कढी सुर्धुनी धार ।
त्रैताप साप पातक बिदार ।। २१ ।।
जे चरन सेस सनकादि बन्दि ।
श्रुति सारद नारद लखि अनन्दि ।
जे चरन ल्याइ अज ईस ध्यान ।
ते कहहिं कहा लघुमति 'गुमान' ।। २२ ।।

दो०—प्रेमाकुल बसुदेवजू पुलंकाकित सब गात ।
नमित कन्ध अस्तुति करैं जोरैं करज लजात ।। २३ ।।

शालिनी—बंदौं बंदे देव देवाधि स्वामी ।
मायापारै ब्रह्म आनन्द गामी ।
माया छाया सौं छपै जीव जानैं ।
चिन्ता ग्रासे चित्त ईसै न आनैं ।। २४ ।।
त्रै आत्मा हौ नाथ न्यारे त्रयी कौ ।
बर्त्तै जे त्रैकाल बानी कही कौ ।।

पंच आदि गुरु एक लघु द्वै गुरु यगन जुआनि ।
कवि मुख पढ़त रसालिनी छंदु 'सालिनी' जानि ।।

सोहे मोहे रूप अज्ञान नासै ।
जोहैं सोभा कोटि भानै प्रकासैं ॥ २५ ॥

दो०—तदनन्तर लखि देवकी, सिसु लच्छन करतार ।
कर जोरैं अस्तुति करति जानि बिस्व भरतार ॥ २६ ॥

सुन्द०—कह दुरै यह रूप अपार है ।
निगम तत्तनि कौ प्रभुसार है ॥
जगत जोति प्रकासित कौं करैं ।
विपति दीननिकी छिन में हरैं ॥ २७ ॥
ललित अंगन भूषन राज हीं ।
ज्वलित आयुध चारि बिराज हीं ॥
पुरुस पूरन रूप निहारिये ।
सिसु लखैं दृग सो तन धारिये ॥ २८ ॥

दो०—जवजानी जननी जनक संभ्रम भ्रमै निदान ।
हँसि बोले भुवनाधिपति त्रिभुवन के सुख दान ॥२६॥

प्रमि०—यह जानि मातु मन धीर गहौ ।
सुचीतीय होहु दुचिती न रहौ ॥
सुचि पूर्व जन्म तुव कर्म कहौं ।
व्रत नेम धर्म सब संग लहौं ॥ ३० ॥
तुव पश्नि नाम जग आदि जबै ।
सुतपा सु नाम बसुदेव तबै ।
कहि अब्ज जोनि तुम सृष्टि रचौ ।
नहिं मानि जानि मम भक्ति रचौ ॥ ३१ ॥

आदि नगन फिरि द्वै भगन अंत रगन गनि लेइ ।
छंद 'सुन्दरी' सुकवि मुख सुंदर छवि को लेइ ।
आदि सगन फिरि जगन दै अंत सगन दै दोइ ।
कवि प्रमुदित 'प्रमिताक्षरा' छंद छबीलौ होइ ।

बन मध्य जाइ सुख बास बसैं ।
सब स्वादि बादि विषयादि नसैं ॥
दृढ ध्यान धारि तन धीर धर्यौ ।
मनु है अनित्य थिर ताहि कर्यौ ॥ ३२ ॥
तँह सीत भीत मिलि बात सह्यौ ।
तन चर्म श्रोन सब सूखि रह्यौ ।
रहि अस्थि सेस सुख नेह जग्यौ ।
मम पद्म पाइ प्रन प्रेम पग्यौ ॥ ३३ ॥
तप अग्नि तेज तनु ताइ कर्यौ ।
तिहिं पाइ रूप तुम कौं दरस्यौ ॥
तव ह्वै प्रसन्न बरु देन लग्यौ ।
नहि मुक्ति माँगि मन मोह लग्यौ ॥ ३४ ॥
मन माँझ आइ अभिलास भयौ ।
कहि 'एवमस्तु' निज लोक गयौ ॥
निजु हौं बिचारि करि देखि तहाँ ।
सिसु मो समान कहु और कहाँ ॥ ३५ ॥
तव प्रश्नि गर्भ तुव गर्भ भयौ ।
जग कौ तु ताप अघ वोघ हयौ ॥
दिति देवतात तुम फेरि भये ।
तहँ बिस्वरूप सुभ रूप लये ॥ ३६ ॥
अव देवकीय बसु देव सुनौ ।
तिनि हो जु पुत्र परब्रह्म गुनौ ॥
हिय संक छोडि दुख दूर करौ ।
न्रप कंस आदि भुवभार हरौं ॥ ३७ ॥

चारि भगन कौ चरन रचु पिंगल मनु अवरेखि ।
मन मोदित पढ़तन करै 'मोदक' छंदु बिसेखि ॥

दो०—जननी जनक प्रबोधु करि, रहे फेरि गहि मौन ।
तिनि आगे देखत तिन्हें परे सूप के कौन ॥ ३८ ॥
कहाँ दुरैं कैसी करैं यों दम्पति बिलखाइ ।
रंकनि निधि पाई मनों संकनि मनु अकुलाइ ॥ ३६ ॥

मोद०—टूटि कठोर गई पगबेरिय ।
बज्र कपाट खुलै तेहि बेरिय ।
रक्षक मृत्युग्रसै जनु सोहत ।
बिस्वबिमोहनि मायहि मोहत ॥ ४० ॥

दो०—अयुत धेनु संकल्प करि मनु बसुदेव विचक्ष ।
सहित अलंकृत पयश्रवा सुखदा सहित सबक्ष ॥ ४१ ॥

दं०—हर्बरात बसुदेव बासुदेव लिये सीस,
दर्बरात दौरु डरू कंस बलवान कौ ।
घर्घरात जमुना तरंग तोय बाढि उठ्यौ,
झंझनात झनकनि झिल्लिनि झलान कौ ।
थर्थरात देह भारी भय सों भरत डग,
चमचमात चमकि चहूँघा चंचलानि कौ ।
सर्बरात पौन पय पातन पै भर्भरात,
धर्धरात धाराधर झर्झर झलान कौ ॥ ४२ ॥

मर०—छिति तल पय बाढौ अति तम गाढौ चलतैं मगु न लखाइ ।
तँह केहरि हुंकनि फनिबर फुंकनि संकनि मनु अकुलाइ ।
चलि धसे सुनीरे उर भरि पीरे साहसु करि समुहाइ ।
कालिंदी लहरैं उठती छहरैं पग परसैं फिरि आइ ॥४३॥

दो०—कूल कलिन्दी पारभै संकित मन बसुदेव ।
गोकुल पुर पहुँचे लिये सीस चराचर देव ॥ ४४ ॥

दो०—दस बसु एकादस बिरति, सकल कला उनतीस ।
'मरहठा' हट्ठैन मति पढत बिमल बागीस ॥

कुसुम०—ग्रह ग्रह गेही पति अवरोहे।
हरि बल माया सब नर मोहे॥
महरि बिलोकी तलपहि सोई।
सुबरन कन्या किलकित जोई॥ ४५॥
धरि प्रभु सोभा सघन घटा सी।
धरि सिर दुर्गा तडित लतासी॥
हर बर धाये करि यह तूता।
चलि तँह आये भवन प्रसूता॥ ४६॥

दो०—कन्या दीन्हीं देवकिहि, बसुदिव मन उच्चाट।
निगड पाय पहिरे बहुरि, फिरि हनि दये कपाट॥ ४७॥
रोदन कन्या को सुनत, उठि रक्षक अकुलाइ।
गिरत परत पहुँचे कही, कंस त्रपति पै जाय॥ ४८॥

तो०—यह बात सुनी त्रप नाथ जबै।
उठि सीघ्र ससाइध धाइ तबै॥
गति घूम गयंद हियौ धर कौ।
डग देत डगै जु भर्‌यौ उर कौ॥ ४९॥
चलि आइ गयौ जु प्रसूत तहाँ।
कर खड्ग लिये उर रोस महाँ॥
सुनि भ्रात अभय पद माँगति हौं।
तजु बाल भनै जिहि भाखति हौं॥ ५०॥
मम पुत्र जनै करि कोह हने।
ससि तुल्य मरीचनि जोति घने॥
यह दीन अनाथ सुनाथ सही।
कर जोड़ि सुअंचल झाँपि रही॥ ५१॥

जहाँ आठ लघु मध्यमै द्वै गुरु, द्वै गुरु अन्त।
'कुसुम विचित्रा' छन्दु यह अति बिचित्र बुधवन्त॥

रहि दंपति अग्र बिनै करि कै ।
अति कंपति देह गरौ भरि कै ॥ ५२ ॥

* ... ...

दो०—नहिं माने सठ हठ करै कुटिल बिटल मति और ।
अधम सुधम नहिं मति हिये, बध करिवे की दौर ॥ ५३ ॥
झटकि गोद ते क्रोध बस, बुध अबोध अवगाहि ।
रजक सजग कर करदई, पटकु सिला पर याहि ॥ ५४ ॥

हीरा०—बाहु रजक तोर तरक जाति हरष जोम में ।
देखि सकल होत बिकल सोभ झलक व्योम में ॥
अंग ललित वोज कलित जोति जलित राजहीं ।
मातु जगति देव भगति सेब सकति साजहीं ॥ ५५ ॥

दो०—ब्रह्मजुलनि की ज्वाल सी, नभ मंडल में मंडि ।
इमि देवी देखी प्रबल, तीखन तेज उमंडि ॥ ५६ ॥

मोती०—धरैं भुज अष्ट समुष्टक बान ।
धरैं असि चर्म सुचक्र निधान ॥
धरैं बर तोमर जो बर सक्ति ।
धरैं धनु सूल गदा अनुरक्ति ॥ ५७ ॥
धरैं अरि नासिनि पासनि अत्र ।
धरैं बल बज्र बिमर्दन सत्र ॥
धर्‍यौ इमि अद्भुत रूप सह्मारि ।
सकैं नहि सन्मुख रूप निहारि ॥ ५८ ॥

---

* इस छंद के दो चरण मूल पुस्तक में नहीं हैं ।

तीन जहाँ गुरु के तरे चारि चारि लघु लेखि ।
रगन अन्त दै के पढौ 'हीरा' छंद बिसेखि ॥
चारि जगन को चरन जँह बिरचि बिमल सुखधाम ।
पिंगल मत में नाम यह छंद सु 'मोतीदाम' ॥

छ०—अस्त्र सस्त्र कर धरैं सस्त्र असुरेस बिदारिनि।
इन्द्रादिक सुर रच्छि भच्छि दुष्टन संहारिनि॥
बिज्जुलतासी लसति अंग भूसन भर भारन।
अंजलि जोरि प्रसंसि सिद्ध विद्याधर चारन॥
भनि 'मान' दुर्ग दुर्गे महा बिंध गिरिन्द बिहारिका।
भौ हरनि भीम भुव भरवी, पुनि हिमवान कुमारिका॥५६॥

दो०—कहहिं मातु सुनु अधम न्रप, कंस बंस दुख दैन।
तेरौ मारनहार सुनि उपज्यौ जग सुख ऐन॥ ६०॥

तारक०—कहि बात सु मातु गई निज लोकै।
सुनि मानि अचर्ज पर्यौ न्रप सोकै॥
सुर जानि लये सत बोलत नाहीं।
मन रंक कलंक लियौ जु व्रथा ही॥ ६१॥
सुनिये बसुदेव जु साधु सयाने।
जगु मोकँह तौ अपराधिय जाने॥
तजि धर्म सुधर्म अधर्म लये जू।
तुव बाल बिसाल जु हाल हये जू॥ ६२॥
यह काल कराल बली बरियाई।
सुनि देव अदेव बचै न बचाई॥
अब जानि तजौ जिय की दुचिताई।
तुव ज्ञान बिबेकनि में मति पाई॥ ६३॥

दो०—साधु साधु बसुदेव सों कहि मन कीन्हौं बोध।
बंधन छोरे प्रनत करि चलि मन सोक निरोध॥ ६४॥

सोरठा—तोटक हू के अन्त और एक गुरु देइ जहँ।
छंद होइ बुधवन्त, 'तारक' नाम सु जानिये॥
लघु दै और जु अन्त पै पढ़ै भुजंग प्रयात।
कवि नरिन्द सुनि लीजिये छन्दु 'कन्दु' अवदात॥

यदपि दुष्ट उर ज्ञान हुव, रहतु न थिर कर बासु।
छिन निरमल छिन फिर दबतु ज्यौं बरखा आकासु ॥६५॥

छन्दु०—उठै प्रात ही राजनिद्रा गई खोइ।
भ्रमै चित्त की ब्रत्ति भै गात में भोइ ॥
लिये सीघ्र ही मित्र मन्त्रीन कौ बोलि!
सबै बिस्वद्रोही बिसै बुद्धि के लोलि ॥ ६६ ॥
करयौ मंत्र मंत्रीनन कै सार।
कहैं मूढ तासों सुनो भूमि भर्त्तार ॥
करै सूनु जे नून संसार के नासु।
बचैगौ कहाँ सत्रु कीन्हौ जहाँ बासु ॥ ६७ ॥
गहैं पत्त पच्ची कहूँ जो सुपर्वान।
लहैं हाथ में नाथ ताकौ धनुर्वान ॥
लजैंगे भजैंगे सुनै चाप टंकोर।
रनै ना जुरैंगे फिरैं दीन ह्वै चोर ॥ ६८ ॥
अलोपै रहैं विष्णु देखै नहीं कोइ।
तपी धूर्जटी रूप कैसे जुरे सोइ ॥
बिधाता न ज्ञाता कछू जुद्ध की रीति।
लरै सन्मुखै क्यों तजै भूमि ह्वै भीति ॥ ६६ ॥
वहै दैत्यहा सत्रहा बिस्नु कौं जानु।
मुरारी खरारी वहै दैत्य कौ मानु ॥
वहै निर्जरा मूल धर्मै धरा बाहि।
त्रिसूली स्वयंभू सदा सेबहीं ताहि ॥ ७० ॥
जमी संजमी जे ब्रती वेद को धारि।
मखी होमकर्त्ता मिले नेम साचारि ॥
दयाकर्म श्रद्धा करैं बिप्र जे साधि।
समर्पै सबै वैस्नवी विस्नु आराधि ॥ ७१ ॥

हतै कर्म कर्ता जबै कर्म कौ नास।
तबै दीन ह्वै देव राखें प्रभू आस ॥
यहै नीति जो जीति जानौ महाराज।
यहै बात जो हाथ सीझैं सबै काज ॥ ७२ ॥

दो०—इहि विधि मंत्रिनि मंत्रु करि समुझायो महिपाल।
गोदुज सिसुबध पुष्टकरि, मन आयौ तँह काल ॥ ७३ ॥

पंकाव०—बोलत जहँ तहँ दैत्य न वृन्दन।
जेमन मिलि खल सासन बंदन ॥
दैतन हुकुम गयौ त्रप धामहिं।
जेमन विपुल विषै मन कामहिं ॥ ७४ ॥

फैलि अवनि तल में चलि पापिय।
गोदुज सिसु हति कै चित तापिय ॥
भै बस जगतु भयौ भ्रम भीरनि।
जीव सकल खल पेरत पीरनि ॥ ७५ ॥

दो०—गोदुज संत सतावहीं, हठ बस सठ अज्ञान।
तिनहिं कृपानिधि हनहिंगे जो मरि रहे अयान ॥ ७६ ॥

इति श्रीसज्जनकुल कैरवानंद बृंददायिन्यां शरच्चंद्र चारु मरीचिकायां श्रीकृष्णचन्द्रिकायां द्विजगुमान विरचितायां श्रीकृष्णजन्म गोकुल-गमनं नाम चतुर्थः प्रकाशः समाप्तः ।

आदि एक गुरु छ लघु पुनि, दोइ भगन पुनि लेइ।
कवि मुख पंकज पढत में 'पंकावलि' छवि देइ ॥

पञ्चम प्रकाश

दो०—यह पञ्चमें प्रकास में जन्मोत्सव भगवान ।
धूत पूतना सकटहनि त्रनाबर्त बलवान ॥ १ ॥
उठे प्रात श्री नन्दजू भयौ जबै सुत जानि ।
पुरजन परिजन विप्रगन करी बधाइ आनि ॥ २ ॥

* झू०—द्वार सुबरन बनैं बँध तोरन घनैं,
उच्च प्रासाद ग्रह केतु डोलैं ।
सूत चारन तहाँ पढत मागध जहाँ,
बिरद बिरदैत बंदीय बोलैं ।
अजिर सुचिसौं सच्यो छिरकि सौरभ रच्यो,
बिसद करि कुंभ मनि चौक पूरे ।

दसदस फिरि सत्रहकला चरन करहु विश्राम ।
छंद 'झूलना' कौं रचौ बिमल बुद्धि छबिधाम ।

* यह दूसरे प्रकार का झूलना छंद है । पहिले प्रकार के झूलना छंद में २६ मात्राएँ, अन्त में एक गुरु और एक लघु का नियम है । किसी के मत में झूलना छंद तीन प्रकार का है वह भी इसी के अन्तर्गत है ।

खंभ कदली हरे हरद अछत भरे,
कनक मनि जटित कल कलस रूरे ॥ ३ ॥

गुरु जननि दै मान कुल जननि सुखमान,
ग्रह काज अगिवानि करि आनि राखैं।
तँह दुजनि कौं बूझि बिधि सुरनि कौं पूजि,
परि पाँइ जँह बिनय बैन भाखैं ॥ ४ ॥

सुभवेद उच्चार कुलरीति साचार,
पुनिलोक बिधि कर्म करि धर्म नाधैं।
करि सजन ब्यौहार लै मित्र उपहार,
भरि प्रीति के भार उर रीति साधैं ॥ ४ ॥

तँह नंद उपनंद गोपीन के बृन्द;
मिलि ग्वाल आनंद रस रंग भूले।
करि उरनि में ऊब लै फूल दधि दूब,
मन माल कुसुमाल पट पहरि फूले।
बरहीन के पत्त धारै छवी स्वच्छ,
भ्रम भरे गति लच्छ तँह धरनि खूदैं।
दधि परसपर खेलि तन लेपि मुख मेलि,
भुज भुजनिसों झेलि पग उच्च कूदैं ॥५॥

छवि ग्वाल जगमगे, गिरि धातु तनरँगे,
उर प्रेम सों पगे तँह फिरत चाँडे।
ललित रोचन महाँ, कलित केसरि तहाँ,
बलित गोब्रख भगहिं शृंग माँडे ॥

जँह न्रत्य करि गान, भरि तान दैमान,
सुखदानि ललनानि के जूह भ्राजैं।
कटि किंकिनी कनक मंजीर धुनि झनक,
कर कंकननि खनक मिलि बलय बाजैं ॥ ६ ॥

* प्रनव बीना सजैं, संख भेरी बजैं,
दुन्दुभी गरज घन घटा गाजैं।
मुरज लरजैं भली, सुरनि जंत्रनि मिलीं,
गुनी गन अमित गुन गूढ़ राजैं॥
जँह हीरमनि मालदै, चीर मुकतालिदै,
जाचकनि दान दै, अचक कीन्हें।
तिलनि गिरि हैम दै, रजित गिरि धेनुदै,
ऊसही खरिकलै छिरकि दीन्हें॥ ७॥

दो०—करत कुलाहल गोपगन, भई भीर अति गेह।
नगर नारि सजि सजि चलीं, देखन सहित सनेह॥ ८॥

मा०—सुनि सिसु पिय प्यारी, नंद के धाम धारी।
कर गहि भरि भारी सौज आनंद थारी॥
उनमद गति राजैं, मत्त मातंग लाजैं।
मनिगन पट साजैं रंग सौंधें बिराजैं॥ ९॥
मृदु तन बर बेलीं, संग सोहैं सहेली।
भुज भुज गहि मेली, काम की कोक चेली।
मदन कल कलासी, अंग सोभा प्रकासी।
छवि तडित लतासी, सोहती मंद हाँसी॥ १०॥
सुख बस मुख खोलैं, जातु राकेस जोलैं।
मधुकर मधु डोलैं, कंज के कोस भोलैं।
उरभरि छविसाला, मंडती मुक्तमाला।
सुखरित सुरजाला, किंकिनी रव रसाला॥ ११॥

---

* मूल पुस्तक में 'प्रनव' पाठ है परन्तु यहाँ 'प्रनव' ओंकारार्थवाची शब्द का कोई अर्थ नहीं। वस्तुतः यहाँ 'पनव' शब्द होगा, जिसका अर्थ एक प्रकार का बाजा है।

आदि नगन द्वै मगन फिरि अन्त यगन दै दोइ।
आठ सात पै विरति रचि छंद 'मालिनी' होइ॥

कटितर दुति दैनीं, डोलती चारु बैंनी ।
कल रव पिकबैंनी गीत गावैं सुनैनी ॥
झल झल झल सोहैं देखि को हैं न मोहैं ।
धुनि सुनि मुनि छोहैं, मुंज मंजीर जोहैं ॥ १२ ॥
चलि सुवन निहारौ, चंद सोभा उज्यारौ ।
तन मन धन वारौ, चित्तु छोडै न प्यारौ ॥
इक टक मुख राहैं, नैन औरै न चाहैं ।
फिरि फिरि अवगाहैं रूप पावै न थाहैं ॥ १३ ॥

दो०—नवल नारि निर्तहिं जहाँ, धन्य घरी दिनु लेखि ।
चढि बिवान आये अमर, समय सुमंगल देखि ॥ १४ ॥

* वसं०—इन्द्रादिदेव गगनांगन आनि छाये ।
देवाङ्गनानि मृदु मंगल गीत गाये ॥
रम्भादि रम्य रमनी करि गान नर्तैं ।
संगीत रीत भरि भेदन भेद बर्तैं ॥ १५ ॥
बीना मृदंग धुनि दुंदुभि दीह बाजैं ।
गंधर्व-किन्नर सतुम्बर तान साजैं ॥
गीर्वानि बानि कहि छंदनि बन्दि हर्षैं ।
मंदार के कुसुम अंजुलि धार बर्षैं ॥ १६ ॥

दो०—देखि विभौ मोहे अमर मगन मोद मन मान ।
नंद अनंदे लोग सब दान मान सनमान ॥ १७ ॥

तगन भगन फिरि द्वै जगन द्वै गुरु दीजै अन्त ।
यौं 'वसन्ततिलका' रचहिं कविजन जे बुधवंत ॥

* त, भ, ज, ज, ग. ग. । श्रुतबोध में वसंततिलका छंद में ८.६ पर यति कही गई है, परन्तु हलायुध में पदान्त में यति बताई गई है, सम्भवतः छंदः प्रभाकरकार का भी यही मत है, तो भी ८. ६ पर यति मानने में कोई दोष नहीं ।

कुं०—आयौ नंद निकेत में ब्रह्म सच्चिदानन्द।
अष्टसिद्धि नवनिद्धि तँह भरिव भुवन आनन्द॥
भरिव भुवन आनंद भयौ भुव मंगल भारी।
परम रम्य ब्रजभूमि नारि नर छवि अधिकारी॥
देव पितर कुल देव तुष्टि सब ही सुख पायौ।
रही न कौनौं साध जहाँ प्रभु आपुहि आयौ॥१८॥

दो०—नितनव होंइ बधावने नित नव मंगल गीत।
नित नित दान अनेक बिधि नित नव सिसु पर प्रीति॥ १९॥

नि०—नंद उपनंद करु दैन मथुरै चले।
गोप गन राखि ब्रजमाँह सजिकै भले।
जाइ न्रप द्वार करि भेंट मुरके जबै।
वीच बसुदेव भरि अंक मिलियौ तबै॥ २०॥
नंद तुम धन्य सुत चंद उपज्यौ सुन्यौ।
पुन्य भरपूर तुव जानि मन में गुन्यौ।
हौंहि तिहि लागि उतपात ब्रज में जहाँ।
मीत बुधवन्त दिन अन्त बसियौ नह्याँ॥ २१॥

दो०—नन्दादिक महलनि चढे बिस्मित मन अकुलाय।
इन नैननि कब देखिबी स्याम रूप सिसु जाय॥ २२॥
अधम राच्छसी पूतना पठई कंस रिसाइ।
हिंसा में मतवान तैं ब्रज बालक बधु जाइ॥ २३॥

दंडक—पूतना पठाई मन मोहन पै आई,
चाहै कंस की भलाई महामाया सी बिसेखिये।

दोहा अरु रोला मिलै 'कुंडलिया' रचि लेय।
चरनान्तर तुक परहिं जब आदि चरण को देय।
त्रैगुरु रचि बुधवन्त त्रैलघु क्रमसौं देतरै।
रगन चरन के अन्त, छन्दु यहै 'निसिपालिका'।

तीछन कटाछ रह्यौ ईषद उमंग हास,
मंद मंद चलनि गयन्दनि की लेखिये ॥
भनत 'गुमान' चतुराई हौं कहाँ ते कहौं,
अंग अंग ललित लुनाई अवरेखिये ।
अंक में लगायै विषु कपट मयंकमुखी,
मैन की कलासी मेनुकासी मंजु देखिये ॥ २४ ॥

दो०—हँसति हँसति आई तहाँ महरि रोहिनी गेह ।
करि ब्रीडा ठाडी भई बाढी अधिक सनेह ॥ २५ ॥

* अरि०—द्वार द्वार प्रति झुकि छवि सोहन ।
चाहति मदन मोहनैं मोहन ।
पलना परै देखि पुचकारति ।
लैकर करनि ललन उर धारति ॥ २६ ॥

दो०—जैसे असि बसि कौस में कपट जननि की दृष्टि ।
रजु धोखे लिय सर्प कौं अधम पापिनी नष्टि ॥ २७ ॥

चर०—महरि जकीसी, रहत ठगीसी ।
बलि महतारी, चितवत न्यारी ॥ २८ ॥

प्रथम चरनु सोरह बरन दूजे पन्द्रह जानि ।
दंडक तासो कहत हैं गुरु लघु नैम न आनि ॥
सोडस कला बिचित्र पद भगन दीजिये अन्त ।
यों 'अरिल्ल' पिंगल मतै जमक जहाँ बुधिवन्त ॥

* अरिल्ल छंद के अन्त में भगण ऽ॥ का विधान किया है परन्तु अन्य छंदःप्रभाकर आदि ग्रन्थों में 'अरिल्ल' के अन्त में भगण नहीं है, वहाँ केवल जगण का निषेध किया गया है। मालूम होता है उन्होंने 'डिलना' के भ्रम में आकर 'अरिल्ल' लिख दिया है। 'डिल्ला' के अन्त में भगण होता है एवं उसकी मात्राएं १६ होती हैं।

† प०—जिहि प्रभु श्रुति बरनैं गुन गन गननैं पालन स्रजनैं फिरि हरनैं।
हरनैं दुख पापन सुर संतापन गोदुज दीन रहत सरनैं ॥
सरनैं सुख ताके जग जन जाके लिहि खल मारन को गवनी ।
गवनी खल मारन उर छल भारन नहिं जानति कछु सिसुदवनी२६

दो०—जा माया मोहत सकल जीव चराचर जानु ।
तासौं माया आसुरी यह देखौ अज्ञान ॥३०॥
उरज विषम बूडे गरल मुख मेले मतिमन्द ।
चुहकि चँपरि चाँपे कठिन ब्रजजीवन नदंनद ॥ ३१ ॥

---

* दुज वर दै फिरि करन दै जहाँ सुमति सुखमूल ।
पिंगल मत कौं देखि रचु चरन 'चरन अनुकूल' ॥

* इस दोहे का अर्थ अस्पष्ट है । इसमें 'चरन अनुकूल' छंद का लक्षण नहीं लिखा गया । 'चरन अनुकूल' नाम का कोई छंद भी नहीं है। अनुकूला छंद है जरूर, परन्तु उस छंद से इसकी मात्राएं नहीं मिलतीं। उसका लक्षण म, त, न, न, ग है । पुस्तकस्थ छंद में न, य, न, य, गणों की मात्राओं का छंद है । अतः न, य, न, य, गणों वाला कुसुमविचित्रा छंद है । कदाचित् यही छंद कवि को अभीष्ट होगा कुसुमविचित्रा का दूसरा नाम 'चरन अनुकूल' छंद होगा ।

दस बसु चौदह कलादै यहै रचौ विश्राम ।
यहै छंद पद्मावती, सगन अन्त अभिराम ॥

† पद्मावती छंद में ३३ मात्राएं होती है, १, ८, तथा १४ पर यति, परन्तु अन्य छंदःशास्त्रियों के मत से अन्त में 'सगण' नहीं होता । अन्त में यगण का विधान है । बावा रामदास के मतानुसार यह लीलावती छंद है । परन्तु कवि को इस छंद में १०, ८, १४ पर यति और अन्त में सगण देकर पद्मावती मानना अभीष्ट है, ऐसी दशा में 'दंडकला' छंद दूसरा न हो कर पद्मावती ही होगा । क्योंकि दंडकला में १०, ८, १४ पर यति और अन्त में सगण होता है ।

पद्ध०—कुच छोड़ु छोड़ु रे हे मुरारि।
बै बरन ह्वै गई जरद नारि॥

पय पियत प्रान हरि लिये लाल।
करि चीतकार महि गिरी बाल॥ ३२॥

रव जोर सोर भौ अति अघात।
जनु परिव पुहुप पर बज्र पात॥

निज रूप प्रगट कीन्हौं कठोर।
भई अधम राच्छसी प्रबल घोर॥ ३३॥

छै कोस धरा परसी प्रमान।
बन चूरि धूरि ह्वैगे पखान॥

कच छूटि टूटिगे उरभिहार।
भूकंप कंपतन बेसम्हार॥ ३४॥

गिरि दरिय बदन बढि परे दन्त।
कढि परै नयन भय जीव अन्त।

भई अवर नासिका बिबर रूप।
श्रुति संधि किधौं जनु अंधकूप॥ ३५॥

ह्रद नीर रहित सरसी प्रचार।
फिरि उदर दाह दारुन उदार॥

भुज मूल सेत से सुरन सूल।
जुग जंघ तरंगिनि जमल कूल॥ ३६॥

इमि लसत धरनि को कहहि सूल।
जिमि उसलि पर्यौ पर्बत समूल॥ ....

* ... ... ॥ ३७॥

---

* इस पद्य में अन्त के दो चरण खण्डित हैं।

दो०—जासु वक्ष पर स्वच्छ छवि त्रिभुवन रक्षक खेलि।
झझकि उझकि किलकत हँसत बाहु कंठ में मेलि॥ ३८॥

*चक्र०—धाइ सकल परिजन पुरजन हैं।
नाद कुलिस सुनि बिह्वल तन हैं॥
तापर खेलत लखि भ्रम भर हैं।
खेलत त्रिभुवन पति उर पर हैं॥ ३९॥
भै बस महरि हहरि हरि चलिकैं।
लै मिलि ललकि हिलकि हिय हिलिकैं॥
रोहिनि उरकि लयव प्रभु हिरिकैं।
पाइ सुरभि बिछुरिव बछ फिरिकैं॥ ४०॥

सो०—लीन्है कंठ लगाय मुख चुम्बन सिरु सूँघि कैं।
मिहिर रोहिनी माइ सिसु अस्नान करावहीं॥ ४१॥

†सवै०—डाकिनि साकिनि प्रेत पिसाचिनि जा प्रभु नामहिं लेत निबारैं।
आधि सव्याधि-बिबाद उपाधि जरा जुर जीवन जाल उबारैं॥
मानस पाप बिलाप बिलक्षन अक्षन तुच्छ कटाच्छनि तारैं।
ता प्रभु कौं जसुधा सुखदा भरि अंजुलि राइय नौन उतारै॥४२॥

छ०—राइय नोन उतारि सिसुहिं गोपुच्छहिं झारहिं।
बिप्रन छिप्र बुलाइ करहिं अभिसेक सम्हारहिं॥
स्याम जजुर रिगवेद मंत्र तंत्रन कौं पढहीं।
अस्तव कीलक कवच चतुर अर्गल गन बढहीं॥

---

* जहाँ चतुरदस बरन सब आदि अंत गुरु देव।
नागसक रुचि कै रच्यौ छंद 'चक्रपद' एव॥
छंदःप्रभाकर में इसका नाम 'चक्र' या 'चक्रविरति' है।

† सात भगन जामें परैं चरनान्तर गुरु दोइ।
मत्तगयन्द अनन्द सों रचौ 'सवैया' सोइ॥
इसका दूसरा नाम 'मालती इन्दव' है।

भनि 'मान' रत्न नारायनी दै अस्तन पारे पलन।
दुलराइ झुलाइ सुगावहीं कहि बाला लाला ललन॥ ४३॥

दो०—नन्दादिक आये तहाँ मथुरातैं तिहिं काल।
सकल सुन्यौ उतपात जिन देख्यौ रूप कराल॥ ४४॥

* चंप०—गोप सबै नंदादिक आये।
देखत रूपै बिस्मय छाये॥
जो कछु भाख्यौं तौ बसुदेऊ।
सो सब देख्यौ आँखिन एऊ॥ ४५॥
काटि तबै ता अंग कठोरे।
गोपिनि लै लै कंधन जोरै॥
साजि चिता को अगिनि लगाई।
धूम मई धारा नभ छाई॥ ४६॥
पौन प्रसंगी गंध सुहाई।
सौरभता ताकी पुरछाई॥
देखि सबै आचर्ज सुमान्यौ।
अस्तन लाग्यौ आसन जान्यों॥ ४७॥
कस्न प्रभो उच्छिष्ट सुआई।
तासम काकै भाग भलाई॥
जानि यहै माता सम ताकौं।
कीन्ह कृपा दीन्हीं गति जाकौं॥ ४८॥

दो०—जासु क्रिपा करि नन्दजू दान दये अतिगेह।
मुख चुम्बन करि लाल कौ लीन्हौं सहित सनेह॥ ४९॥

भगन मगन सगनहि रचौ फिरि गुरु दै आनंद।
सुख साला आला पढत 'चंपक माला' छंद॥

* इसका दूसरा नाम 'रुक्मवती' भी है। भिखारीदास जी ने ९ वर्णों की चम्पकमाला मानी है।

सो०—हे सौनक सज्ञान, अति बिचित्र हरि के चरित।
कहँहु सुनौ मतिमान, सकट बिभंजन जिमि करयौ ॥ ५० ॥

भ्रम०—ब्रजनंद अनन्दित बन्दित लोग सबै।
रचि गोपन चोपन पूजन कर्म तबै ॥
भई भीर गभीर अहीर सुधीर महाँ।
सुख पावति गावति आवति नारि तहाँ ॥ ५१ ॥
धरि छाँह उछाह सु स्यामहिं गाडेयकी।
बिसुरी जसुधै सुधि लालन पारेयकी ॥
अटक्यौ सकटै सकटा सुर जानि सच्यौ।
प्रभु भार उतारन मारन ब्यौंतु रच्यौ ॥ ५२ ॥
करि रोदन सोतन पाइ उछालतहीं।
उलट्यौ पलट्यौ चटक्यौ पग लागतहीं।
रस रंजित भाजन भंजित फूटि परे।
दधि भूमि उमंडित मंडित कुंड भरे ॥ ५३ ॥
घरमें धरकौ भरकौ सुनि धाइ परे।
ग्रह डोलत भौंरत बोलत बैन खरे ॥
उलट्यौ पलट्यौ यह होत कहाँ।
तहँ बिस्मित गोप गुबाल सबाल महाँ ॥ ५४ ॥
सुख हेलत खेलत बालक लेखि लहैं।
सिसुलातहिं घात करयौ यह बात कहैं ॥
नहिं जानत मानत गोपन चित धरैं।
भरि संक उठाइ गुबिन्दहि अंक धरैं ॥ ५५ ॥

दो०—महामते गजराज सम महाबली जे गोप।
पलटायौ तँह कष्ट करि सकट भूमि तैं कोप ॥ ५६ ॥

पाच सगन को चरन जँह बरन पंच दस नेम।
छंदु यहै 'भ्रमरावली' भ्रमतज रचिये छेम ॥
इसका दूसरा नाम 'नलिनी' तथा मनहरण भी है।

साम जजुर रिग रिचन सौं कीन्हौं सुत अभिसेक।
अगिनि होत्र आहुति दई कोबिद दूनि असेक ॥ ५७ ॥
असुचि अदाया रहित जे हिंसा रहित छितीस।
ऐसे दुजनि समर्पियौ ब्रजपति सुतहिं असीस ॥ ५८ ॥

तदनन्तर पठयौ ब्रजहि न्रपति कंस बल बन्त।
त्रनाबर्त बर्त्तु चल्यौ माया दुसह दुरन्त ॥ ५९ ॥

नरा०—इतै सुनन्दरानि नंद नंदलेति गोद में।
अनंद सौं अँगोछि ओंछि दूध देति मोद में ॥
बिलोकि कै त्रिलोकिनाथ लोलदेत आइ भौ।
गिरिन्द तूल भार धारि माइकै अभाइ भौ ॥ ६० ॥
धरा उतारि ना सम्भारि चित्त संक में पर्‌यौ।
गई सुग्रेह काज कौं तबै दइत्त हंकर्‌यौ ॥
धँधात धाइ क्रुद्ध सों उपाइ बिघ्न के करै।
सँसातु पौन रूप दुष्ट और बायु के भरै ॥ ६१ ॥
अकास भूमि धूरि पूरि ब्रच्छ चूरि ह्वै गये।
प्रचंड धुंधकाल सौं दिसा बिभाग छ्वै गये ॥
अद्रिष्ट द्रिष्टि दुष्ट देह पुष्ट बीजं देखिये।
अघात सब्द कौं करै गरज्जगाज लेखिये ॥ ६२ ॥
अभीर भीर पीर सौं सपीर धेनु जाल भे।
अकाल ग्वाल देखिकै बिहाल ग्वाल बाल भे ॥

जहँ चामर की आदि पै एकु देइ लघु और।
'छंद नराच' कहैं सकल छंद राज सिर मौर।

नराच, छंद का यह लक्षण ठीक नहीं है। इस छंद में ज, र, ज, र, ज, ग होता है परन्तु पुस्तकस्थ 'नराच' में अन्त्य गुरु से पूर्व एक लघु और आ पड़ता है जो कि केवल प्रथम चरण में ही है। अन्यथा यह पंचचामर वृत्त है।

निहारि बाल रूप कौं सगर्ब दूर ह्वै गयौ।
प्रकोपि नन्दलाल कौं उठाइ व्योम लै गयौ ॥ ६३ ॥

उठे सुदीनबन्धु अंध सो सु आपु दावकौं।
अभूत भूरि भार सों न अंग देत चावकौं ॥
डगे जुगोड कंप देह बैन दीन ह्वै गये।
कठोर कंठ गासि कैं दयित्त प्रान लै लये ॥ ६४ ॥

धरा पछार बे सम्हार अंगछार जे करे।
गिरे सुतासु बच्छ पै त्रिलोकभार सौं भरे ॥
कराल केस छूटि टूटि भूमि धूमरे परे।
बिनास बाहु जंघ जानु जत्र तत्र हैं डरे ॥ ६५ ॥

प्रकाश उग्र बक्रवाइ तर्क तेज नेह गौ।
दिखात दीह दंस बंस हंस छोडि देह गौ ॥
सनारिनन्द रोहिनी सुदौरि ग्वाल गोप जे।
उठाइ लाल अंक धारि प्रेम मोद सों पगे ॥ ६६ ॥
प्रचंड रूप भीम देखि जीवजे हहाइगे।
बच्यौ जु पुत्र कौन पुन्य नन्द जू सँसाइगे ॥
महा सुभाग्य नंदजू कहैं जु लोग गाँवरौ।
कृपा कृपाल बिस्नु की बच्यौ जु सूनु साँवरौ ॥६७॥
निहारि नंदलाल कौं अनन्द नंद लीन जे।
बुलाइ बिप्र छिप्र सर्ब शास्त्र में प्रबीन जे ॥
बिधान दान मान सों प्रमान वेद के करैं।
कुटुम्ब ज्ञाति भोजनादि वस्त्र द्रव्य दे भरैं ॥ ६८ ॥

दो०—महाराज राजेन्द्रमनि सुनिये चित्तु लगाइ।
नंद नदन लै गोद में अति प्रमोद सों आइ ॥६९॥

छ०—सुन्दर लालन गोद महरि लै अस्तन प्यावत।
खिन पीवत खिन तजत हँसत द्वै पग झहरावत ॥

हाँ हूँ गूँ गा करत किलकिकल बदन पसारथौ ।
पयपूरित तामध्य अखिल ब्रह्माण्ड निहारथौ ।
भनि 'मान' चौंकि चकवाइ कैं चिते चित्त भुल्ले बयन ।
पर ब्रह्म जानि उर ध्यानि धरि तनु कंपित झंपित नयन ॥७०॥

दो०—देखि उदर भगवन्त के बिश्व चराचर झारि ।
भभरि भूरि संभ्रम परी लहै न पारावार ॥ ७१ ॥

इति श्रीसज्जन कुल कैरवानंद बृन्ददायिन्यां शरच्चन्द्र चारु
मरीचिकायां श्रीकृष्णचंद्र चन्द्रिकायां द्विजगुमान
विरचितायां तृणावर्तवध वर्णनो नामा
पंचमः प्रकाशः समाप्तः ।

षष्ठ प्रकाश

दो०—सुन्दर छटै प्रकास में आहैं गर्ग मुनीस।
सिसु लीला करि मृत्युका स्वैहैं फिरि जगदीस ॥ १ ॥

बदन बिस्व जसुधा लखै ऊखल बंधन सोइ।
जमलाअर्जुन तोरि हैं त्रप यह कथा सुहोइ ॥ २ ॥

सो०—पठये श्रीबसुदेव ब्रज मंडल श्रीगर्ग मुनि।
सदा बसत मुनि येव जदुकुल ऋद्धि समृद्धि की ॥ ३ ॥

छ०—ज्ञान समुद्र उदोत सहित सिष्यनि सग राजहिं।
सरद ससांक समीप मनहुँ उडुगन गन भ्राजहिं ॥
त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ अज्ञहन्ता मन साधक।
इन्द्रीजित मतिधीर हृदय हरिपद आराधक ॥
तप अग्नि तेज झलकत बदन दहन प्रबल पातक बरग।
परब्रह्म काज ब्रजराज के गेह नेह आये गरग ॥ ४ ॥

कला चतुरदस बिरति रचि जगन अन्त स्वच्छन्द।
कहत सुखद सुनतनि सुखद 'श्रवन सुखद' यह छन्द ॥

श्रवन०—देखे दूरि तें मुनि राइ ।
बन्दे नन्दजू उठि पाँइ ॥
ल्याये प्रीति सों निज गेह ।
दीन्हें उच्च आसन नेह ॥ ५ ॥
जल भर ल्याइ पग प्रच्छाल ।
छिर क्यों अजिर ग्रह तिन भाल ॥
पूजा करिय षोडस भाइ ।
भोजन आदि मेवा ल्याइ ॥ ६ ॥
जोरे जुगल कर सुख पाइ ।
बोलै सरल सोम सुभाइ ॥
कीन्ही कृपा मुनि जनु जानि ।
दीन्हीं मोहि पदवी आनि ॥ ७ ॥
तुम्हरे दरस परस जु होत ।
नासत ताप पातक गोत ॥
कहि मुनिनाथ भरि अनुराग ।
तुम सम और को बड़ भाग ॥ ८ ॥
चितु दै सुनहुँ अब ब्रजराज ।
आये करन जो निज काज ॥
पठये देवकी बसुदेव ।
उपजे जुगल सुत सुरदेव ॥ ९ ॥
जे जदुबंस के साचार ।
कर्ता हमहिं हैं आचार ॥
यह जिय जानि लेहु ब्रजेस ।
जाने नहीं कंस नरेस ॥ १० ॥
दो०—और न कोई जानहीं निर्जन थल जहँ होइ ।
कंसु सोधु पावै नहीं तहाँ चलौ उठि सोइ ॥ ११ ॥

मन०—उठि नंद आनँद कन्द लै मुनि कौं चले।
सुचि गोठ गौवन के बनै रुचि सों भले ॥
जहँ स्वच्छ आसन डारि तापर राखियौ ।
मुनिनाथ जू गुनगाथ बैठि सुभासियौ ॥ १२ ॥
सुनि नंद आनँद कंद ये सिसु जानियौ ।
ब्रजभूमि पावन कौं करैं यह मानियौ ॥
सुत जन्म कर्म बिचित्र जे कछु हौं लहौं ।
नहिं राखि गूढ बिचारिकै तुम सौं कहौं ॥ १३ ॥
सुत रोहिनी सुकुमार गौर कुमार जो ।
छबिधाम राम सनाम पालन सार जो ॥
बलभद्र बल की हद्द दुर्जन ना लहैं ।
नहि अंत जानि अनंत ताही सौं कहैं ॥ १४ ॥

दो०—आकर्षन एकत्र करि जदुबंसीह समाज।
'संकर्षन' यह नाम हुव, धर्मन अरि सिरताज ॥ १५ ॥

लीला—सुन्दर साँवर सोहन मोहन रूप बनौ ।
जाहि निहारत हारत कोटिन काम घनौ ॥
सत्य महाजुग सेत सरीर गभीर धरैं ।
त्रेतहि है अनुरक्त अरक्तहिं सक्ति धरैं ॥ १६ ॥
द्वापर पीत सप्रीत प्रतीतहिं मानि सुनौं ।
फेरि करैं कलि माँहि कलेवर क्रस्न भनौं ॥
यासि सुजन्म अनेकन एक न जाइ कहे ।
सन्तन भक्त निरन्तर जे गुन गाइ कहे ॥ १७ ॥

सगन जगन जुग भगन पुनि रगन रचहु कवि बंस ।
छंदनि कौ अवतंस कहि छंदु यहै 'मनहंस' ॥
पाँच भगन कौ चरनु करि अलघु अन्त अवरेखि ।
कवि सीला रुचि कै रच्यौ "लीला छंद" बिसेखि ॥

क्रस्न मनोहर नाम सुबिस्नु समान गनौं ।
को गुन जानन हार नरायन वोज बनौं ॥
गोपिय गोप रमावत वोपन चित्त हरैं ।
कुंजनि कुंज चरावत गोधन संग फिरैं ॥ १८ ॥

पालन दीन सँघारन सत्रु समूह सुनौं ।
रच्छन देव बिचच्छन लच्छन लच्छ गुनौं ॥
दुष्ट उधार उतारन भारन भूरि मही ।
बिघ्न अनेक उपायन बालक राखु रही ॥ १६ ॥

दो०—यौं कहिकै श्रीगर्ग मुनि गये आपुनै गेह ।
नंद जसोदा रोहिनी लीन्हौं सिसु करि नेह ॥ २० ॥

कछुक दिननि बीते तहाँ स्याम राम सुकुमार ।
करन लगे प्रमुदित महाँ सिसुलीलानि अपार ॥ २१ ॥

सुधा०—कनक मनिमय मनहिं मोहत ।
परम सुन्दर अजिर सोहत ॥
मृदुल पगतल लसत लालन ।
झकत उझकत करत चालन ॥ २२ ॥

हँसत किलकत लखत छाँहिय ।
उर उमाहन भरत वा हिय ॥
जुगल तन फवि धूरि धूसर ।
अतुल छवि उपमा न दूसर ॥ २३ ॥

कच झडूले झलकि झूमत ।
उडत अलि फिरि घुमडि घूमत ॥

कला चतुर्दश देहु चरनान्तर पर भगन जहँ ।
कवि नरिन्द रचि लेहु 'सुधामधुर' यह छंद कौं ॥

अखिल छवि आनन अखंडित ।
सरद ससि जनु अमिय मंडित ॥ २४ ॥
पयबदन द्वै रदन राजत ।
बिसद छवि बिबि बीज छाजत ॥
बचन कलकल कहत तोतल ।
अमृत रस ससि श्रवत सोतल ॥ २५ ॥
कंठ कठुला मनहिं मोहत ।
बज्र मिलि नख सिंह सोहत ॥
मुखर रसना चलत चालिय ।
कामदूती वाकजालिय ॥ २६ ॥
रुनित नूपुर कुनित पाइन ।
हंस सुत सुर चढ़े चाइन ॥
पद पदम नख नवलराजिय ।
मनहुँ मिलि नखतालि साजिय ॥ २७ ॥
राम क्रस्न कुमार दोऊ ।
गौर स्याम सरीर सोऊ ।
सिसुन में मिलि खेल खेलत ।
भजत फिरि फिरि मुरकि हेरत ॥ २८ ॥
कबहुँ रुन झुन धाइ भागहिं ।
संक मानहिं अंक लागहिं ॥
कबहुँ फिरि फिरि करन फेरत ।
सिसुन कौं फिरि उच्च टेरत ॥ २९ ॥
बदन बिधु कबहूँ कँपावत ।
मातु लखि उर उमगि आवत ॥
वच्छ पच्छनि झटकि डोलत ।
कबहुँ मर्कट निकट बोलत ॥ ३० ॥

देखि रोहिनि महिरि ठाडिय ।
पुलकि प्रेम पयोधि बाढिय ॥
श्रवत अस्तन दूध धारन ।
सिथिल तन आनंद भारन ॥३१॥
उमगि उरनि उठाइ लेतिय ।
चूमि मुख पयपान देतिय ॥
सीस अंचल झाँपि मेलहिं ।
तोरि तिन जल पानि फेरहिं ॥ ३२ ॥
देखि सिसु सुधि खेल आवत ।
छाँडि पय उठि गोद धावत ॥
जाइ मिलि खिल बाल ब्रन्दन ।
देत आनँद नन्दनन्दन ॥ ३३ ॥
दौरि जननी लगहिं पाछै ।
संग ल्याइ लगाइ आँछै ॥
अगिनि जल कंटक बचावैं ।
कठिन छिति पत्ती बरावैं ॥ ३४ ॥
ब्रजबधू इकटकहिं हेरत ।
लगे दृग नहिं फिरत फेरत ॥
फिरत प्रभु जहँ जहँ सुभाइन ।
लगे मन त्रिय हाथ नाहिन ॥ ३५ ॥
दरस कारन इकहि आवहि ।
उपालम्भ बनाइ ल्यावहि ॥
महरि तू लघु सुत न मानहि ।
ढीठ अति लंगर न जानहि ॥ ३६ ॥
सखनि लै छवि भवन रंजतु ।
खात दधि भाजननि भंजतु ॥

बात सुत की सुनै कानन।
ओढ़ि अंचल उमगि आनन॥ ३७॥
परसपर तहँ हास पागहिं।
देखि छवि नहिं पलक लागहिं।
तहाँ सिसु इक धाइ आइब।
बचन जसुधा कौं सुनाइब॥ ३८॥
महरि तुव सिसु परिव लक्षन।
कान्ह माटी करतु भक्षन।
झपटि जसुधा गहे लालन।
सिसकि सिसकत बिस्वपालन॥ ३९॥
अरे चंचल, खातु माटिय।
रुदन करि करि बात पाटिय।
कहत बालक सकल जानत।
नेकु नहिं तू मनहिं आनत॥ ४०॥
सिसुन मिथ्या कही तोपर।
मातु जिन रिस करहि मोपर।
जो न मानहि साँच मेरहु।
खोलि आनन राखि हेरहु॥ ४१॥

दो०—कमलानन बायौ बदन कमल कोस उद्दण्ड।
चकित चौंकि संभ्रम परी देखे अमित ब्रह्मण्ड॥ ४२॥

छप्प०—देखे चर अरु अचर सिन्धु कानन सरि सरिबर।
देख्यौ धरनि अकास सूर खेचर ससि गिरिबर॥
देखे काल सजीव लोक जसुधा नंदादिक।
देखे सुर अरु असुर पवन पन्नग तपसाधिक॥
भनि 'मान' अमित ब्रह्माण्ड लखि देखि अनल तीखन तपतु
मुख सूखि बचतु आवत नहीं महरि गातु थर थर कँपतु॥४३॥

दो०—महापुरिख परमातमा नारायन पहिचानि ।
धरि धीरज मनु थिर कर्यौ अस्तुति करति बखानि ॥ ४४ ॥

सो०—बिस्व रूप आधार, प्रकृति पुरुष प्रकृतै परै ।
वेद न पावत पार, हौं अबला जानौं कहा ॥ ४५ ॥

दो०—जब जानी जननी हृदै ज्ञान उदै भौ आनि ।
दयौ मोह माया प्रबल प्रभु सिसु करि फिरि आनि ॥ ४६ ॥

* चंच०—अंक में लगाइ नंद नंद को अनंद माइ ।
ज्ञान गूढ भूलि गौ भयो सु पुत्र प्रेम आइ ॥
देखि बाल लाल कौं फँसी सु मोह फाँस आइ ।
सीस सूँघि चूमि चारु दूध दै हिये अघाइ ॥ ४७ ॥
हे मुनीस, जोगधीस, संक मेटिये कृपाल ।
हाथ जोरि ब्रह्म नीक प्रश्न पूछियो नृपाल ॥
देव तात देवकी न बाल रूप देखि मोद ।
कौन हेत नंद जू सनारि देखियौ बिनोद ॥ ४८ ॥

पृथ्वी—धरा सु बसु द्रौन नंद जसुधा हि जानौ तबै ।
प्रजापति निदेस पाइ तप तेज कीन्हौं जबै ॥
बिनोद सिसु मोद सोधि बरु माँगि लीन्हौं तहीं ।
सुनौ नृप सनारि चारु अवतार लीन्हौं मही ॥ ४९ ॥

दो०—ब्रज मंडल में औतरे नंद जसोधा दोइ ।
ललित बाल लीलादि सुख तप करि पायौ सोइ ॥ ५० ॥

आदि अलघु गुरु कीजियै अन्त अलघु लघु होइ ।
उपजत छंद नराज ते तबै 'चंचला' सोइ ॥

* छंदःप्रभाकरकार के मतानुसार यह चंचला छंद नहीं है । सम्भव है कवि का यह नियम अपना ही बनाया हुआ हो ।

जगन सगन फिरि जगन रचि सगन यगन फिरि आनि ।
लघु गुरु दीजै अन्त पर 'पृथ्वी छंद' बखानि ॥

कहि सुक मुनि अब सुनहु न्रप, प्रभु चरित्र बिख्याति ।
ऊखल बन्धन जमल द्रुम, पतित भयौ जिहि भाँति ॥ ५१ ॥

सो०—ग्रह कारज सब सौंपि, दीन्हे सेबक सेबकिन ।
आप महरि करि चौंपि, दधि मंथन आरम्भ किय ॥ ५२ ॥

छप्प०—रजु खेंचति भुज धारि भार मचकत भुज बैनी ।
रुरत ढुरत उरहार झरत सुमननि की श्रैनी ॥
चंचल करना भरन कनक कंकन कर खनकत ।
श्रमजल झलकत चलत अंग भूषन छवि छलकत ॥
घाघर घुमंडि झूमत झहरि उडतु सुपट फहरति लहरि ।
घन गरज घमंडत माठ दधि घम घमातु घमकतु घहरि ॥५३॥

* क्रीडा—गरै उच्च गावैं सु आवैं भली रागिनी राग पूरी ।
रनत्किंकिनी चारु नीकी बनी जे बजैं बाँह चूरी ॥
खरे लाल खेलैं लखैंतै भरी प्रेम सौं मोह भारा ।
हियै जो उमंगी चुवैं स्वच्छ वक्षोज ते क्षीरधारा ॥ ५४ ॥

दो०—देखैं जननी की दसा किलके स्याम सुजान ।
दधि मंथन गहि पानि सों चाहत अस्तन पान ॥ ५५ ॥

बिमोहा—देखि कैं हाल कौं, लेति हैं लाल कौं ।
मेटि कै पीर कौं, देति हैं छीर कौं ॥ ५६ ॥

---

* इस छंद का नाम क्रीडाचन्द्र नहीं, किन्तु क्रीडाचक्र है । मालूम होता है दोहे में 'क्रीडा चन्द्र' लिपिकार ने अशुद्ध लिखा है। वहाँ 'क्रीडा चक्र' होना चाहिये ।

जहाँ भुजंगप्रयात की वृत्ति डिउढि करि देउ ।
"क्रीडा चंद्र" अनंद सौं छन्दु स्वच्छ रचि लेउ ॥
जहाँ रगन बिबि दीजिये ताहि बिमोहा जानि ।
चार सुलघु गुरु दोइ जहँ 'चंतुरंसा' पहिचानि ॥

* चतु०—फिरि मति फेरी, ग्रहतन हेरी।
अगिनि धर्‍यौ तौ, पय निसर्‍यौ तौ ॥ ५७ ॥
उमगि सुजाई, मधुर मलाई।
तहँ उठि दौरी, अति मति बौरी ॥ ५८ ॥

दो०—छुधित उतारे गोद तैं, अति आतुर नँदनंद।
दूध सम्हारन कौं चली, यह कीन्हीं मतिमंद ॥ ५९ ॥

† वर्णगी०—
ग्रह काज कौं जननी गई प्रभु जानिकैं रिस सों छके।
दधि माठ ढोरि कठोर फोरिव, ओर सीकनि के तके।
तब पैठि मंदिरनंद नंदन भंजि भाजन हैं चलै।
चहुँ ओर भोकिन भाँकिकैं फिरि चोरि माखनु लै चलै ॥६०॥

मृदु पाइ चाँपि सुभाइ चंचल जाइ ऊखल पै चढै।
तहँ आपु खाइ खवाइ मर्कट बाल ख्यालनि में बढै।
मुख मंजु रंजित मंडि दधि औ मेलिबौ चित में दिये।
सिसु रीतिसौं करि प्रीतिसौं नवनीत कौं कर में लिये ॥६१॥
जहँ आइकैं जननी जकी सुत कर्म अद्भुत लेखिकै।
फिरि फेरि नयन तरेरि हेरी चढे ऊखल देखिकै।
कछु हाससौं दधि सोचसौं रिस रोससौं उठि धावहीं।
भजिकैं चले लखि स्यामसुन्दर काम क्यों छवि पावहीं ॥६२॥

---

* इस का नाम छन्दःप्रभाकर तथा वृतरत्नाकर में शशिवदना है 'चतुरंसा' नहीं।

जहां चंचरी आदि पै द्वै लघु देहु कवीस।
'बरन गीतिका' जानिजै, चरन बरन तहँ बीस।

† 'वर्णगीतिका' नाम का कोई छंद नहीं मिलता। लक्षणानुसार गीतिका छंद मालूम पड़ता है। इस का लक्षण इस प्रकार है:—स, ज, ज, भ, र, स, ल, ग। इस का दूसरा नाम मुनिशेखर भी है।

करि ज्ञान जोग समाधि धारत ध्यान आवत हैं नहीं।
मन बुद्धि चित्त उपाव कौं करि दौर पावत हैं नहीं।
जिहिकौं गह्यौ जसुधा चहें बसुधा परी मति मोह में।
नहिं जानि पूरन ब्रह्म पुत्रहिं मानिकै भरि कोह में ॥ ६३ ॥

कचभार श्रोनी भार भारी हारि बेगि परी महाँ।
उरहार की न सम्हार भूषन धारि भूमि परी तहाँ।
सुचि केसपासनि तै खरी मुकतालि गूँथी टूटिकै।
श्रम स्वेद सीकर सोह आनन फूल फैलत छूटिकै ॥ ६४ ॥

दो०—प्रभु देखी जननी जबै व्याकुल श्रमतन जानि।
लागि दया ठाडे भये तबहीं सारँगपानि ॥ ६५ ॥

मंथान—प्यारे धरे धाइ, ल्याई ग्रहै वाइ।
आँसू ढरे नैन, रोके कढे बैन ॥ ६६ ॥

जाकौ धरैं ध्यान, संभू सुपर्वान।
खीजै खरी जाहि, जाने नहीं ताहि ॥ ६७ ॥

दो०—छाँडि कसक रिस में रहसि महरि बहसि अवगाहि।
लैकरि हरबर जेबरी करि बंधन की चाहि ॥ ६८ ॥

शंख०—भई बाँधिबेकौं, न माने कहेकौं।
नही दाम पूजै, रही कोप दूजै ॥

किती दाम ल्याई, नही ग्रंथ आई।
श्रमी अंग जोहैं, भ्रमी चित्त मोहैं ॥ ६९ ॥

दो०—जब जानी जननी भई अस्त बिस्त बेहाल।
बंधन तर आये तबै मोहन मदन गुपाल ॥ ७० ॥

अर्द्ध छंद सारंग ते उपजतु है 'मंथानु'।
अर्द्ध भुजंग प्रयात ते 'नारी संख' बखानु ॥

* सार०—जा प्रभु नामहिं चित्त धरैं ।
पाप-पहारन छार करैं ॥
मोह-जँजीरन तोरतु है ।
दुःख-पयोनिधि फोरतु है ॥ ७१ ॥
ता प्रभु की नहिं कानि करी ।
पुत्रहिं मानति मोहभरी ॥
ऊखल बाँधति ताहि भई ।
आपुन मंदिर काज गई ॥ ७२ ॥

दो०—जब जानी माता गई निकट न कोऊ और ।
जिहि कारन लीला रची करन लगे सिरमौर ॥ ७३ ॥

त्रिभंगी—
जहँ जननी डरके चितवत छरके सूध नजरिके बिटप लगे ।
लै ऊखल ररके नंद महरिके तब मन भरके ख्याल पगे ।
चलि पहुँचे तटके जब द्रुम अटके गहि पद झटके जोस भरे ।
त्यौं मूलन चटके लट पट लटके तब छिति पटके रोस धरे ॥७४॥
तरु टूटत चरके झरमर झरके फिरि भरभरके भूमि परे ।
धर थलथल धरके लोग नगर के थरथर थरके चौंकि परे ।
तहँ उर सब नर के इमि खरखरके जनु घनतर के झरप तहाँ ।
जे गिरत न सरके ग्रह सब बरके को कहि हरि के गुननि महाँ ७५

---

* तीन भगण और अन्त गुरुवाले छंद सारवती तथा पावक दोनों होते हैं। छंदःप्रभाकर में सारवती और पावक दो अलग छंद लिखे हैं।

तीन भगन गुरु अन्त पर रचिये आनँद कंद ।
मुदित भार उर धार कवि 'सारवती' यह छंद ॥
दस बसु बसु रस अन्त पर जहाँ करौ बिश्राम ।
सकल चरन बत्तिस कला ताहि 'त्रिभंगी' नाम ॥

दो०—द्रुम अन्तर ते कढे बिबि ब्रन्दारक सुखसींव ।
गुन मन्दिर सुन्दर महाँ नलकूबर मनिग्रीव ॥ ७६ ॥

* माला०—पुलकित सरोज से करनि जोरि बोले तहीं ।
जगतपति नाथ तो गुननि गाथ जानें नहीं ।
सगुन यह रूप औ निगुन वेदबानी कहैं ।
अखिल तुव मध्य है सकल जानि ज्ञानी लहैं ॥ ७७ ॥
सुजन जन लाज काज अवतार धारौ मही ।
दनुज दल दुष्ट पुष्ट बल मारि तारौ तहीं ।
अब करि प्रभो सुदृष्टि करुना कृपा सौंभरी ।
अभयपद दान देउ जन जानियेजू हरी ॥ ७८ ॥

सो०—नल कूबर मनि ग्रीव धनद पुत्र अब भक्ति लहि ।
कृपासिन्धु मुनि सींव तिन प्रसाद मम दरस हुव ॥ ७९ ॥

दो०—इहि प्रकार गुह्यक दुवौ प्रभु बचननि उर धारि ।
बेर बेर दण्डवत करि उत्तर दिसा सिधारि ॥ ८० ॥

† हंसः—राज कहे जू, प्रश्न लहे जू ।
हे मुनि ज्ञानी, पूछत बानी ॥ ८१ ॥

दो०—कौन हेत मुनि साप दिय, करयौ कौन अपराध ।
जा कारन द्रुम बर भये, कहहु सुमुनिवर साधु ॥ ८२ ॥
रुद्र दरस कौं देवरिसि चले जात सज्ञान ।
महा तेज तप के तरनि हरनि तिमिर अज्ञान ॥ ८३ ॥

आदि पंच लघु रगन फिरि त्रिलघु रगन गुरु देय ।
लघु गुरु दीजै अन्त पर 'मालाधर' रचु लेय ॥

*छन्दःप्रभाकर के मतानुसार मालाधर का लक्षण है न, स, ज, स, य, ल, ग ।

दे गुरु आछे दे लघु पाछे ।
देय गनौ जू हंस रचौ जू ॥

† इस छंद का नाम पंक्ति भी है, इसका लक्षण है भ, ग, ग ।

* चन्द्र०—रजत गिरि चढ़त जहँ बीचि सुरसरि बहति ।
निकट तट बिटप तहँ बेलि सुमननि लहति ॥
अमल जल कमल मकरंद झुकि झुकि झरत ।
पियत मधु मधुप कलहंस कलरव करत ॥ ८४ ॥

धनद सुत करत तहँ केलि तरुनिनि सहित ।
मदन मद छकित मद मत्त बसननि रहित ॥
मुनिहि लखि निलज जुगभ्रात बिलसत व्यसन ।
सकल तिय सकुचि डर मानि धर तन बसन ॥ ८५ ॥

दो०—तरुनी रस मदिरा छके लोकाधिप सुत जानि ।
भव के भ्रत्य सुआनि उर तातैं करी न कानि ॥ ८६ ॥

मालती—उठ्यौ मुनि कोपु, सु क्योंकरि लोपु ।
लख्यौ मुनि पापु, दयौ मुनि सापु ॥ ८७ ॥
सुन्यौ जब सापु, भयो उर तापु ।
बिनै जिन ठानि, दया उर आनि ॥ ८८ ॥

† मधुभारः—सुत राजराज, नहिं कीन्ह लाज ।
ब्रजभूमि सोइ, द्रुम होहु दोइ ॥ ८९ ॥
करुना सुऐन, सुख संत दैन ।
करिहै जु घात, तब होहु पात ॥ ९० ॥

दस लघु बसु के मध्य में जहाँ एक गुरु होय ।
छंदु 'चंद्रमाला' यहै बिरले जानत कोय ॥

* चन्द्रमाला का लक्षण छन्दःप्रभाकरादि में नहीं मिला । कवि ने दोहे में ठीक ही कहा है ।

जुगल जगन जहँ दीजिये चरन बरन छह आनु ।
सुमन मालती माल सम छंदु 'मालती' जानु ॥

† 'मधुभार' छंद का लक्षण नहीं दिया गया । मूल पुस्तक में "छंद मधुभार लक्षन पूर्वक कथितं" लिखा है ।

प्रभुकौं निहारि, उर भक्ति धारि।
फिरि जाहु गेह, धरि दिव्य देह ॥ ६१ ॥

सापानुग्रह कहि मुनी, गये आपु सुख पाइ।
धनद पुत्र ब्रजमही पर, भये महीरुह आइ ॥ ६२ ॥

सो०—इहि प्रकार मुनि साप, दीन्हौं फिरि मोचन कर्‌यौ।
भये बिटप तिहि पाप, सुनहु परीच्छित महीपति ॥ ६३ ॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द वृन्द दायिन्यां शरच्चन्द्र चारु मरीचिकायां श्रीकृष्णचन्द्रचन्द्रिकायां द्विजगुमान विरचितायां यमलार्जुनोद्धारण वर्णनो नाम षष्ठः प्रकाशः समाप्तः।

सप्तम प्रकाश

नंद छोरि हैं दाम, यह सातएँ प्रकाश में।
श्री दामोदरनाम ब्रन्दावन बसिहैं बिदित ॥ १ ॥

दो०—तिहि प्रवास हनि बछासुर बका अघासुर घोर।
इहि बिधि प्रभु लीला रचै निज माया के जोर ॥ २ ॥

भुजगाशि०—तरुरव सुनिकैं दौरे, सकल बिकल ह्वै बौरे।
जनु घनतर के लागे, इमि श्रम भ्रमसों पागे ॥ ३ ॥
छिति पर उखरे देखे, नर डर डर अवरेखे।
सिसु कहिं सिसु ने तोरे, नहि ठहरत मनभोरे ॥ ४ ॥

मनि०—स्याम बँधे देखे कसिकैं, नन्द बंध छोरे हँसि कैं।
सूँघि लये चूम्यौ मुख कौं, कंठ लगे पायो सुख कौं ॥५॥
गोप बधू चाहैं चलिकैं, देखन को नैना ललकैं।
गेह लले ल्याए मिलिकैं, मोहभरी माता हिलकैं ॥ ६ ॥

छलघु त्रिगुरु जो अन्त पर 'भुजग सिसु भ्रता' जानु ॥
भगन मगन फिरि सगन जहँ तहँ 'मनि बन्ध' बखानु ॥

दो०—जसुधा कौं लाला दये दै सिच्छा करि प्रीति ।
अमित दान बिप्रन दये वेद रिचन की रीति ॥ ७ ॥

हरि०—कहि सुक मुनि न्रप सुनहु परीच्छित हरि के चरित बिसाला ।
अभय कर† त्रेता पहरनसुभ, पावन परम रसाला ॥ ८ ॥
बैठी जननि मनिनि पीढा पर निकट ललन तहँ खेलैं ।
गुन मन्दिर सुन्दर तन साँवर अति आनँद मन मेलैं ॥ ९ ॥
सरद इन्दु राकेस बिनिन्दक बदन रूपनिधि सोहै ।
कोटिन ओज मनोज मनोहर त्रिभुवन लखि छवि मोहै॥१०॥
चंचल चलत चारु रतनारे ललित द्रगन की आभा ।
मृगखंजन गंजन मनरंजन कहै कंज की काभा ॥११॥
अलकैं छूटि रहीं मुख ऊपर मंजु मेच घुँघरारीं ।
कल कपोल बोलनि मृदुखोलनि भ्रकुटी कुटिल पियारीं ॥१२॥
यह छवि चितै बितै दिन अपनौ चित में और न आवै ।
जिनि द्रग रूप अमीरस चाख्यौ कहौ और क्यों भावै ॥१३॥
थिर न रहत खेलत दोउ भाई अमित खेल अति नाधैं ।
उठत चलत बैठत भ्रमि धावत अति चंचल गति साधैं ॥१४॥

वसु अरु बीस कला हैं जाकी यगन अन्त पर आवै ।
'हरिपद' कहिये छंद छबीला हरिपद रुचि उपजावै ॥

छंदःप्रभाकर में विषम चरणों में १६ और सम में ११ मात्राएँ लिखी हैं । परन्तु कवि ने समचरणों में १२ मात्राएँ दी हैं, सम्भवतः कवि का यह अपना मत होगा ।

मूल पुस्तक में दो दो छंदों को एक समझा गया है । हमने एक मान कर गणना बना दी है । छंद के लक्षण के अनुसार एक ही एक मानना ठीक भी है ।

† इस छन्द के प्रथम चरण में एक मात्रा कम हैं । यह लेखक का प्रमाद है । कदाचित् यहां 'करहु' पाठ होगा ।

जहँ जहँ फिरत जुगल मृदु प्यारे बाल खेल मति काछैं ।
तहँ तहँ जननी दृष्टि मोहसों लगी फिरत हित पाछैं ॥१५॥

बाल झलन में ललन कबहुँ मिलि जात चौहटन आगैं ।
अन्तर अम्बु परत तलफत ज्यों मीन दीन दृग लागैं ॥१६॥

*जननी उठि टेरैं जब नहि हेरैं फेरे फिरैं न आवैं ।
श्रवत छीर धारा धावैं गहि मोहन कंठ लगावैं ॥१७॥

जैंबन चलत नंद जब बोलत प्रीति रीति अनुरागे ।
भजिभ जिच लत न आवत क्यों हू सिसु लीला में पागे ॥१८॥

चोरी जननि करैं बरजोरी दौरि गहैं जब बाहीं ।
झगरत झुकत छुरावत लालन भोजन की रुचि नाहीं ॥१९॥

धूसर धूरि अंग लपटानै आनि नंद कहि दीन्हैं ।
झारत धूरि सम्हारत अलकैं बदन चूमि तहँ लीन्हैं ॥२०॥

उठि उठि चलत न बैठत लालन, पितु पोछैं पुचकारैं ।
षट रस निरस लगत तिन कौं सब खेल हिये में धारैं ॥२१॥

सिसु खेलन कौ सोर सुनत प्रभु नजरि बरकि उठि धावैं ।
टेरे नंद प्रीति के बाँधे लगे द्वार लौं आवैं ॥ २२ ॥

मिलत जाइ बालक ब्रन्दनि में जुगल बन्धु अति प्यारे ।
नर नारिन के लगे रहत मन छिनभर होत न न्यारे ॥२३॥

जो परब्रह्म अलख अबिनासी घट घट व्यापक जो है ।
निज माया करि सबहिं रमावतु वाहि रमावतु को है ॥२४॥

दो०—इहि प्रकार कीन्हे चरित गोकुल में करतार ।
अब ब्रन्दाबन बसन कौ करयौ तहाँ अनुसार ॥ २५ ॥

---

* "हरि पद" में नियमानुसार अट्ठाईस मात्राएँ होनी चाहिएँ परन्तु इस पद में दो मात्राएँ अधिक हैं ।

चौ०—नंद तहाँ उपनंद बखान, जुरि बैठे सब गोप सुजान ।
महाब्रद्ध मति के सज्ञान, ते बोले तहँ बचन प्रमान ॥२६॥
जब तें टूटि भूमि द्रुम परे, तब तें सकल जीव उर डरे ।
होन लगे उत्पात अनेक, ह्याँ न करौ बसिवे की टेक ॥२७॥

दो०—सुबस बास ब्रन्दा बिपिन, जल त्रन जमुना कूल ।
गोबर्द्धन गिरि द्रुम सघन, तहाँ बसौ सुख मूल ॥ २८ ॥

* दूसरे प्रकार की चौपही छन्द—

यहै मंत्र सब के मन माना,
सजि सजि ल्याये सकट सुजाना ।
सकल बस्तु तिन पर कसि सोऊ,
यहि कहि छिन भरि रहौ न कोऊ ॥ २६ ॥
इक सजि गजिबाजिन की श्रेनी,
इके चढी बहलनि मृग नैनी ।
इक रथ चढे चले दोउ भाई,
जननी संग मोदु अधिकाई ॥ ३० ॥
आगे गोधन धर्‍यौ अपारा,
चले बिबिध बाहन भरि भारा ।
श्रंग बैन डफ भेरी बाजै,
ब्रखभ नाद दुंदभि घन गाजै ॥ ३१ ॥
हरि माया सब के उर प्रेरे,
ब्रन्दारन्य रम्य मन घेरे ।
जा माया ब्रह्मादि भुलाने,
सो माया नर किमि पहिचाने ॥ ३२ ॥

द्वै बिधि कीजे 'चौपही' चरन रचहु बुधवन्त ।
इक पन्द्रह दजि कला सोरह द्वै गुरु अन्त ॥

* इस का नाम चौपाई है, 'चौपही' नहीं ।

दो०—सब समाज पहुँचे जबै, उतरे जमुना तीर।
मनु प्रसन्न थल देखि भौ, अचयौ सीतल नीर ॥ ३३ ॥

छप्प०—मनिन जटित सब भूमि गुल्म तरुलता सुभूमत ।
धवल धौर हर उच्च स्वच्छ कलसा नभ चूमत ॥
झँझरिन झलक अपार द्वारपट मनिन पटल कर ।
फटिक चटक चौहटिनि चारु चकचौंध अटन पर ॥
भनि 'मान' बिपुल ब्रन्दा बिपिन अर्धचन्द्र सम पुरुसचिव।
मन रमिव राम घनस्याम कहँ तिन इच्छा माया रचिव ॥३४॥

दो०—सकल बिभौ सम्पन्न नर, बसे तहाँ सुख लीन।
राम क्रस्न कौं नंद जू, बछा चरावन दीन ॥ ३५ ॥

समानिका०—गाँव के नगीच में, ग्वाल बाल बीच में।
राम क्रस्न गावहीं, बच्छ लै चरावहीं ॥ ३६ ॥
मोरचन्द्रिका धरैं, नृत्य नाच कौ करैं।
बाल ख्याल में पगे, प्रेम प्रीति सौं लगे ॥ ३७ ॥

सुवा०—इक फल मेलत, इक कर झेलत।
इक तहँ धावत, इक गहि ल्यावत ॥ ३८ ॥
इक रव खोलत, जिमि खग बोलत।
इक बनि आवत, प्रभुहिं रिझावत ॥ ३९ ॥

दो०—इहि अवसर आयौ असुर, बत्सासुर बलवान।
बछा रूप मिलि बछन में, जान्यों श्री भगवान ॥ ४० ॥

* कर०—प्रभु तकिव ताहि, उर भरिव जाहि ।
फिरि धरिव धाइ, कर पर फिराइ ॥ ४१ ॥

सात बरन गुरु लघु सुक्रम, सो 'समानिका' जानि ।
दुजवर भगन जो अन्त पर, सो 'सुबासिका' मानि ॥

* करहचो छन्द का लक्षण ठीक नहीं है। छन्दःप्रभाकर में इसका नाम करहंस है। इसका लक्षण है न, स, ल करहंस।

महि पटकि दुष्ट, सुर सकल तुष्ट ।
असु कढत घोर, करि अति कठोर ॥ ४२ ॥

दो०—अन्तकाल निजु तन प्रगट, भयौ भयानक रूप ।
सकल डराने बाल लखि, सुनहु परीच्छत भूप ॥ ४३ ॥

* वसु०—सब सिसु जुरिकैं, सकल बटुरिकैं ।
अति भय भरिकैं, लहत हहरिकैं ॥ ४४ ॥

दो०—भयो अचंभौ देखिकैं, चकित भये ब्रजबाल ।
या खल तें रच्छा करी, धन्य धन्य गोपाल ॥ ४५ ॥

† प्रमाणिका०—लिये सखानि संग में, भरेत प्रेम रंग में ।
बछा सकेलि ताकिकैं, चलेत अग्र हाकिकैं ॥ ४६ ॥
गये कलिन्द जा जहाँ, पियौ सुनीर कौं तहाँ ।
बका कराल देखियौ, सुमेरु सौं बिसेखियौ ॥ ४७ ॥

दो०—गिरि समान धायौ ग्रसन, बकावकासुर दुष्ट ।
चंचुपुटी की चोट भरि, आयौ खल बल पुष्ट ॥ ४८ ॥

मल्लि०—उग्र बक्र बाइ धाइ, स्याम के समीप आइ ।
क्रुद्ध सौं ग्रस्यौ अयान, छुद्र कंठ के प्रमान ॥ ४९ ॥
राम सौं अचर्ज मानि, ग्वाल बाल दुःख सानि ।
देवता सबै बिहाल, सीद्यमान जीवजाल ॥ ५० ॥

---

* इस छंद का नाम मधुमती है, वसुमती में १ तगण और सगण होते हैं।

द्विजवर जगन जु दीजिये, जबहिं 'करहची' सोइ ।
दोइ नगन गुरु अन्त में, तहाँ 'बसुमती' होइ ।

आठ बरन लघु गुरु नियम, यह 'प्रमानिका' मानि ।
उलटि ब्रत्ति रचियै वहै, जहै 'मल्लिका' आनि ॥

दो०—जासु तेज चौदह भुवन, तिहि लील्यौ मुँह बाइ।
मनहुँ अँगार गरे लग्यौ, उगलि दियौ खिसियाइ॥ ५१॥

महालक्ष्मी०—फेरि कैं जो चल्यौ जोस सों, जाजुर्यौ लाल सों रोस सों।
सीस के केस ठाडे महाँ, भूमि पंजानि खोदै तहाँ॥ ५२॥
पच्छ की लच्छ चोटैं करै, चोंच की खोट चोटैं करै।
जासु भ्रूभंग कालै दहै, ताहि अज्जान मार्यौ चहै॥ ५३॥

दो०—प्रभु लीला आसक्त में लखि सिसु दुखी अपार।
कर कमलन सों चोंच गहि करे फका द्वै फार॥ ५४॥

कुमार०—सबै सुर अनंदे, प्रभो चरन बंदे।
प्रसून तहँ डारे, बिनै सुख उचारे॥ ५५॥

* मद०—आनंदे सिसु यातें, छूटे स्याम बकातें।
तापै दुष्टहि मार्यौ, भारौ दुःख निबार्यौ॥ ५६॥

दो०—मारि बकासुर दीन्ह सुख, राम सखनि श्री स्याम।
बछा बटोरि चले सकल, ब्रज मंडल निज धाम॥ ५७॥

विद्यु०—आये प्यारे जाने गेहे, धाई माता साजे नेहे।
गोपी आनंदी सों दौरीं, देखे रामे स्यामे बौरीं॥ ५८॥

'लछमीधर' की अन्ति में एक रगन दै खोइ।
होतु 'महालछमी' तहाँ, छन्दु कहत सब कोइ॥

* 'मदलेखा' का उदाहरण ठीक मालूम होता है, परन्तु लक्षण अशुद्ध है। दोहे में जगण और मगण मदलेखा का लक्षण किया गया है। वस्तुतः मगण, सगण और एक गुरु उसका लक्षण होना चाहिये, जगण और मगण का कोई छंद नहीं होता।

जगन सगन गुरु अन्त पर कहि 'कुमारललिता'हि।
आदि जगन फिरि मगन पढु 'मदलेखा' कर ताहि॥
जहाँ आठ गुरु आनि, कवि नरिन्द सुन लीजिये।
'विद्युन्माला' जानि, छन्दु यहै पिंगल मते॥

दो०—मातनि कंठ लगाइयौ, राम स्याम गहि हाथ।
बका बधन की नंद सों, कही सखा सब गाथ॥ ५६॥

* तुंगा०—सखन कहिव जान्यौ, अचिरजु करि मान्यौ।
भगवत सिसु राख्यौ, अकल सकल भाख्यौ॥ ६०॥

दो०—तिहि अवसर भोजन कर राम स्याम सुख मानि।
सखा बिदा करि सेज पर, सैन करी तहँ आनि॥ ६१॥

† कमल०—तरनि कर जो उगे, जगतपति सो जगे।
सखनि सब जोरि कैं, बछनि बर छोरि कैं॥ ६२॥

दो०—झुंड बाँधि लै बाल बन, बछा चले लै घेरि।
श्रंग बैन डफ आदि दै, बाजि उठे तिहि बेरि॥ ६३॥

‡ दु०—चलि गये जमुनतट सबहिन के घट, उमगि अनंदित केलि करैं,
जे बछनि चरावत मिलि सब गावत, कुसुम अनेकनि माल धरैं।
इक सीके छोरत इक इक चोरत, पाक बिबिधि बिधि खात महाँ,
इक मोरनि बोलनि हंस कलोलनि, बोलत बोलनि बोल तहाँ ६४
इक कोकिल कूकनि मर्कट हूकनि हूकत जहँ तहँ हास करैं,
इक भौरनि गुंजनि पहिरत गुंजनि बहिरत कुंजनि स्वाँग धरैं।
इक प्रभुहिं रिझावत, प्रभु सुख पावत, अति प्रवीन गति नृत्त सचैं,
लखि सुर सब तरसत सो सुख बरसत सिसु उर आनँद खेल रचैं ६५

पंच आदि लघु सगन दै, 'तुंगा' कहिये सोइ।
जहाँ सगन तहँ रगन पढु, 'कमल छंदु' फिरि होइ॥

* इस का लक्षण है न, न, ग, ग। पांच आदि लघु और सगन में लक्षण ठीक नहीं बैठता।

† न, स, ल, ग। दूसरा नाम पद्म।

दसु बसु चौदह बिरति रचु, अन्त सगन गन सोइ।
सुमिला बानी को गिलै 'दुमिला' छंदु जु होइ॥

‡ इस छंद में १०, ८, १४ पर यति होती है।

दो०—देखि अघासुर खेल कौं, दीरघ स्वासनि छंडि ।
भ्राता भगिनी खबर करि, सठ आयौ रिस मंडि ॥ ६६ ॥

प्लवं०—मेघ छटा पट अंग भुजंगम रूप है ।
उग्र रह्यौ मुह बाइ, मनो भव कूप है ॥
जोजन एक पसार छिपो नभ जाइ कै ।
रूँधि लियौ दिगद्वार सुमारगु आइ कै ॥ ६७ ॥
जीभ जहाँ जुग काढि चलावत जोस सों ।
दीरघ दन्त उघारि भर्‌यौ अति रोस सों ॥
नैन हुतासन कुंड तरेरत दुष्ट है ।
छाँडतु स्वाँस प्रचंड महाबल पुष्ट है ॥ ६८ ॥
देखत बाल डराइ न आवत बात सौं ।
अद्भुत रूप निहारि कपैं सब गात सौं ॥
बात कहैं नँदनंद सुनौ सिसु मित्र सौं ।
सर्प नहीं यह जानिय है सुर सत्रु सौं ॥ ६६ ॥
मोग्रसिबे कहँ इच्छ करै यह आइयौ ।
* मारहुँ याहि सँघारि तबै गुन गाइयौ ॥ ७० ॥

दो०—इहि प्रकार समुझाइ के, सखनि सुनहु अवनीस ।
तासु बदन प्रविसे प्रभो, बिस्वरूप जगदीस ॥ ७१ ॥

सो०—प्रविसे नंदकुमार, जासु बदन तिन नैं लखे ।
बाल बच्छ तिहि बार, अच्छ मूँदि प्रविसे सकल ॥ ७२ ॥

उद्ध०—जब हरिहि हिय धारि, मद भरिव आगार,
फिरि करतु उद्गार, मुख बाँधि बल सोइ ।

चारि भगन के अन्त पर रगन परै जब सोइ ।
कवि कुल कलस बिचारियौ छंदु 'प्लवंगम' सोइ ॥

* इस छंद के दो चरण मूल पुस्तक में नहीं हैं ।

होहि मत्त चालीस जहँ दस दस पर बिश्राम ।
गति सुद्धति 'उद्धति' कह्यौ छंदु छबीलौ नाम ॥

प्रभु ग्रसे तहँ जानि, सुर सकल दुख मानि,
धक पके उर आनि, लखि सुखित नहि कोइ ॥ ७३ ॥

बल बिपुल उक्खाड, भुज अंग जब बाढ,
खल परिय हिय गाढ, सहि सकै किमि भार ।

रुकि स्वाँस परचंड, हति तेज उद्दंड,
सिर फूट सत खंड, सठ ह्वै गयौ छार ॥ ७४ ॥

दो०—जासु उदर में बिस्व है, सठ लील्यौ सो गात ।
क्यों न अंग फटि गिरि परैं, नहिं अचिरज की बात ॥ ७५ ॥

मानव०—फारि महादुष्ट तबै, आपु कढे बाल सबै ।
मूर्छि बछा बाल रहे, देखि कृपादृष्टि गहे ॥ ७६ ॥

* सा०—सिसु उठि बैठे सुख सौं, चितवत प्यारे रुख सौं ॥
सुर सब ठाडे हर्षैं, सुमन सुमाला बर्षैं ॥ ७७ ॥

दो०—जासु तेज तिहि तन कढ्यौ, प्रविस्यौ मुख श्रीस्याम ।
पैंठे ताके उदर में, भई मोच्छ निहकाम ॥ ७८ ॥

सो०—मुनि दुर्लभ गति दीन, प्रभु परसे कौ फल मिल्यौ ।
सुर मुनि जै जै कीन्ह, नाक नटी नर्त्तहि नवल ॥ ७९ ॥

* चौ०—आइ गये बिधि पूजि प्रभो पद पूरन प्रेम बढे हिय में ।
अस्तुति भाँतिन भाँति करैं तहँ आनँद ब्रंद भरे जिय में ॥ ८० ॥

भगन तगन लघु गुरु जहाँ 'मानव क्रीडा' जानि ।
दुजवर करन जु सगन जहँ 'सारंगिका' बखानि ॥

*सारंगिक छंद का लक्षण भी अशुद्ध है । इसका लक्षण है न, य, स ।

सोरह मत्ता प्रथम दे, फिरि चौदह सुख पाइ ।
चौदह सोरह दुत्तिपद, लयौ 'चौबला' आइ ॥

* छन्दप्रभाकर में १५ मात्राएँ प्रथम चरण में बताई गई हैं ।

वेद उचारि रिचानि पढ़ैं, कर जोरि पितामह ध्यावत हैं।
आइसु पाइ गये ग्रह कौं, सुर संग सबै गुन गावत हैं ॥८१॥

दो०—चर्म अघासुर सूखि कै, पर्‌यौ रह्यौ बहु काल।
ब्रजबासी बालक जहाँ, खेलैं खेल रसाल ॥ ८२॥

हाक०—मोहन बालक वच्छनि लये, कुंज निकुंज फिरै मनु दये।
जो पुरुषोत्तम वेद न कह्यौ, सो प्रभु बाल बिनोदनि लह्यौ॥८३॥

दो०—नहीं ज्ञान यह बालकनि, परब्रह्म नहिं जानि।
राम क्रस्न के चरित लखि, अति आनँद उर मानि ॥ ८४॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द वृन्द दायिन्यां शरच्चन्द्र चारु चंद्र मरीचिकायां श्रीकृष्णचंद्र चन्द्रिकायां द्विजगुमान विरचितायां बकासुर अघासुर वध वर्णनो नामा सप्तमः प्रकाशः।

तीन बरन गुरु लघु जहाँ ग्यारह बरन प्रमान।
कवि कुल कलस बिचार रचि 'हाकलि' छंदु सुजान॥

अष्टम प्रकाश

यह आठवें प्रकास में, सुनि न्रप कथा सुहोइ ।
बाल बच्छ ब्रह्मा हरैं, निज माया रस भोइ ॥ १ ॥

चित्र०—सौनक हे सुनिये जू, ज्ञान निधान गुनें जू ।
पूछत प्रस्न महीसा, भाखत फेर मुनीसा ॥ २ ॥

सो०—पूछत रिषि सुख पाइ, बालचरित्र कहे मुनी ।
अब कहिये हिय ल्याइ, चरित सकल यौगंड के ॥ ४ ॥

मो०—बोले सुकदेव प्रमोद लिये ।
भूपाल सज्ञान बिचार हिये ॥
राजेन्द्र सदा उर भक्ति लसै ।
श्रीक्रस्न चरित्रनि चित्त बसै ॥ ५ ॥

दोइ भगन अन्तःकरन आठ बरन तहँ जोइ ।
अति बिचित्र रचि 'चित्रपद' चतुर कवीसुर जोइ ॥

आदि तगन फिरि जगन जुग अन्ते लघु गुरु आनि ।
छंदनि की मनि मुकट यह छंद 'मोटनक' जानि ॥

जाकौं अज ईस जु ध्यावत हैं ।
　　　　जोगीन्द्र जिन्हें मन ल्यावत हैं ॥
लीला प्रभु की जु अपार महाँ ।
　　　　खेले मिलि संग सखानि तहाँ ॥ ६ ॥

दो०—संग सखा बच्छा लिये, पहुँचे जमुना कूल ।
　　देखत बन सोभा घनी, खेलत तन मन फूल ॥ ७ ॥

स्र०—कालिन्दी के रही हैं तट छहरि छटा नीर कल्लोल ही की ।
　　फूली फूली महाँ है वह पुलनि लसै मालती चारु नीकी ॥
　　दौरे दौरे भ्रमें औ मधुप मधु रसीले गुंज गुंजार साजैं ।
　　सीरी सीरी चलै है पवन परसती माकरन्दै बिराजै ॥ ८ ॥

दो०—झुमडे द्रुम अभिरे लतनि, भरे कुसुम के भार ।
　　देखौ सिसु मम मित्र हौ, यह बन सुख कौ सार ॥ ६ ॥

पाइ०—बोले सो मोहन रुख सों, पा बोले भोजन सुख सों ।
　　छोरे सीके उमगि हिये, फूल ल्याये करनि लिये ॥ १० ॥

* कमला०—प्रभु सिसु सकल लिये, मिलि संग असन लिये ।
　　　　बिधिवत बिबिध करैं, षटरस रसन भरैं ॥ ११ ॥

दो०—भोज्य भक्ष्य तह लेह्य कहि, पेय पियत सिसु साथ ।
　　पाहन पत्रन पर धरैं, जैंवत त्रिभुवन नाथ ॥ १२ ॥

आदि चारि गुरु यगन दै छ लघु तगन जहँ दोइ ।
द्वै गुरु फिर इकइस बरन छंद 'स्रग्धरा' सोइ ॥
मगन भगन फिरि सगन दै 'पाइत्ता' तहँ जानि ।
बसु लघु के गुरु अन्त पर 'कमला' छन्द बखानि ॥

* दूसरा नाम 'रतिपद' कुमुद, लक्षण—न, न, स ।
पाँच आदि लघु रगन गुरु 'बिम्ब' कहत है वाहि ।
आदि रगन लघु पंच गुरु कहत 'हलमुखी' ताहि ॥

बिम्ब०—प्रभु सिसु बिनोद मोहै, सुर चकित चित्त सोहै।
कटि पट सुपीत भ्राजै, तिहि पर सुकेतु राजै ॥ १३ ॥
कर दधि जु भातु लीन्हैं, इक कर जु कौल कीन्हैं।
प्रभु इहि प्रकार देखे, बिधि उर भ्रमे बिसेखे ॥ १४ ॥

दो०—चतुरानन कौं भ्रम भयौ, देखे बाल सुभाइ।
परब्रह्म पर तैं परें, वेद कहत गुन गाइ ॥ १५ ॥

हलमु०—बाल केलि तकि तकि कैं, अब्ज जोनि जकि जकि कैं।
यौं बिचार उर करि कैं, बच्छ चोरि छलु करि कैं ॥ १६ ॥

*दो०—सिसु बोले नहिं लखि परत, बछा न नन्दकुमार।
प्रभु कहि तुम इहिं थल रहौ, हौं देखत अगतार ॥ १७ ॥

गगना०—हरि हरबर कैं ताकत कर कमलनि लै कौर हैं।
अखिल भुवन के नायक सकल सुरनि के मौर हैं ॥ १८ ॥
प्रभु बन बन कैं देखत मिलत न बछरा जानियौ।
मुरकि जगत के पालक कपटु सुबिधि कौ मानियौ ॥ १९ ॥

दो०—तदनन्तर बिधि सखा हरि, लखे न प्रभु तहँ आनि।
मायापति मुसक्याइ मन, बिधि माया पहिचानि ॥ २० ॥

सो०—जा प्रभु सों छलु आइ, कीन्हौं बिधि अज्जानता।
चाहतु तिनहिं भुलाइ, जासु उदर तें आपु कढि ॥ २१ ॥

उपजा०—आगें हते बाल बच्छा सुजैसे।
रचे प्रभो ने निज तेज तैसे ॥

---

* इस दोहे में नकार व्यर्थ है।

छकल दोइ गुरु आठ कल फिरि गुरु रगन जु अन्त।
अच्छर बीस पचीस कल रचि 'गगना' बुधवन्त ॥
इन्द्रबज्र की चरन जहँ उपइन्द्रा में होइ।
उपजतु है 'उपजाति' तहँ छन्द कहतु सब कोइ ॥

जा आतमा बिस्व विभो विराजैं।
किती कहौं ता कहँ बात राजैं ॥ २२ ॥

दो०—बैस बरनि लच्छन प्रकृति, रचि प्रभु चाले गेह।
श्रवत छीर माता मिली, हुंकरि सहित सनेह ॥ २३ ॥

सुखमा—आईं ढिग माता प्रेम खरी।
लै अंक लगावति मोदभरी।
चूमैं मुख गोपिय मोह महाँ।
गावैं सिसु चाटैं चौंप तहाँ ॥ २४ ॥

सो०—सुत अस्नान कराइ, बिबस प्रेम जननी महा।
अमित पाक तहँ ल्याइ, उमगि हिये पर से तहाँ ॥ २५ ॥

दो०—महा मोह अति सम बढ्यौ, पूरब ते यहि रीति।
खिरकन में करिनाद कौं, गौवैं चितइ सप्रीति ॥ २६ ॥

पादाकुलिक०—उठि मोहन प्रात चले बनकौं।
लै राम सखा बछुरा गनकौं ॥
बनकौं सुत मातनि जानि ठये।
कच ऊँछि कलेऊ बाँधि दये ॥ २७ ॥
उर मोह पयोधि परी चलतैं।
नहिं बात कढे जु कछू गलतैं ॥
गौवैं बन जात रम्हाइ चलैं।
मुरकैं चितवैं सुत चाहि भलैं ॥ २८ ॥

दो०—महा मोह व्याप्यो सबनि, सब कह सुत अनुमानि।
प्रकृति पुरुष परमातम, तासु आतमा जानि ॥ २९ ॥

द्वि गुरु द्वि लघु दै त्रिगुरु फिरि द्वै लघु गुरु अवरेखि।
पढत न मुख सुखमा करै, 'सुखमा' छन्द बिसेखि ॥
सोरह मत्ता कौ चरन, गुरुलघु नैमु न आनि।
यहै प्रगट पिंगल मते, 'पादाकुलिक' वखानि ॥

* आभीर०—पहुँचे बन सुखधाम, संग सखा अभिराम ।
अमित खेल तहँ खेलि, कछरनि बछरनि मेलि ॥३०॥
गोबर्धन पर ग्वाल, लिये धेनु तहँ जाल ।
सुत लखि प्रेम सुभाइ, हुंकरि सीस उठाइ ॥ ३१ ॥

दो०—श्रवन पुच्छ उन्नत करैं, श्रवत दुग्ध करि प्रीति ।
हरे भरे तन बदन में, धाई त्रप इहि रीति ॥ ३२ ॥

दीपक०—जह रोकिय हु ग्वाल, नहिं सो रुकिय हाल ।
यह देखि बल सोइ, मन अचरज भोइ ॥ ३३ ॥

सिंहाव०—बल वीर ज्ञान दृग देखि तहाँ ।
प्रभु आतम भूति बिभूति महाँ ।
सब बिस्व चराचर व्यापि रह्यौ ।
बछरानि सखा किमि जाइ कह्यौ ॥ ३४ ॥

दो०—बछा सखा प्रभु आतमा, राम लखे करि ज्ञान ।
बेर बेर दंडवत करि, हरि माया बलवान ॥ ३५ ॥

सो०—इहि अन्तर बिधि आइ, बाल बछा देखे सकल ।
लच्छन वैस सुभाइ, जैसे पूरब ही हरे ॥ ३६ ॥

मत्ता०—देखे ब्रह्मा सकल सखा हैं ।
देखे तैसे चरत बछा हैं ॥

---

* दूसरा नाम अहीर ।

रुद्र कला दीजै जबै परै जगन जब अन्त ।
तजहु भीर आभीर रचु कवि धीरज बुधवन्त ॥
सगन नगन गुरु लघु जहाँ, करि दीपक सुखधाम ।
अन्त सगन सोडस कला, सिंहा लोकि नाम ॥
आदि चारि गुरु चारि लघु, फिरि द्वै गुरु दे अन्त ।
चरन रचहु दस बरन कौ, कहि 'मत्ता' बुधवन्त ॥

जे लखि मन भौ सुस्थिर नाहीं ।

माया भूल्यो भ्रम उर माहीं ॥ ३७ ॥

छप्प०—जिते बाल औ बच्छ, तिते सब बिस्नु रूप धृत ।

मौल मुकट मनि जटित, श्रवन कुंडल मकराकृत ॥

कौस्तुभ मनि उर माल, हास ईखद कहि कीन्हैं ।

चारि बाहु कर चारि, चारि आयुध कहँ लीन्हैं ॥

भ्रगु चरन अंक अँकित महाँ, पीत बसन तडिता बरन ।

ब्रह्मादि देव अस्तुति करत, कर जोरैं सेबत चरन ॥ ३८ ॥

दो०—प्रभु माया छन छन लखे, बिधि भ्रम कौं अति पाइ ।

सपन किधौं साँची किधौं, परत धरनि अकुलाइ ॥ ३९ ॥

मदिरा सवैया०—देखि बिरंचि भ्रम्यौ भ्रमसौं,

प्रभुने भ्रम बात सकेलि लई ।

पूरन ज्ञान उदोत भयौ,

फिरि कैं उर चेतनि सक्ति भई ॥

मान सबै अहमेव गयौ,

मति नेह निरंजन में जु ठई ।

ब्रह्म अनामय जानि लयौ,

मनकी दुबिधा छन माँझ गई ॥ ४० ॥

दो०—जैसे प्रभु पूरब लखे, बच्छ हरन के ठौर ।

अखि उघारि लखे तहाँ, दधि ओदन लिय कौर ॥ ४१ ॥

सो०—कर संपुट तहँ कीन्ह, नमित कंध ठाडे भये ।

तन कंपित अति दीन, सनै सनै सनमुख चले ॥ ४२ ॥

सेनुका०—अब्ज जोनि हाथ जोरिकैं रहे ।

नैन अश्रुपात बैन हैं कहे ॥

सात भगन गुरु अन्त पर पढ़ै सुकवि गुनधाम ।

छन्दु सवैया जानिये 'मदिरा' ताकौ नाम ॥

त्राहि त्राहि नाथ मोहिं रच्छिये।
चित्तना बिचारि दोस लच्छिये॥ ४३॥
भूलिगौ अयान मोह अंध सौं।
राखिये कृपाल दीनबंध सौं॥
बिस्व के अधार बिस्वपाल हौ।
संत रच्छपालु दुष्ट साल हौ॥ ४४॥

* चुलियाला०—

दया सिन्धु जगदीस प्रभु मन में जनकी चूक न ल्यावत।
व्यापक पूरन ब्रह्मजग वेद रिचनि करि गुन गन गावत॥
करता हरता भूमि के भरन हार भरतार कहावत।
त्रिगुन रूप न्यारे त्रिगुन जग जीवन जग जीव रमावत॥ ४५॥
घट घट व्यापक सर्व हौ तुव घट सर्व चराचर राजत।
तव माया में भ्रमत हैं, सुर नर असुर अनेकन भ्राजत॥
दै प्रदच्छिना कहत विधि, सुर त्राता तुम सब बिधि लाइक।
तुव पद्म पाँइ की भक्ति अनूपम दीजै अखिल लोक के नाइक॥४६॥

दो०—बेर बेर दंडवत करि, करि बिनती अवनीस।
गए पितामह लोक निज, प्रभु आयसु धरि सीस॥ ४७॥

धवला०—सखन सहित प्रभु तहँ फिरि करत असन हैं।
प्रफुलित मन जहँ रुचि सुचि सँग सिसु गन हैं॥ ४८॥

गुरु लघु क्रम ग्यारह बरन, चरन 'सेनुका' जान।
दोहा दल पर पंच कल, 'चुलियाला' पहिचान॥

अष्टादस जहँ लघु परैं, एकु परै गुरु अन्त।
'धवला' छन्द विचारि रचु, कवि धीरज बुधवन्त॥

* कोई इसके दो और कोई चार पद मानते हैं। हमारे कवि को अन्त में जगण और एक लघु देकर दो पद का 'चुलियाला' अभीष्ट है। चार पद वाला यगणान्त अभीष्ट नहीं है।

सजि सजि सकल चलत ग्रह कहँ चित धरि कैं।
हरि मुख अमल कमल चितवत सुख भरि कैं ॥ ४६ ॥

दो०—सखनि संग ले गेह, कँह आये नंद कुमार।
उमगि हृदै माता मिलीं, भरीं मोह के भार ॥ ५० ॥

सो०—आये ग्रह सुख मानि, बिधि माया तें मोच्छ सिसु।
वेही दिन कँह जानि, निधन अघासुर तिन कह्यौ ॥ ५१ ॥

इति श्रीसज्जनकुल कैरवानंद वृंददायिन्यां शरचंद्र चारु मरीचिकायां श्रीकृष्णचन्द्रिकायां द्विजगुमान विरचितायां ब्रह्माबालवत्स-हरणो नामाष्टमः प्रकाशः समाप्तः।

नवम प्रकाश

सुन न्रप नवम प्रकास में ये न्रप कथा सुहोइ।
बन बर्नन धेनुक निधन कालीमद नसिबोइ ॥ १ ॥

सो०—हे न्रप जगत अनित्त जैसे देखो ओस कन।
प्रभु कौ नाम सुनित्त प्रेम सहित मन लीजिये ॥ २ ॥

दो०—आँखि मूदिबौ कूदिबौ सेतु बाँधिबौ सोइ।
ये लच्छन कौमार कैं तजे क्रपानिधि जोइ ॥ ३ ॥

सो०—पौगंड अवस्था आइ पसु पालक करि नंदजू।
माधव बैन बजाइ बन बन धेनु चरावहीं ॥ ४ ॥

दो०—जमुना कूल कदम्ब तरु सखन सहित दोउ भाइ।
हरे चरहिं त्रन धेनु जहँ जलु पीवहिं सुख पाइ ॥ ५ ॥

सो०—बोले सुन्दर स्याम हे अग्रज बन कौं लखहु।
परम रम्य सुख धाम मिलि बसन्त प्रफुलित तहाँ ॥ ६ ॥

मन्दा०—प्यारी प्यारी मृदु द्रुमलता मंजु रंजै नबेली।
देखौ झूमैं मिलि सुमनकौं स्वच्छ गुच्छै नबेली ॥

दोइ कर्न दै पंच लघु दोइ तगन गुरु दोइ।

फूले फूले नव बिटपते पुष्प सौं भूरि भारैं।
मानौं चाहैं तव चरन लै भूमि पै सीस धारैं ॥ ७ ॥

शिखरि०—लखौ फूले फूले जिन पर भ्रमै भौंर सरसैं।
उड़े दौरैं भौरे भरि भरि रमैं रंग बरसैं ॥
महामाते बोलैं परिभ्रत खरीं कूक करतीं।
किधौं खोलैं तेरे बिसद जस कौं मोद भरतीं ॥ ८ ॥

शार्दूलवि०—कालिन्दी उठती अनंद करती देखौ तरंगे घनी।
तैसी सोहति है बयारि बहती मीठी सुगंधी सनी ॥
राजैं जे अरबिन्द ब्रन्द बिकसे लै मत्तभृङ्गै जहाँ।
फूलीं हैं नवमल्लिका पुलिन में बाहैं सुगन्धै महाँ ॥ ६ ॥

*मदन०—तहँ प्रफुलित बिपुल बिपिन अति सुन्दर,
गोबर्द्धन द्रुम सघन लसैं मन में जु बसैं।
फिरि भरत ढरत मधु बिथरत परिमल,
मिलिकरि पवन सुगन्ध गसैं दिगपै बिलसैं।
जहँ बिच ही बिकसत बर बर ही अति,
निर्तत नव नव गतिन धरैं हिय कौं जु हरैं।

आदि अगुरु गुरु पंच रचु फेरि पंच लघु सोइ।
तगन सगन दै अन्त पर तबै 'सिखरिनी' होइ ॥

मगन सगन जग सगन फिरि तगन दोइ गुरु अन्त।
'सार्दूल विक्रीडित' हि रचहु सुकवि बुधवन्त ॥

अष्टादश चौदह कला फिरिबसुरचि स्वच्छन्द।
गिरा गरे को करुहरा 'मदनहरा' यह छंद ॥

* यह मात्रिक दण्डक है। इस में १०, ८, १४, ८ के विश्राम से ४० मात्राएँ होती है। आदि में दो लघु होते हैं, जो लक्षण में नहीं बताये गये,

जहँ तहँ प्रतिदुजकुल करि करि कलरव जनु,
तुव पद अस्तुतिन करैं उर मोद भरैं ॥ १० ॥

दो०—डुलत सुमन मधु श्रवत तहँ धुंधर उडत पराग।
बहतु गंध अलि बंध जे लेत उमगि अनुराग ॥ ११ ॥

†निसानी०—राम स्याम आगे चले बन सोभा देखत।
संग सखा सुख कौं लहैं सुभ भाग विसेखत ॥
आगे बन गोधन गयौ लखि स्याम मुरारी।
सजल जलद धुनि टेरियौ हिय सीतल बारी ॥१२॥
जगजीवनि की बानि सुनि जगजीव सुखारी।
लसति सजीवनि मूरि सी तब प्रान पियारी ॥
खग बोलनि फिरि बोलहीं तहँ नंद दुलारे।
तिन बोलै खग बोलहीं करि कलरव भारे ॥ १३ ॥
मुख मुरली सुर साधियौ तहँ रूप उज्यारे।
सुनि मोहे बन जीव जे सुर श्रवननि धारे ॥
मगन महा मन मोद में ब्रज बिपिन बिहारी।
खग म्रग पसु सब मोहियौ प्रभु छविहि निहारी ॥ १४ ॥

दो०—जुगल बन्धु बन भ्रमन में राम श्रमित कछु गात।
पग चाँपत करुना अयन कोमल कर जलजात ॥ १५ ॥

सो०—किसलय सेज बनाइ जुगल बंधु पौढे तहाँ।
इक सिसु पंखा ल्याइ इक सिसु चामर कौं करै ॥ १६ ॥

प्रथम मत्त तेरह करहु फिरि दसकला सुलेख।
रस सानी बानी पढौ छंदु 'निसानी' एक ॥

† निसानी नाम का छंद पिङ्गल में नहीं है, १३, १० मात्राओं का कदाचित् यह अवतार, या उपमान छंद होगा। अवतार में अन्त रगण तथा उपमान में दो गुरु होते हैं। किन्तु उपमान में दो गुरु होना जरूरी नहीं है।

* लीलावती०—प्रभु पगनि पलोटत सिसु मिलि मिलि,
खग रव करि करि सुर गावत हैं।
फिरि उमगि मगन अति तन मन भरि,
अनगन गुन गननि रिझावत हैं॥
जहँ हसत परसपर रस बरसत,
हरि हरखत बिपिन विनोद करैं।
यह लखि लखि सुख सुर मुनि मन,
तरसत सरसत प्रमुदित प्रेम भरैं॥ १७॥

सो०—श्री दामा से नाम सबल सुबाहु सुजोरि कर।
बिनये श्रीबल स्याम ताल बिपिन चलिये प्रभो॥ १८॥

दो०—धेनुक डर कोउ नहिं छियत तिहि बन के द्रुम पात।
फरे भरे फलनैं परे झरत झकोरे बात॥ १९॥

किरीट०—
सो सुनिकैं जुगबन्धु चले मिलि संग सखा जु प्रमोद भरे रस।
सुन्दर रम्य अरन्य लख्यौ बन पैंठत अग्रज अग्र भये हँस॥

चरन करहु बत्तिस कला, गुरु लघु बिरति न नेम।
कवि सीला 'लीलावती', रचिये छन्दु सुप्रेम॥

* लीलावती छंद के विषय में भिन्न भिन्न मत हैं। पुस्तकस्थ छंद के अनुसार गुरु लघु का कोई क्रम नहीं, परन्तु बाबा रामदास के मतानुसार सब पदों के अन्त में यगण ।ऽऽ आना परमावश्यक है। बाबा भिखारीदास इस में कोई नियम नहीं मानते। गुमानी का मत भिखारीदास से मिलता है। छंदःप्रभाकर में बाबा रामदास का मत प्रौढ बताया गया है, परन्तु उनकी प्रौढता का कोई प्रमाण नहीं दिया गया।

द्वादस पर विश्राम करि, आठ भगन दे सोइ।
कहियतु छंदु 'किरीट' की रीति सुनौ सब कोइ॥

मंजुल पक्क फरे फल पुंजन गुंजन भौंर प्रसून भरे तहँ।
राम कँपावत ब्रच्छ समूह झरे फल फूल ढरै छिति पै जहँ ॥२०॥

दो०—झरत सुमन फल गिरत तहँ बिथुरत बिपुल रसाल।
भरत गोद हरबर धरत करत कुलाहल बाल ॥ २१ ॥

छप्पय०—सोर सुनत अति जोर भरौ धेनुक धरि धायव।
रासभ रूप उमंडि मंडि रन सनमुख आयव ॥
फल लखि बढ्ढिव रोस घोस घन रोस सुबोलत।
धमकत धरनि धधाय भूमि भूधर सब डोलत ॥
करि श्रवन पुच्छ उन्नत तजतु घ्रान रंध्र स्वाँसानि सुर।
लखि महाबली बलभद्र कहँ पिछले पग घालत असुर ॥ २२ ॥

सवाई छन्द०—

बल उद्धत बलराम महाबल झपटि धरयो झुकि असुर कठोर।
कर पर हरबर फेरि फिरावत उलछारत झारत झकझोर ॥
तरबर मूल भूमि गहि पटक्यौ झटक्यौ चट चट फटक्यौ फेरि।
झहरत प्रभु हहरति बसुधा तहँ भभरि भगे मृग गन तेहि बेरि ॥२३॥
सोतन चूरि धूरि मिलि पारयौ भूरि कढ्यौ रव मरत प्रचंड।
खल दल बिपुल सबल सब धाये दस दिसि ह्वै आये बलबंड ॥
राम स्याम प्रभुलीला बाढे सठ मारे इक भुजा उखार।
तोरत सीस सीस सों फोरत ढोरत धर धरनी के भार ॥ २४ ॥
इक पग पकरि उच्चगहि पटकत छी मुरकत खल अमर अगार।
जिमि फन सघन गगन महँ छाये भ्रमत भयानक इमि अनुहार ॥

चरन रचहु इकतिस कला, सोरहु पर बिश्राम।
कविताई करिकै रचौ, छन्द 'सबाई' नाम ॥

* छंदः प्रभाकर में ३२ मात्राओंका 'सवाई' छन्द है। अन्त में भगण का होना भी आवश्यक है। पुस्तकस्थ छंद में उपर्युक्त नियम का भंग होता है।

हरखत हिय बरखत कुसुमावलि ब्रन्दारक के ब्रंद अपार।
जय जय धुनि जन करत मगन मन अतुल पराक्रम प्रभुहिं निहार॥२५

दो०—रज कन सम चौदह भुवन धरे जु ताके सीस।
कहँ धेनुक खल बापुरौ सुनिजै कुरु अवनीस॥ २६॥

* नरिन्द्र०—

धेनुक दुष्ट देखि बुध जहँ म्रगयादिक जीव सुखारी।
निर्भय गात होइ बिचरत फल पावन के अधिकारी॥
सुन्दर राम स्याम बन बिहरत संग सखा मिलि प्यारे।
गावत ग्वाल पक्क फल जहँ तहँ चाखत आनँद भारे॥ २७॥
साँझ हि जानि स्याम बलि मिलि सब गोपन गोधन फेर्यौ।
मंदिर जाइ बैनु सुर करि नर नारिन कौं मनु घेर्यौ॥
गोरज धुंध देखि उड़तन ब्रजजीवन आवत जानैं।
धावहिं बाल लाल छवि छकि छकि धन्य सुभागहिं मानैं॥ २८।

दो०—हेरत इक घेरत इकै फेरत गोधन टेरि।
आवत इक गावत खरे राम कृस्न कौं घेरि॥ २९॥

*हंसी०—आये प्यारे गेहे जानैं ब्रज जन सकल मगन सुखपागे।
आगे दै माता लै आईं उरकि उरकि सुत उरभरि लागे॥
बाढी गाढी प्यारे प्रेमै कर बर गहि हरबर अति जोहैं।
देखौ सोभा कौं भाखैं जू जनक जननि तहँ जनमन मोहैं॥३०॥

भगन मगन दे सात लघु दोइ मगन गुरु दोइ।
कपि नरिन्द्र रुचि सौं रचौ छंदु 'नरिन्द्र' जु सोइ॥

* इसका लक्षण है भ, र, न, न, ज, ज, य, १३, ८ पर यति।

आठ अलघु लघु दीजिये द्वादस द्वै गुरु फेरि।
यह 'हंसी' छन्दहु रचौ पिंगल मति कहँ हेरि॥

* म, म, त, न, न, न, स, ग, १०, ८, १४ पर यति।

सो०—तप्त नीर अन्हवाइ बिगत भयौ श्रम बिपिन कौ ।
बिबिध पाक तहँ ल्याइ जुगल बंधु भोजन करत ॥ ३१ ॥

दो०—भोजन करि बीरा लये सरस सुगन्ध मिलाइ ।
सैन करी त्रिभुवन धनी मन प्रसन्न सुख पाइ ॥ ३२ ॥

मनहरन०—जब रवि कर निकर जगत जग मग,
जग खग कुल कलरव करत महाँ ।
तहँ प्रफुलित अमल कमल मिलि मधुब्रत,
मधुरस भरि भरि भ्रमत तहाँ ।
उठ रिखि मुनि बिपुल बिसद हरि,
गुन करि निगम अगम गुन धुननि करैं ।
जहँ सुनि जगि जगत जनक जगपति,
लखि जगजन प्रमुदित हृदय भरैं ॥ ३३ ॥

दो०—जगजीवनि सुख दानि प्रभु जागे सुन्दर स्याम ।
संग सखा लै बन चले ग्रह छोड़े श्री राम ॥ ३४ ॥

* अश्लोक०—जाइ माधो सखा लेकै कुंज कुंजनि में रमे ।
तहाँ भौरे भरे गुंजै भौंर कंजन पै भ्रमे ॥ ३५ ॥
झूमती हैं लता फूलीं हृदै आनँद कौं भरैं ।
संग माते फिरैं तातैं कोकिला कल कौं करैं ॥ ३६ ॥

दो०—सुमन रंग सौरभ सन्यौ गहबर बिपिन अपार ।
संग सखा गोधन लिये बिहरत नंद कुमार ॥ ३७ ॥

सगन अन्त बत्तिस कला, दस बसु भुवन बिराम ।
याही बिधि चारयौ बरन छंद 'मनहरन' नाम ॥

चहूँ चरन में एव पंचम लघु षष्टम गुरू ।
दुती चतुर्थी देव सप्तम लघु 'अश्लोकु' सो ॥

* शुद्ध नाम 'श्लोक' है । भिखारीदास जी ने इस की गणना मुक्तक छंदों में की है ।

सो०—सिसु सुरभी तिहि बेर ऋखावन्त जल के भये ।
काली दह कहँ हेरि चले सीघ्र पहुँचे तहाँ ॥३८॥

चकोर छंद०—

सो जल पीवत भोइ गये विस सोइ गये तहँ चित्त अधीर ।
राजत हैं जनु म्रत्व ग्रसे इमि मूर्छि गिरे उर में भरपीर ॥
देखि दया निधि जानि गये सब जानत हैं जग जन की पीर ।
दृष्टि क्रपा करिकैं चितये बितये दुख जागि परे जु अहीर ॥३९॥

दो०—चेतन ह्वै जान्यौ जबै प्रभु ऐस्वर्ज अपार ।
आपुस में सिसु मिलि कह्यौ धनि धनि नंद कुमार ॥ ४० ॥

सो०—कहि न्रप सुनु मुनिनाह कथा सकल कहिये जु अब ।
अति अमोघ जल माँह कैसे काढ्यौ विषधरहिं ॥ ४१ ॥

छप्पय०—जमुन धार कहँ तजहिं अगम दह भरिव धनुस सत ।
तहँ अहि करहि प्रवास कोह काली दुर्मद मत ।
लहरि लोल मिलि अनिल चलत जब तपतु सकल बन ।
उठति विसम विस ज्वाल जरत नभ उड़त विहगगन ॥
तट निकट बिटप झौंकें जहर झार भार नहिं सहि सकत ।
इहि भाँत अमित उतपात लखि जगत तात कूदन तकत ।४२॥

दो०—मुनि प्रसाद इक कदम तट रह्यौ तहाँ हरियात ।
तिहि चढिबै कौं मनु करिव सुभग साँवरे गात ॥ ४३ ॥

* चन्द्रकला०—

खेलहिं प्रभु नाँध्यौ कसु पटु बाँध्यौ हरि हर बर करि कदम चढे ।
ठोकनि भुजदंडनि लीला मंडनि अति उर उमगि उछाह बढे ॥

सात भगन जामै परैं गुरु लघु दीजै जोर ।
छंद सवैया जानि जै कवि चित चोर 'चकोर' ॥
सकल चरन बातिस कला दस बसु भुवन बिराम ।
चंद्रकला सम छंद यह 'चंद्रकला' छविधाम ॥

* अन्य नाम 'दुर्मिल' ।

कूदे जहँ प्यारे नंद दुलारे चलि पहुँचे अहि भवन तहाँ।
आवत बनमाली जाने काली लखि लखि खल उर रोस महाँ॥४४॥

दो०—जा आगम चाहत सदा ब्रह्मादिक हिय ध्यान।
सो प्रभु आवत सदन में रिस करि अहि अज्जान॥ ४५॥

भुजंग प्रयात०—

उठ्यौ कोह काली कराली सुआयौ।
फनी फुंक फुंकार हुंकार धायौ॥
उमंडे घुमंडे घनै सीस छाये।
घटाटोप ह्वैकैं मनो मेघ आये॥ ४६॥
लसै तेज आरक्तता नैन बाढे।
मनो अग्नि के कुंड ते ताइ काढे॥
तहाँ तर्किकैं उग्रता वक्त्र बायौ।
किधौं भूरि भंडार भैकौ बतायौ॥ ४७॥
कढी बज्र की कील सी काल डाढैं।
बसै मीचु तामें हसैं नीच गाढैं॥
चले जोर जीहा महा दुःख दानी।
किधौं म्यान ते काल खैंची कृपानी॥ ४८॥
भरे स्वाँस छाँडे खरे रोस राती।
† किधौं सूर के पुत्र की कोह कानी।
छुटे ज्वाल विसजाल की झार झूकैं।
चहूँ ओर दिग्दाह सौं ब्रच्छ सूकैं॥ ४९॥
रिसै आनिकैं घ्रान के रन्ध्र बाजैं।
किधौं काल तन्त्रावली ताल साजैं॥
मदोन्मत्त ह्वै युद्ध की रोपि पाली।
न जाने परब्रह्म ऐसौ कुचाली॥ ५०॥

---

† इन चरणों का अन्तिम अनुप्रास अशुद्ध है।

चल्यौ सीघ्रता साधिकैं स्याम नेरे।
लरथौ आइकैं अंग सों अंग भेरे॥
डस्यौ दन्त जे दुष्ट हैं पुष्ट वाके।
गिरै भूमि ह्वै भंग निर्मूल ताके॥ ५१॥
नहीं लाल ने रोसु तापै बिचारथौ।
कृपा आनिकै चित्त में ख्याल धारथौ॥
कढे सर्प लै संग में रंग प्यारे।
हये पाप ताके भये कर्म भारे॥ ५२॥
लग्यौ अंग ताके महाभाग्य काली।
सदा जाहि ध्यावैं स्वयंभू कपाली॥
जिही अंग कौं ध्यान में धारि साधैं।
जिही अंग कौं जोग बाँधे समाधैं॥ ५३॥
जिही अंग कौं बंदि कै नेति गावैं।
जिही अंग कौं जे तपी कष्ट पावैं॥
तिही अंग में लागि अज्जान तातौ।
हठी तिर्जजोनी बिसै मोह मातौ॥ ५४॥
तिही नाग लै अम्बु में लाल लोरैं।
उठीं लोल कल्लोलिनी की हिलोरैं॥
सखा संग के देखि कैं आँसु ढारैं।
ग्रसे लाल कौं ब्याल ने यौं पुकारैं॥ ५५॥
जुरे धेनु के ब्रन्द संघट्ट आवैं।
करैं नाद कौं फेरि हुंकारि धावैं।
मृगी आदि पच्छी भये सोककारी।
लखैं जीव संसार के बेसुखारी॥ ५६॥

दो०—कारौ नीर कलिन्दजा कारौ अंग भुजंग।
कारे सुन्दर स्याम घन भलौ बन्यौ यह संग॥ ५७॥

*विजय०—

देखि यहाँ उतपात तहाँ ब्रजनंद जहाँ उरमें दुख ल्याइकैं ।
राम बिना बन स्याम गये छविधाम कहाँ फिरि हैं भय पाइकैं ॥
सो सुनि गोपबधू जसुधा फिरि रोहिनि ग्वाल उठे अकुलाइकैं ।
संक भरे सब धाइ परे कब देखिबी मोहन मूरति जाइकैं ॥ ५८ ॥

दो०—धुज जव अब्ज गदादि तहँ मत्स्य धनुष की रेख ।
इन चिन्हन चिन्हित धरा चले सकल अवरेख ॥ ५९ ॥

पद्धटिका०—चलि गये सकल रविजा सुतीर ।
अहि संग स्याम तहँ हरन पीर ॥
झुकि रह्यौ मुकट मंजुल अमोल ।
कच बिथरि श्रवन कुंडल बिलोल ॥ ६० ॥
सुभ बन्नमाल उरझी दिखाइ ।
कटि कस्यौ पीत पटदृढ सुभाइ ॥
सब अंग नाग लपट्यौ प्रचंड ।
जनु सघन घटा मिलि घन घुमंड ॥ ६१ ॥
फुंकरि ससातु अहि दुष्ट घोर ।
स्वाँसानि जहर जल जरतु जोर ॥
तहँ गरल झार झहरात सोइ ।
करि हाइ भगै समुहाइ कोइ ॥ ६२ ॥
यह दसा देखि जसुधा मलीन ।
करि रुदन हृदय ताडन सुकीन ॥
सब गोप रहे कैसे डराइ ।
नहिं लेत धाइ लालन छुड़ाइ ॥ ६३ ॥

सात भगन जामे परैं अन्त रगन सुख धाम ।
'बिजय' सबैया जानिये छंदु छबीलो नाम ॥

* अन्य छंदोर्णवादि ग्रन्थों में भगण का कोई नियम नहीं । हाँ, रगण होना जरूरी है ।

इमि व्याकुल ह्वै चलि धसीं नीर।
तहँ धाइ धरी बलवीर धीर ॥
फिरि नंद चले जमुना सम्हाइ।
बलिदेव रोकियौ करि उपाइ ॥ ६४ ॥

पितु करत कहा यह करि अयान।
तुम जानत नहिं सुत के सयान ॥
ब्रज नारि साँस लेतीं हहाइ।
सब ग्वाल गोप सिगरे सँसाइ ॥ ६५ ॥

सुर उच्च राम्हतीं धेनुजाल।
छिति परे मूर्छि गोपाल बाल ॥
चढि चढि बिमान सुर ब्यौम छाइ।
जकि रहे देखि तहँ चौंकि खाइ ॥ ६६ ॥

नर नारि मोह पीडा अधीन।
जल तें बिहाति ज्यों बिकल मीन ॥
तहँ राम कीन्ह सब कौं प्रबोध।
जिन हरिगुन जानै सोध सोध ॥ ६७ ॥

जगनाह सकल जन दुखिय देखि।
मन मोहिं लगे इनके बिसेखि ॥
झहराइ अंग डार्‍यौ फनिन्द।
बल तोर जोर छूटे गुबिन्द ॥ ६८ ॥

फिरि झपटि चढ़े फन पकरि हाथ।
दै भार भरत गति अमित नाथ ॥
धरि अधर बैन सुर उच्च नाँधि।
त्रैलोक मोहि मन लियौ बाँधि ॥ ६९ ॥

सिर डुलति चन्द्रिका रुरित माल।
कुंडलनि गंड मंडत रसाल ॥

जुरि गंध्रप आये समय जान ।
सुरबधू अपछरा करहिं गान ॥ ७० ॥
सुर भरहिं तार दै दै उचार ।
बीनादि जंत्र बाजैं अपार ॥
प्रभु तजत उरग के नमित सीस ।
जे उन्नत तिन पर नचत ईस ॥ ७१ ॥

छप्पय—निर्तत नंद किसोर जोर पगतल हनि फन फन ।
गावत अम्बर चढ़े अमर किन्नर गंध्रप गन ॥
फिरि भरतालनि अनक फनिक फिरि फेनहिं डारतु ।
बमतु रुधिर मुख धार भारनिहि अंग सम्हारतु ॥
गति सबल अबल स्वाँसानि बल हहरि सुहिय लहरातु घट ।
लखि बिकल ब्यालकाली सिथिल तब आई अबला निकट ॥७२॥

द्वितीय त्रिभंगी—

पति गति लखि करि तिय दुख करि करि अहि पतिनीह समाजै जुरिकैं भ्राजैं तन लाजैं। तहँ हरि बरि करि उर धरि धरि करि हरि पर जाइ सुराजैं नमिता साजैं प्रिय काजैं। गर गहवर करि द्रग जल भरि करि बिनय करैं कर जोरैं चहुँ ओरैं जे चित चोरैं॥ यह बिधि धरि करि अति अवगुन करि रिस करिकैं बर जोरैं मदकें भोरैं मति थोरैं ॥ ७३ ॥

पंच सुदुजबर कीजिये भगन तगन तह लेव ।
यगन भमन दे कर्न पुनि दुतिय त्रिभंगी येव ॥

* इस लक्षणवाला कोई त्रिभंगी छंद नहीं है। इसके अतिरिक्त इस लक्षण के अनुसार इस का उदाहरण भी नहीं है। मालूम होता है लिपिकार के प्रमाद से लक्षण अशुद्ध होगया है । अन्यथा त्रिभंगी दंडक का उदाहरण शुद्ध है। इसका लक्षण इस प्रकार है न, न, न, न, न, न, स, स, भ, म, स, ग ।

दो०—काकोदर कलही कुटिल कुमति कृतघ्नी कूर।
तुम्हरी रिस लाइक नहीं तुम जग जीवनमूर ॥ ७४ ॥

तोटक०—नहिं जानिव जो पर ब्रह्म महाँ।
बिस अंध बिसैं मदमत्त तहाँ ॥
यह तिर्जग जोनि अधर्म बसै।
रति कोह कलेबर मोह लसै ॥ ७५ ॥
अहि पाप पयोनिधि है जु भरौ।
प्रभु भूल अनेक न चित्त धरौ।
उपजी तुमतै यह सृष्टि तबै।
जग उत्तम मद्धिम दुष्ट सबै ॥ ७६ ॥
तुमहीं फिरि पालन पैज धरी।
तुमहीं बिच लीन जु होत हरी ॥
तुमहीं गुन दोस बिचारि रचे।
जिहि लायक जो तिहिं माँझि सचे ॥ ७७ ॥
इहि सीस परे चरनाम्बुज जे।
सिव सर्ब सुरादिक ध्यावत जे ॥
जनु जानि कृपा करि दंडु दयौ।
सब औगुन गर्व गरूर गयौ ॥ ७८ ॥
सुभ कर्मनि पावन पुण्य पग्यौ।
अब नाग यहाँ यह भाग जग्यौ ॥
बल छीन मलीन सुदीन बिभो।
अपनौ कर छाँडहु याहि प्रभो ॥ ७९ ॥

दो०—कमलोदर से चरनतल धरे अधम अहिसीस।
अब याकी रच्छा करहु सुनहु जगत के ईस ॥ ८० ॥

तोमर०—तिय प्रेम सौं रचि बैंन मुसक्याइ राजिव नैन।
करुना उठी अति अंग दिय छाँडि नाग अभंग ॥८१॥

करि आइ कालिय प्रीति गति मंद मंद बिनीति।
प्रभु पाँइ मेले सीस करिये कृपा जगदीस ॥८२॥
रिस सर्प में अधिकाइ तमजोनि दुष्ट सुभाइ।
मद मोह कोह प्रबन्ध फिरि है बिरज बिस अंध ॥८३॥
इन में सदा मन दीन तव भक्ति में नहिं लीन।
तुम दीनबंधु दयाल मुहि रच्छ रच्छ कृपाल ॥८४॥
जनु जानि आरतवन्त तिहि राखिये भगवन्त।
इहि भाँति अस्तुति ठानि प्रभुकौं हृदै महँ आनि ॥८५॥

दो०—जिन चरनन सौं सुर सदा करैं रहत अनुराग।
ते मेरे सिर पर धरे मौसो को बड भाग ॥८६॥

हरिगीतिका०—

सुखसदन मोहन मदन मूरति बदन ससि मुसक्याइ कैं।
करुना अगार अपार सोभा दया उर में ल्याइ कैं॥
दुखहरन उर सीतल करन प्रभु बचन कहत सुनाइ कैं।
अहिराज सकल समाज लै तुम बसहु जलनिधि जाइ कैं॥८७॥
तहँ रहहु निर्भय हृदय आनँद मानि कैं मौकों भजौ।
तुव दुष्ट जोनि सुभाइ चंचल ज्ञान करि कछुवक तजौ॥
मम चरन चिन्हित फन तिहारे बिहगपति यह जानि कैं।
करि कैं सुहृदता हितु करै मन मित्रता कौं मानि कैं॥ ८८॥
इहि सुनहिं जो संबाद नर कबहूँ न पीड़ा तापि है।
फिरि ताहि कठिन भुजंग की भय अंग में नहिं व्यापि है॥
यह दई सिच्छा मानि पन्नग सीस धरि कैं सो लई।
प्रभु प्रकृति पुरुष पुरान पूरन जानि पूजा सोहई॥ ८९ ॥
तहँ रतन भूषन सुमन सौरभ दिव्य सेज बनाइ कैं।
चलि नागतिय अनुराग सौं पूजा करी प्रभु जाइ कैं॥
उपचार सोडस भाइ करि मन काइ प्रेम प्रकासि कैं।
परि पाँइ सहित कुटम्ब लै प्रभु चरन आसा राखि कैं॥ ९० ॥

फिरि दइय दच्छि प्रदच्छिना करि बंदना सुख पाइ कैं।
परिबार सब लै कढ्यौ काली सिन्धु कौं समुहाइ कैं॥
तहँ रम्य रमनक दीप कौं करि गवन अहि पहुँच्यौं जहाँ।
जगभवन आइसु मानि करि रचि भवन सुख बिलस्यौ तहाँ॥६१॥

इत जमुन दह तैं कढे सुन्दर स्याम घन छवि छाजहीं।
नव रतन भूषन तन अलंकृत किरन जगमग राजहीं॥
मन संग हिय अगिवानि करि जननी लये तट आइ कैं।
पय श्रवत आँसू ढरत अंक गुबिन्द भैंटे धाइ कैं॥ ६२॥

लखि अतुल छवि प्यारे ललन उर उरकि लागी रोहिनी।
तन राम अरु घनस्याम मिलि तहँ बढी सुखमा सोहिनी॥
गहवर गरे उर कहँ भरे कहि नंद कछुव न आवहीं।
धरि अंक सुत कौं अंग लागे रंक ज्यों निधि पावहीं॥ ६३॥

ब्रजबधू ब्रज जन सखन मिलि जाइ प्रभु कौं भैंटियौ।
जनु म्रतक देही प्रान पाये दुःख इहि बिधि मैंटियौ॥
सुर मुनि नरन आनन्द दीन्हौ त्रत्तु फन पर धारि कैं।
जमुना उदक निर्मल करयौ चत्तु-श्रवाहि निकारि कैं॥ ६४॥

दो०—सुख पयोधि पय प्रेम कौ उमगि चल्यौ चहुँ ओर।
प्रीति लहरि लखि लखि बढतु राकारमन किसोर॥ ६५॥

सो०—नंद सुमति मति धीर संध्या आगम जानि कैं।
नर नारी आभीर बसे सकल लै जमुन तट॥ ६६॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द वृन्द दायिन्यां शरच्चन्द्र चारु मरीचिकायां श्रीकृष्णचन्द्रचन्द्रिकायां द्विजगुमान विरचितायां धेनुकवध, कालीमद विभंजनो नाम नवमः प्रकाशः समाप्तः।

दशम प्रकाश

सो०—बर्नन दसम प्रकास, काली ज्यों रमनक तज्यो ।
ग्रीसम रितु परकास, बध प्रलंब दावागि पिय ।। १ ।।

संयुता०—न्रप पूछियौ सुख पायजू कहिये कथा मुनिरायजू ।
केहि हेत काली आइकैं जमुना रह्यौ तहँ पाइकैं ।। २ ।।
उरगार की भय सौं चरयौ अपराधु का तिहिने करयौ ।
तुम में बसै जगजाल की सरबज्ञता त्रैकाल की ।। ३ ।।

दो०—रमनक दीप रहे सदा, कहु मुनिबर संबाद ।
महा प्रबल नागाधि तजि, आयौ कौन बिसाद ।। ४ ।।

रूपमाला०—भूमि पाल सुनौ सबै जिहि हेत काली आइ ।
बास कीन्ह कलिन्दजा जल में जहाँ भय पाइ ।।
बिस्नु बाहन बिस्नु के प्रिय बिस्नु रूप समान ।
तेजसी अति ही जसी बलवान पौरखवान ।। ५ ।।

पूरब में सब कहि दये छंद जाति निरधार ।
अब तिन में के कहतु हौं मन इच्छित प्रस्तार ।।

को कहै तिनकौ पराक्रम सूर सिन्धु अपार ।
भक्त रक्षक सत्रु भक्षक को करै उपचार ॥
बैनतेय सदा चहैं सब सर्प कुल कौ नास ।
होत व्याकुल दीन ह्वै तहँ व्याल जाल उदास ॥ ६ ॥

मंत्र कौं जुरि बैठि कैं ठहराइयौ इहि रीति ।
मास मास हि देहु जो बलि तो बचौ यह नीति ॥
पन्नगासन सौं कही तिनि मानियौ करि प्रीति ।
गेह आनँद में बसे बिसरी तिन्हें भ्रम भीति ॥ ७ ॥

दो०—कद्रू सुत काली उरग, गरुड निरादर कीन्ह ।
जब आई तिहि वोसरी बलि खाई नहिं दीन्ह ॥ ८ ॥

मोतीदाम०—सुनी यह बात जबै खगराज ।
महाजवमान चले गल गाज ।
लखे जहँ आवत व्याल उमंडि ।
रह्यौ रन रोस तहाँ रस मंडि ॥ ९ ॥
करे सिर आयुत उन्नत जोस ।
प्रचंड फनीफन फुंकरि रोस ।
भरी बिस ज्वालनि साँस सँसात ।
दवागिनि झार मनौ झहरात ॥ १० ॥
चल्यौ सरराइ करी तिन्ह चोट ।
बचे खग नाइक पक्षनि वोट ।
कर्यौ उर कोप डस्यौ फिरि धाइ ।
नहीं बिस व्याप कछू भ्रम खाइ ॥ ११ ॥
तहाँ खग नाइक पक्ष उभार ।
कस्यौ तिहि घात न गात सम्हार ।
उठी उर पीर गयौ अहि ऐंठि ।
भग्यौ भय मानि कलिन्दिय पैंठि ॥ १२ ॥

दो०—जिन पत्तनि झंझानिसौं डगत सुगरुव गिरिन्द ।
तिन पत्तनि की झौंक कौं किमि सहि सकत फनिन्द ॥१३॥

सो०—सुनि मुनि ज्ञान निकेत कहि त्रप जमुना जल बिसैं ।
आसीबिस किहि हेत बच्यौ बली बिहगेन्द्रसौं ॥ १४ ॥

दोधक०—पूछत प्रश्न त्रपाल बखानौ ।
एक समै बिनता सुत जानौ ॥
जाइ कलिन्दिय के दह माहीं ।
भत्तन मच्छ कस्यौ तिन ताहीं ॥ १५ ॥

दो०—सौरभ रिखि आश्रम जहाँ बरज्यौ तिन नहिं मानि ।
छुधावन्त अतिसय गरुड करी न मुनि की कानि ॥ १६ ॥

तारक०—सब मीन रहे बिन मत्स्य दुखारी ।
मुनि लागि दया तिन वोर निहारी ।
अब होहु सुखी बिचरौ जलचारी ।
कबहूँ नहिं आइ सकै उरगारी ॥ १७ ॥

दो०—मम हटके पर आइ है जो खगेस इहि बार ।
रहित प्रान ताही घरी होइ भस्म जरि छार ॥ १८ ॥

सो०—यह सुनि गरुड न जाइ नाग न कोऊ जानहीं ।
काली सोधहिं पाइ भागि तहाँ याते बच्यौ ॥ १९ ॥

मधुभार०—सुनिलेव गाथ, अब भूमि नाथ ।
जमुना सुनीर, बसिजे अहीर ॥ २० ॥
सब गोप ग्वाल, मिलि धेनु जाल ।
अधरात होत, दव को उदोत ॥ २१ ॥

छप्प०—ऊक फूटि दस दिसनि छूटि झारनि पर झारनि ।
धूम घूमि नभ चढिव धाइ धारनि पर धारनि ॥
म्रग खेचर जन जरत सरब खर्भर भय भग्गेय ।

सोवत ब्रज जन सकल सोर सुनत न उठि जग्गेय।
लखि ज्वालमाल चहुँघा फिरिव 'हूह कूह' किन्हिय नरन।
घनस्याम राम रच्छा करहु दहन दाह पीडा हरन॥ २२॥

दो०—आरतवन्त बिचारि नर बोधत नंद किसोर।
नैन हेरि सीतल करी दावागिनि चहुँ ओर॥ २३॥

सो०—धनि धनि नंदकुमार नर नारी अस्तुति करहिं।
दुसह दवागिनि झार जरत सकल जन राखियौ॥ २४॥

स्रग्विणी०—भोर के होत ही नंद चाले जहाँ।
गोप गोपीन के ब्रन्द सोहैं तहाँ॥
देव पूजा करी धाम में आनि कैं।
दान कौं देत भूदेव कौं मानि कैं॥ २५॥
सक्र की राजसी रंकसी लेखि कै।
नंद के गेह की सिद्धि कौं देखि कै॥
फेरि कैं प्रात चाले सुउद्यान कौं।
राम श्री स्याम उच्चारि कैं गान कौं॥ २६॥

दो०—संग सखा जमुना पुलिन पहुँचे नंद किसोर।
ग्रीषम रितुबर्त्ती प्रबल तरनि पवन के जोर॥ २७॥

चंचरी०—आइ ग्रीषम तेज तीषन भानु भीषम देखिये।
मंडि भू नभ खंड मंडल कौं तच्यौ अवरेखिये॥
तप्त बेग प्रचण्ड ह्वै चलि सो प्रभंजन आइ कैं।
रुंधि रुंधि दिसानि पूरत धूर धारनि धाइ कैं॥ २८॥
सूरवोजन की जलाकनि जक्त कौ उर तापही।
बासु जे ब्रज में करहिं तिन कौं प्रतापु न ब्यापही।
कुंज कुंज कदम्ब भूरुह ब्रंद बेलिनि सौं मिलैं।
फूल भौंरनि भौर भौंरत दौरि भौंरन सौं हिलैं॥ २९॥
चंड अंसन कौं प्रबेस न ह्वै सकै तिन में तहाँ।

मित्रजाजल की हिलोरनि के परैं कनिका जहाँ ॥
गंधबाहक पौन जो मधु डारि कंजन कोस कौं।
देखि कैं मिटि जातु दग्ध ह्वै तृषादित जोस कौं ॥ ३० ॥
हंस बंस करैं कलोलनि कोकिला कल कौं करैं।
स्वच्छ पच्छिय लच्छ लच्छन बोलि कैं मन कौं हरैं ॥
मोदकारी है सदा बन पुष्प सौरभ कौं भरैं।
सक्र कौ बन होतु का वह नाम नंदन कौं धरैं ॥ ३१ ॥

दो०—उमडे द्रुम झुमडे लतनि सुमडे सुमन अपार।
निबिड छाँह सीतल जहाँ बिहरत नंद कुमार ॥ ३२ ॥

मनहंस०—तहँ खेल खेलत राम सुन्दर स्याम सौ।
सँग ग्वाल बाल बिनोद सोभा धाम सौ ॥
सिर मोरपच्छ बनाइ खोंसत संगमें।
गिरि धातु गात लगाइ राजत रंगमें ॥ ३३ ॥
उरमाल स्वच्छ बिसाल गुंजनि की बनी।
कुसमालि सुष्ठ सुगन्ध सोहति है घनी ॥
तहँ निर्त्त कर्त अनेक लीलनि कौं धरैं।
गति भेदबर्त्ति अपार तालनि कौं भरैं ॥ ३४ ॥
करि गान तान उचारि मोहन मोहियौ।
सुर बीन बेनु बजाइ सोहन सोहियौ ॥
फिरि बाहु जुद्ध बिसाल आपुस में रचैं।
उतसर्प कूदन बाहुक्षेपनता सचैं ॥ ३५ ॥
फल फूल पत्र नवीन कोमल हेरिकैं।
तहँ जुद्ध उद्धतता करैं हँसि मेलिकैं ॥
धुनि फेरि जो म्रग आदि पच्छिन की करैं।
सब गोप ग्वाल उमंगि आनँद सौं भरैं ॥ ३६ ॥

दो०—अमित भावलीला करत अमित चरित्र बिहार।
अमित ख्याल नाँधत तहाँ राम क्रस्न सुकुमार ॥ ३७ ॥

मधुभार०—असुर राज प्रलंब आइव ।
सखा रूप अनूप ठाइव ॥
दनुज कुल सिरताज जानहुँ ।
कंस न्रप कौ मित्र मानहुँ ॥ ३८ ॥
आइ मिलि खल खेल खेलतु ।
बात नहिं मनमें गदेलतु ॥
अखिल जुग जिहिनै रमायव ।
असुर तासौं छल बनायव ॥ ३९ ॥
जगतपति जिहि जानि लीन्हिव ।
तासु हतन उपाइ कीन्हिव ॥
सखा सिगरे निकट बोलत ।
स्याम तिनसों बचन खोलत ॥ ४० ॥
सुनँहु सिसु सब खेल छाँडहु ।
हौं कहतु सोइ खेल माँडहु ॥
एक वोर भये कन्हाइय ।
एक वोर जु राम भाइय ॥ ४१ ॥
सखा प्रभु सबरे गनावतु ।
जुगल जुग जोरिन लगावतु ॥
आप श्रीरामहि बुलावतु ।
राम अरु असुरहिं मिलावतु ॥ ४२ ॥
इहि प्रकार लगाइ मोहन ।
खेल तिहि थल मच्यौ सोहन ॥
हेल बट भांडीर कीन्हीं ।
सकल सखन सुनाइ दीन्हीं ॥ ४३ ॥
* कहत प्रभु जो खेल हारहि ।
आपु बरनी कंध धारहि ॥ ४४ ॥

---

* इस के दो चरण मूल पुस्तक में नहीं मिलते ।

दो०—खेल रंग राचे जहाँ ग्वाल बाल सुख धाम।
हारे सुन्दर स्याम घन जीते श्री बलराम ॥ ४५ ॥

पद्धटिका०—जगनाथ जगत पालन उठाइ।
लिय श्रीदामा कंधहि चढाइ ॥
जे गोप हार जित बार लेत।
बट तट तकि तिन्हहिं उतारि देत ॥ ४६ ॥

हलधरहिं असुर लीनहु चढाइ।
गय सीम छाँडि गति अति बढाइ ॥
पर्वत गिरिन्द सम गरुव राम।
भय मंद बेग खल अधम धाम ॥ ४७ ॥

निज रूप प्रगट कीन्हों सुरारि।
सुर बिकल होत ताकौं निहारि ॥
चूरा किरीट कुंडल बिसाल।
मनिजटित बिभूषन किरनजाल ॥ ४८ ॥

करि कुपित द्रष्टि हेरतु कराल।
जिमि ताम्र तप्र लोचन सुलाल ॥
भ्रुव कुटिल सिखर डाढै दिखाइ।
लखि धीर्जवान कौ धीर्ज जाइ ॥ ४९ ॥

बलभद्र कंध पर यौं लसन्त।
ससि तडित घटा जनु छबि अनन्त ॥
रोहिनि कुमार नहिं छुभित गात।
प्रभु बल अनन्त सठ कितिक बात ॥ ५० ॥

बलबीर धीर मन में सुजानि।
अब हनहु दुष्ट यह अधम खानि ॥
तन बढिव क्रोध मुख चढिव धाइ।
रबि बाल किरनि जनु झलझलाइ ॥ ५१ ॥

छप्प०—अरुन नैन ह्वै गये साँस छाँडत रिस रत्तिय ।
आय बरन आवेस बीर रस महँ मन मत्तिय ॥
महाबाहु बलभद्र अमित बल बिक्रम धारिय ।
मुष्ट तौलि तिहि हनिय कोटि बज्रहु ते भारिय ॥
खल घात होत आघात इमि जनु पर्वत पर पवि परिव ।
सिरु फूटि रुधिरधारा श्रवत चीतकार करि महि परिव ॥५२॥

दो०—कहुँ कुंडल मनि मुकुट मनि कहूँ विभूषन माल ।
राम बिरोधै फल मिल्यौ पर्यौ म्रतक बेहाल ॥ ५३ ॥

मोदक०—मोहन संग सखा सिगरे तहँ ।
भेटत हैं बलभद्र बली कहँ ।
मानि अचिर्ज तहाँ सब देखत ।
काल गिलै उबिलै बलि लेखत ॥ ५४ ॥
पूजत बाहु भरी बल पूरन ।
जासु प्रवाह भयौ अरि चूरन ।
जानि प्रलम्ब बध्यौ सुर हर्षत ।
अंजुलि लै कुसुमावलि वर्षत ॥ ५५ ॥

दो०—इन्द्रादिक सुरव्योम में अस्तुति करत उचार ।
जुगल बंधु मिलि सखन सँग तिहि थल करत बिहार ॥५६॥

सो०—प्रभु लीला आसक्त सखन सहित तहँ प्रेममय ।
गौवैं व्रन अनुरक्त चरत चरत आगैं गईं ॥ ५७ ॥

नीला छंद०—गोपधन चौंपि गयौ व्रन के चलि और बनै ।
भूलि रह्यौ तहँ देखि परैं नहिं ब्रच्छ घनै ।
खेलहिं छाँड़ि ससंकित अंकित ग्वाल तहाँ ।
हेरत द्रष्टि पसार न देखत धेनु जहाँ ॥ ५८ ॥
धाइ परै सिगरे बन ढूँढत सोचु करैं ।
गोपद ढूँढत जात चले मगलौं बिखरैं ॥

लागि दवागिनि घेरि व्रखाजल की जु सबै ।
दूरहि तैं तब देखत गोधन ग्रंद जबै ॥ ५६ ॥

दो०—सजल जलद धुनि टेरियौ मोहन गौवैं आइ ।
श्रवन पुच्छ उन्नत करैं हुकरि चलीं रँभाइ ॥ ६० ॥

नाराच०—दसौं दिसानि पै कृसानु झार झार धाइकैं ।
प्रचंड मंडि व्योम लौं सिखी सिखा बढाइकैं ॥
झँझाइ कैं झकोर झोक उग्र ऊक फूटहीं ।
महाभयान भीम रूप सों भभूक छूटहीं ॥ ६१ ॥
सधूम देखिये अकास धुंध रुंध जाइकैं ।
दिसानि द्वार दाबियौ सगाढ बाढ छाइकैं ॥
सँसातु पौन साँइ माँइ सर्बरातु धावहीं ।
प्रकोप भौंरि भर्भरातु झर्झरातु आवहीं ॥ ६२ ॥
त्रनादि चट चटात पट पटात बेनु जाल सौं ।
चिरादि चर्चरात तर्तरात हैं तमाल सौं ॥
फलादि फूटि टूटि झूमि भूमि में परैं तहाँ ।
उड़ैं फुलिङ्ग फैलि गैल घेरिकैं फिरैं महाँ ॥ ६३ ॥
समूल भस्म भूत होत अग्नि के अकूत सौं ।
अंगार उल्लकादि दारु होत तेज तूत सौं ।
चिहारि चीह घुर्घुरात हैं बराह दाह सौं ।
हुँकारि हूँक दै कपीस कूद हीं उछाह सौं ॥ ६४ ॥
गँगाइ व्याघ्र साँस रूँध धूम्र जोर सौं उठैं ।
उछार लेत झार सौं बिहाल भूमि पै लुठैं ॥
हकारि रिच्छ खर्भराइ भागि सो दुराइ कैं ।
सकाइ सूखि साँस ल ससा चलै सँसाइ कैं ॥ ६५ ॥
हहाइकै मृगी मृगानि चौक भूलिकैं गये ।
उफाल फाल बाँधि कैं सुनैन मूँदि कैं लये ॥

कढे सुदौर दर्बराइ हर्बराइ भागि कैं ।
बिहंग भर्भराइ कैं चले अकास लागि कैं ॥ ६६ ॥
निहारि धेनु तर्फैं सँघट्ट बाँधि घेरि कैं ।
हुँकार दै रँभा उठैं सुनंद नंद हेरि कैं ॥
करैं पुकार ग्वाल बाल हाइ हाइ सोचतैं ।
जु राखु राखु नंद लाल या दवागि जोसतैं ॥ ६७ ॥

छ०—अति सरोस तहँ अगिनि ककुभ कोसन कहँ पूरत ।
त्रन बन घन संघात जात तरबर कहँ चूरत ॥
झपटत लपट लपेट दीह दारुन दव धावत ।
उठतु भयंकर भहरि अवनि अंबर कहँ तावत ॥
जगजीव बिकल खरभर परे गोप पुकारत हैं सरन ।
जगजानि कान्ह रच्छा करहु त्राहि त्राहि करुना करन ॥ ६८ ॥

दो०—हरि हँसि कहिव सखानि सौं मूँदहु नैन असोस ।
द्रग मूदत प्रभु पीलयौ दुसह दवागिनि जोस ॥ ६९ ॥

सो०—चंदन चंद समान अनल तेज सीतल भयौ ।
जन हित कीन्हौं पान को प्रभु दीन दयाल सौ ॥ ७० ॥

प्लवंगम०—ता छिन नैन उघारि सखा सब देखहीं ।
खेलत पूरब खेल तहीं चलि लेखहीं ।
सो थल जाइ निहारि रहे चकचौंधि हैं ।
मोहन जानि प्रभाउ करे सब चौंधि हैं ॥ ७१ ॥
अस्तुति गोप उचारत जानत भेव हैं ।
सुन्दर स्याम सरीर बड़े मुनि देव हैं ।
को प्रभु ऐसो और दवागिनि पीलयौ ।
गौवन ग्वाल बचाइ न कावहि छीगयौ ॥ ७२ ॥
साँझ भये सब गोपनि गौवन हेरिकैं ।
मंदिर जात सम्हार सबै धन हेरिकैं ।

स्याम सुबैन बजाइ चले तहँ रंग मैं।
गावत ग्वाल अनन्द भरे सब संग मैं ॥ ७३ ॥

दो०—प्रभु मुख पंकज स्वेद मधु गोरज लगिव पराग।
तिय मन मधुकर रमत तहँ पियत उमगि अनुराग ॥७४॥

सो०—आये घर घनस्याम महाबली बलभद्र संग।
सखन कही निज धाम बध प्रलंब दावाग्नि की ॥ ७५ ॥

दो०—मानि अचिर्ज रहे सबै फिरि आयौ उर ज्ञान।
राम क्रस्न परब्रह्म लखि करन लगे गुन गान ॥ ७६ ॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द वृन्द दायिन्यां शरच्चन्द्र चारु मरीचिकायां श्रीकृष्णाचन्द्रचन्द्रिकायां द्विजगुमान विरचितायां प्रलंबबध, दावाग्नि पान वर्णनो नाम। दशमः प्रकाशः समाप्तः।

———

एकादश प्रकाश

* दो०—एकादसैं प्रकास में बरखा बिबिध बिलास।
सुनि सौनक फिरि बरनिहैं सुक मुनि सरद प्रकास ॥ १ ॥
सो०—आयौ प्राब्रट काल सब जीवनि की जीवका।
अमुदित भये मराल मुदित मोर नर्त्तत नवल ॥ २ ॥

ललित पद—
दिनमनि बिम्ब व्योम आछादित सघन घननि में देखौ।
मानहुँ ब्रह्म छप्यौ माया में यह उर अन्तर लेखौ।
बिसद भेस परिबेस रेख ससि गेरि गरद फिरि आई।
मानहु ईस जीव जुग राजत इहि प्रकार छवि छाई ॥३॥
अति चंचल चपला दुरि दमकत सघन घटा पट माहीं।
†जिमि बिसइनि की बिसय बासना छुद्र बुद्धि थिर नाहीं।

---

* इस प्रकाश का अधिकांश वर्णन गुसाईं जी के 'रामचरित मानस' से मिलता है। वस्तुतः गुसाईं जी ने यह वर्णन श्रीमद्भागवत से लिया है। इसलिये गुमानी कवि और गुसाईं जी का वर्णन एक-सा है।

† दामिनि दमकि रही घन माहीं। खल की प्रीति यथा थिर नाहीं ॥

दोनों कवियों के पद्य श्रीमद्भागवत के निम्न पद्य से मिलते हैं:—

लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः।
स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥ (भाग० द० अ २०)

भ्रमत फिरत मारुत के प्रेरे निबिड मेघ नभ ऐसे।
दुष्ट हृदय कहुँ ज्ञान प्रकासतु थिर न रहत छिन जैसे ॥४॥
*लखि न परत तारन कौ मंडल बिमल दृष्टि बिच माहीं।
जिमि सुभ धर्म कर्म सब दबिगे पाप पटल परछाहीं।
† रबि दबि कबहुँ घननि में देखौ कबहुँ उघरि छन माहीं।
जिमि काचौ जोगी इन्द्रिन बस मनु चंचल थिर नाहीं ॥५॥
‡ घर्घरात जलहीन मेघ जे फिरि नभ माँझ बिलाहीं।
जिमि बिबाद बादी आरोपत कोटिन तर्क ब्रथाहीं।
रुरै भूमि गंभीर नाद करि बरखि जलद जल धारैं।
जिमि संतन को भयव समागम द्रवत प्रेम रस भारैं ॥६॥
बिन गुन इन्द्र धनुष उदित भौ नभ मंडल छबिधारी।
निर्गुन ब्रह्म गुननि जुत मानहुँ इमि उपमा अनुहारी।
§ फुटत श्रंग गिरि बिथा न मानत बूँद घात करि मानैं।
दुष्ट नरन के परुष बचन ज्यौं सज्जन उर नहि आनैं ॥७॥
उमडि उमंडि मंडि मैंढुकगन दस दिसि बोलत भारैं।
¶ जिमि रिखि सिष्य ब्रह्मवेत्ता जुरि वेद-ध्वनि उचारैं।

---

* हरित भूमि तृण संकुल, समुझि परै नहिं पन्थ।
जिमि पाखण्ड विवाद ते, लुप्त होहिं सद्ग्रन्थ ॥

† कबहुँ दिवस महँ निबिडतम, कबहूँ प्रगट पतंग।
उपजइ बिनसइ ज्ञान जिमि, पाय सुसंग कुसंग ॥

‡ यह कथन प्रकृति पर्य्यवेक्षण के प्रतिकूल है, क्योंकि वर्षा में जल-हीन बादल नहीं होते। कदाचित् कवि का तात्पर्य उन बादलों से होगा, जो घिर कर भी हवा से उड़ जाते हैं।

§ बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे ॥
इसी प्रकार—गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमानानविव्यथुः।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षजसेवया ॥ (भा० द० अ० २०)

¶ दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई। वेद पढ़ें जनु बटु समुदाई ॥

अति आतुर चातक जहँ बोलत स्वाति बूँद मति पागी।
जिमि जन हृदय भक्ति के आगे निसि दिन हरि रट लागी ॥८॥
जगमगातु जुग्गिननि जाल तहँ जुरि जुरि कै चहुँघाहीं।
* जिमि बंचक कुल रचे प्रपंचनि बिचरत हैं जगमाहीं।
आतप तपी धरनि भइ सीतल जलधर जल बरखावैं।
जिमि तप तप्यौ तपी संतोखित मनहुँ परम पद पावैं ॥९॥
त्रन अंकुर संकुलित भूमितल ललित कलित हरियाहीं।
जिमि सुकृतिन के पुन्य पुराकृत दिन प्रतिदिन अधिकाहीं।
हरित भूमि पर इन्द्रबधू छबि छत्रक दंड बिराजै।
जिमि नरनाह राजसी राजति सुंदर सुखमा साजै ॥१०॥
लुप्त पंथ त्रन सघन छये झुकि सूझि परत नहिं ऐसे।
जिमि सुनि महामोह नै दाध्यौ परम तत्त सुख जैसे।
उमडि उठे भरि रहे भूमितल कृसी किसान निराईं।
जिमि धरमज्ञ महत पुरिखन के परम सिद्धि सी छाईं ॥११॥
† छिति तल उमगि चले न रहे जल महाव्रष्टि धन कीन्हैं।
निज मत मती मनहुँ अबला जिमि चलति कुपथ पग दीन्हैं।
‡ निर्मल जल धाराधर बरसैं भूतल परसैं कैसे।
जैसे जीव देह में आवै मिलि मायाबस तैसे ॥१२॥
$ छोटी नदी बही जे खोटी उमगि प्रवाह जु कीन्हैं।
बिधि बस नीच पाइ ज्यौं विद्या चलतु न नमिता लीन्हैं।
¶ उमगि पूर भर पूर महानद मिलै सिन्धु कौं धाईं।
जैसे जीव परम पथगामी मिलि ईस्वर कौं जाईं ॥१३॥

---

* निशि तम घन खद्योत बिराजा। जिमि दम्भिन कर जुरा समाजा॥
† महा वृष्टि चलि फूट कियारी। जिमि स्वतंत्र भये बिगरहिं नारी॥
‡ भूमि परत भा डाभर पानी। जिमि जीवहिं माया लपटानी॥
$ क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई। जस थोरेहु धन खल बौराई॥
¶ सरिता जल जलनिधि महँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई॥

मिलि अगाध जल होत अमल ज्यौं फिरि अन्तर नहिं लेखौ ।
जिमि ईस्वर मिलि तन यह देही द्वैतभाव नहि देखौ ।
उद्‌भिज जीव बढ़े रितु आये जलथल हू अधिकाई ।
जिमि पापिनि के पाप करै धनु बढतु न थिर ठहराई ॥१४॥
* बन द्रुम सघन पत्र फल फूले सुमन गंध मन मोहैं ।
जिमि सुराज राजा रजधानी प्रजा सुखित अति सोहैं ।
† लखि न परति हंसनि की अवली इहि बरखा रितु पाई ।
जिमि निगमागम मारग मिटिगे कलि प्रगट्यौ जब आई ॥१५॥
‡ अर्क जवास पात सब झरिगे इहि बरखा अवरेखे ।
जिमि खल हृदय दुःख सों दाहै परसंपति के देखे ।
छिति तल पंक मची अति भारी चहूँ ओर करि हेरौ ।
जिमि मनसा कामादिक परसे भूलैं सबै निबेरौ ॥१६॥

सो०—रितु अनुसार बिहार, करत भये त्रिभुवन धनी ।
रचत बिनोद अपार, मिलि बलराम सखानि जुत ॥ १७ ॥

दो०—जैसे ज्ञान उदोत तैं, जातु तिमिर अग्यान ।
तैसे सरदागमन तैं, बरखा गत परवान ॥ १८ ॥

सो०—अमल इन्दु आकास, हंस बंस मन मुदित तहँ ।
प्रफुलित कमल प्रकास, खंजरीट बिचरन लगे ॥ १९ ॥

गीतिका०—यह सरद रितु आई सुहाई सुखद सुंदर देखिये ।
मन हरन रम्य बिनोदमय उज्जल गुननमय लेखिये ।
नभ अमल ससि निर्मल महा पूरन सुधारस सौं ठयौ ।
जनु संत हिय मन मोह गत उद्दोत हरि जस कौ भयौ ॥२०॥

---

* बिविध जन्तु संकुल महि भ्राजा । बढइ प्रजा जिमि पाइ सुराजा ॥

† देखियत चक्रवाक खग नाहीं । कलिहि पाइ जिमि धरम पराहीं ॥

‡ अर्क जबास पात बिन भयऊ । जिमि सुराज खल उद्यम गयऊ ॥

दिवि बिमल तारन की कतारैं छिटकि फैलैं हैं जहाँ।
जन सज्जननि के सुमनमन प्रभु बसत गुनगन हैं महाँ ॥
उठि सघन घन बरखा पटल लखि सरद में चकतालि जी।
जिमि संत दरसन परसतें निहपाप तन आभास जी ॥२१॥

बिन पंक छिति बीथी बिसद मनमोदु होतु निहारि कैं।
जिमि करिव इन्द्रिन दमन जोगी बिसय बासु बिदारिकैं ॥
सर अमल जल फूले कमल मधु पियत मधुकर लागिकैं।
जनु लेत ब्रह्मानंद सुख जोगीन्द्र मन अनुरागिकैं ॥ २२ ॥

रितु पाइ खंजन हंस सरबर चक्रवाक लसैं तहाँ।
धरमिष्ठ नृप जिमि राजधानी साधु जानि रमैं जहाँ ॥
जलचर बिचर गंभीर जल नहिं दुखित कोऊ देखिये।
धनवान मानहुँ वहु कुटुंबी सुखित जैसे पेखिये ॥२३॥

रवि तेजकर सरबरनि घटतनि जलनि जलचर हानिहीं।
जिमि आयु छीजति दिन हु दिन अज्ञान मूढ न जानहीं ॥
निरझर झरतु गिरि बरन तें जल चरतु छिति छहराइकैं।
जिमि भक्ति आवति हृदै में चलि प्रेम द्रव सुख पाइ कैं ॥२४॥

रट मिटी चातक त्रखा की लखि स्वाति बूँद अजोख कौं।
जिमि आइ प्रगट्यौ ज्ञान उर नर लहत तब सन्तोखकौं ॥
* जल धुंध बिगत दिसामई इमि धरिव सोभा सान कौं।
जिमि पाइ नर सतसंग कौं सब तजतु है अज्ञान कौं ॥२५॥

भरि अन्न सुचि संपन्न भूपर उदै सोभा है भलै।
जनु सुहृद नर परिपूर विद्या पाइ संपत नै चलै ॥
अति प्रबल सरदातप तपन निसि माँझ निसिकर में नस्यौ।
जिमिजात जुरत्रय ताप जब मनु जाय प्रभु पद में बस्यौ ॥२६॥

---

* सरिता सर निर्मल जल सोहा, सन्त हृदय जस गत मदमोहा।

हरि गई हरियाई लतनिकी कछुक पियराई चढी ।
नहिं कपट नर तन होतु जब मन ब्रत्ति सतगुन की बढी ॥
करिकै प्रकास जु काँस फूले बासु नहिं तिन में लसै ।
जिमि धरे सज्जन बेस मानहुँ दया नहिं उर में बसै ॥२७॥

दो०—राकापति उडुगन सहित पूरन छवि सिरताज ।
जिमि दुज कुल में लसत प्रभु लीन्हैं सखा समाज ॥ २८ ॥

सो०—मन प्रसन्न भगवान बन प्रबेस कीन्हौं तबै ।
करत मधुर धुनिगान गोधन गोपी गोप सँग ॥ २६ ॥

चतु०—देखत बन सोभा तहँ मन लोभा बिमुख कदंब बिकासे ।
लिपटी द्रुम बेली मंजु नवेली प्रफुल प्रसून प्रकासे ॥
द्रवतीं मधु धारें सौरम धारें लखि आनँद मन पागे ।
चहुँ दिसिते दौरे भरि भरि भौंरे मधुब्रत मधु अनुरागे ॥३०॥
जमुना जल लहरैं उठि तट छहरैं हंस कलोल बिहारी ।
तहँ परसत कंजन आवत रंजन पवन सुगंधन बारी ॥
जहँ तहँ खग डोलत कलरव बोलत कुंजन कुंजन माहीं ।
ठाडे प्रभु सुनहीं हिय सुख लहहीं सघन ब्रच्छ की छाहीं ॥३१॥

दो०—नटवर बेस बिराजहीं स्वर्न समान दुकूल ।
कर्न समीप लसै महाँ कोमल कनियर फूल ॥ ३२ ॥

सो०—नव किसोर वय जुक्त गति पौगंड भई जबै ।
झलक कपोलन उक्त मनु मर्कत सीसी सलिल ॥ ३३ ॥

इन्द्र०—केकीन के पच्छन सीर्ष राजैं ।
स्रेनी घनीपुष्प मयी बिराजैं ॥
मुक्तामनी काननि निर्त्तधारी ।
गंडानिमें मंडि बिहारिकारी ॥ ३४ ॥
बच्छस्थले माल बिसाल सोहै ।
ब्रंदादलै फूलन जुक्त जोहै ॥

फैले चहूँ सौरभ दिव्य छाये ।
आघ्रान कौं गुंजत भ्रंग धाये ॥ ३५ ॥
सुभ्रांसु सौ आनन चारु लेखौ ।
ता मध्य में अस्मित हास देखौ ॥
* कुंचि त्वने केस सुबेस मंडे ।
चक्षुश्रवा सूननि गर्व खंडे ॥ ३६ ॥
सोभा भरे इच्छन स्वच्छ कैसे ।
फुल्लारविन्दायत पत्र जैसे ॥
टेकैं सखा कंध त्रभंगि ठाडे ।
माधुर्जता स्याम अनेक बाढे ॥ ३७ ॥

दो०—प्रभु मुरली अधरन धरी करी सुरन उच्चार ।
खग म्रग नर मोहे सकल बिस्व भुवन भरतार ॥ ३८ ॥

तोटक०—मुरली सुर जोर उमंडि उठ्यौ ।
नर नारिन प्रेम उमंडि उठ्यौ ॥
सग राजत गेरि सखा जिनके ।
सुरसौं उरभेद गये तिनके ॥ ३९ ॥
ललना गन अंग अनंग तये ।
करतान सरासन बान हये ॥
इक मूर्छि गिरी न सम्हार तहाँ ।
उरमाँझ मनोभव पीर महाँ ॥ ४० ॥
इक आनन चंद लखै ललकै ।
दृग चाहि चकोर लगै चलकै ॥
इक तान बिधी दृग कौं बरखै ।
इक चालन सीस करैं हरखै ॥ ४१ ॥
इकरूप अमी धर ध्यान रही ।
इक चित्रलिखी इमि भोइ गई ॥

---

* 'कुंचितबने' ऐसा आशय होगा ।

म्रगयादिक जीव रहे थकिकैं।
तहँ सीस उठाइ सुनें जकिकैं ॥ ४२ ॥
गति त्यागि बिहंगम चौंकि परैं।
मुरली सुनिकैं अनुराग भरैं ॥
फिर नारि पुलिन्दनि की जु लसैं।
गिरि सुन्दर दीह दरीन बसैं ॥ ४३ ॥
सुनि बेनु उमाहन सौं चलतीं।
छवि कौं तकिकैं दुखकौं दलतीं ॥
प्रभु के चरनांक परे छितिपै,
तिनकी रज चाहि धरें सिरपै ॥ ४४ ॥
सुनि अम्बर अम्बुद आइ गये।
नभ बूँद अमी रस छाइ गये ॥
रव जोर परै श्रुति धाइ चली।
प्रभु कौं सुरभी समुहाइ भली ॥ ४५ ॥
मन जाइ मिले अहलाद करैं।
पयभार भरैं पग मन्द धरैं ॥
झुकि झूमत ऐन जु लाल हलें।
थन दुग्ध श्रवैं मग माँझ चलें ॥ ४६॥
लखि लालन उन्नत ग्रीव करी।
मति प्रेम पयोधि अगाध भरी ॥
चलि हुंकरि नैननि नीर ढरयौ।
मुरली सुरमोहन मंत्र कढ्यौ ॥ ४७ ॥

दो०—इहि प्रकार मोहे सकल बिस्व चराचर सोइ।
ब्रह्म सच्चिदानन्द के गुनगन जानतु कोइ ॥ ४८ ॥

सो०—संध्या आगम जानि दिनमनि अस्ताचल गये।
कोक सोक उर आनि कमल कोस संपुट भये ॥ ४९ ॥

तारक०—नरनाह सुनौंजु कहौं तुम सौं जू।
प्रभु गौवन फेरि चले ग्रह कौं जू॥
सँग राम सखा अबलागन जोहैं।
गिरि धातु रँगे तन चित्रत सोहैं॥ ५०॥
सुरभी खुर खेह अकास गई है।
दिसि दाबि चहूँ चलि धुंध छई है॥
अख श्रंगनि भूमि खनैं दृढ गाजैं।
तहँ धेनु हुँकारि चलैं सिसुकाजैं॥ ५१॥
सब गोप लगे मग निर्तत आवैं।
मुरली धुनि बीच मिलै सुर गावैं॥
ब्रज के जन देखि भये सुखकारी।
बनते घर आवत कुंज बिहारी॥ ५२॥

दो०—सँग समाज सोभित सदन आगे मदन गुपाल।
मुदित मोह माता मिलीं करि आरती बिसाल॥ ५३॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्दवृन्द दायिन्यां शरच्चन्द्र चारुमरीचिकायां श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिकायां द्विजगुमान विरचितायां वर्षा-शरद्वर्णनो नामा एकादशप्रकाशः समाप्तः।

———

द्वादश प्रकाश

इहि द्वादसैं प्रकास में सुनिजे कुरु अवनीस ।
वस्त्रहरन माथुरन की जज्ञ जाँचि जगदीस ॥ १ ॥

दोधक०—मारग मास पुनीत सुहायौ ।
गोप कुमारिनि जानि अन्हायौ ।
प्रात उठे रविजा तट जाहीं ।
मज्जन गात करैं जल माहीं ॥ २ ॥
मूरति सक्ति रचैं सिकता की ।
पूजहिं वेद लिये बिधि ताकी ।
अंगनि दिव्य सुगंध बनावैं ।
फूल स अच्छत आनि चढावैं ॥ ३ ॥
धूप सुदीप करैं अति नीके ।
जाँचि महेस्वरनी हित पीके ।
अम्बुज से कर जोरहिं दोऊ ।
अस्तुति नाम उचारहिं सोऊ ॥ ४ ॥

दो०—गिरिजा काली अम्बिका हे दुर्गे, सुनि लेव ।
हमकौं पति मोहन मिलैं यह बरु माँगे देव ॥ ५ ॥

मनहंस०—ग्रह जाँहि सुन्दर बाम जे कर जोरिकैं।
हरि के करैं गुनगान प्रेम हिलोरिकैं।
तहँ आइकैं सुचिसौं रचैं पयपाक कौं।
करि दान भोजन कौं करैं तजि वाक कौं ॥ ६ ॥
निसि जागिकैं प्रभु के चरित्रन कौं कहैं।
उर ध्यान मूरति राखि सोवन कौं लहैं।
इहि रीति नेम सप्रीति धारन कौं करैं।
रवि नंदिनी तट जाइ आनँद सौं भरैं ॥ ७ ॥

दो०—इक दिन कूल दुकूल धरि सकल करैं जल केलि।
हरिजस उच्च उचारि कैं उछलत लहरि हथेलि ॥ ८ ॥

मिसि०—नंद सुत गोप सब संग मिलिकैं तहाँ।
जाइ जमुना पुलिन देखि ललना जहाँ।
बाम जल हेलि मन खेल तिनके बढ़े।
चीर हरि कान्ह करि गान तरु पै चढ़े ॥ ९ ॥
स्याम अभिराम रचि हास सुख पाइकैं।
प्रेमरत बैन कहैं मैन सरसाइ कैं।
नम्र जल बीच दृग मीच तिय कैं रहीं।
लाजि तन व्यापि छिपि कंठ लगि ह्वै रहीं ॥ १० ॥

दो०—कंठ प्रजन्त रही सलिल आनन इन्दु दिखाइ।
सकल सीत सीदित भईं तन कंपित अकुलाइ ॥ ११ ॥

पद्ध०—जलमद्धि अंग छवि झलमलाहि।
घन मनहुँ चंचला चमचमाहि।
तम के निकेत कीन्हौं उदोत।
दीपालि सिखा जनु ज्वाल जोत ॥ १२ ॥
फिरि प्रगट देखिये मुख रसाल।
जनु अमल कमल झलकैं बिसाल।

कै प्रगट भई प्रभु कौं सुदेखि ।
जनु सहसमुखी देखी बिसेखि ॥ १३ ॥
तहँ सहित केस मुख इमि प्रमानु ।
स्वर्भानु ग्रसैं जनु सीतभानु ।
जल तिरहि इकै बेनी पसारि ।
ससि पीठ लग्यौ काली हँकारि ॥ १४ ॥

दो०—उत्कंठित बोली सकल लज्जा प्रीति सुभाइ ।
मन मोहन मन भावते यह कछु उचित न आइ ॥ १५ ॥

मालि०—तिय बिनय उचारैं प्रीति सौं बैन धारैं ।
महरि सुत सुनौजू नंद के लाल प्यारे ।
मदन कदन सोहैं चारु सोभा सलौनी ।
ललित कलित हाँसी चंद जोहै निरौनी ॥ १६ ॥
अमल कमल नैना काम के बान तीखे ।
मृदुतन सुख दैना कौनु ये चाल सीखे ।
जमुन सलिल माहीं गात सीदैं हमारे ।
अति कर बरजोरी आइ का कान्ह कारे ॥ १७ ॥
तुम हित हम भाखैं सत्य कै लाल मानौ ।
छिति पर अति बाँकौ कंसकौ राजु जानौ ।
हम सब तब दासी चित्त में मान लीजै ।
ब्रजजन पिय प्यारे बेगिही वस्त्र दीजै ॥ १८ ॥

दो०—जोगेस्वर भगवान तहँ हँसि बोले जदुबीर ।
जल तैं कढि इत आइ तब ग्रहन करौ तुम चीर ॥ १९ ॥

मालि०—मुख छवि लखि भूलीं काम सों अंगताई ।
हरि मन हरि लीन्ही अम्बु कौं छौडि आई ।
तन कँपहि पियारी मंजु सोहैं नवेली ।
जनु पवन झकोरी स्वर्न की चारुबेली ॥ २० ॥

तन सजल ककोरैं राजतीं बाम ऐसे।
हिमकर कर देखे पद्मिनी पत्र जैसे।
प्रभु ढिग चलि आईं कंज से पानि छाये।
तरु तर सब ठाड़ीं भूमिकौं सीस नाये॥ २१॥

सो०—सुद्ध भाव भगवान दीन्हैं डारि निचोल तहँ।
कहत भये सुखबान सुनहुँ सुगोप कुमारिका॥ २२॥

नरेन्द्र०—बोलत स्याम गानि तिय तुम सब सुन्दर रूप पियारी।
नग्न सरीर नीर महँ मिलि मिलि जोबन जोति उज्यारी।
कीन्ह न कानि अम्बु अधिपति तुम नैकहुँ त्रास न मानौ।
लागिव पापु होहु इमि अबिमल जो न हृदै महँ आनौ॥२३॥
कूल दुकूल पहिर सब मिलि कर पंकज जोरहु नीके।
दंड समान दंडवत करि छिति चाहहु जो तुम ही के।
होंहि प्रसन्न तोयपति तुम पर ह्वै ब्रत पूरन भारे।
मानस प्रीति रीति इहि बिधि करि पावहिं नन्ददुलारे॥२४॥

दो०—सोही तिय कीन्हौं सकल जो जो कह्यौ किसोर।
करैं दंडवत करुन हिय मन गलानि सौं बोर॥ २५॥

स्वागता०—मोहि लागि तन कष्ट जु धारे।
होहि पूर्न ब्रत धर्म तुम्हारे।
चित्त चाह करतीं सुख पाये।
सिद्धि होहि सरदागम आये॥ २६॥
रासमोद रचिहौं अतिनीके।
बाम काम पुजिहौं सब ही के।
प्रेम प्रीति उपजै अधिकारी।
जाहु गेह अति आनँद भारी॥ २७॥

दो०—मन बांछित बरदान दै ग्रह पठई सब बाम।
सखनि सहित चलि आपु प्रभु गये जहाँ श्रीराम॥ २८॥

उपेन्द्रवज्रा०—

मिले सखा संग सबंधु सोहैं ।
चले तहाँ अग्रबिनोद जो हैं ।
घने छये ब्रच्छ समूह छाजैं ।
कलिन्दजा कूलन सोभ साजैं ॥ २६ ॥
प्रसून फूले फल पक्कधारी ।
विहंगश्रेनी भ्रम भीर भारी ।
तहीं बली स्याम बिहारकारी ।
लिये सबै गोप अनन्यचारी ॥ ३० ॥

दो०—सुबल सुबाहु सुअंस भुज श्रीदामा से नाम ।
कर जोरैं बिनती करैं सुनहुँ राम घनस्याम ॥ ३१ ॥

सो०—जन पालक बिख्यात अतुल बीर्जधारी महा ।
छुधित हमारे पेट जिमि सतुष्टहि करहु प्रभु ॥ ३२ ॥

लक्ष्मीधर०—जाउ जू जाउ लै गोप संगे जहाँ ।
जज्ञ कर्ता सबै बिप्र बैठे तहाँ ।
जो कहौं सासना सो सुनौ आइकै ।
राम श्री स्याम भूखे कहौ गाइकैं ॥ ३३ ॥
मानि कैं सीखकौं गोप चाले तबै ।
जाइ कैं जज्ञ में बिप्र देखे सबै ।
अग्र ठाडे भये हाथ कौं जोरि कैं ।
बैन काढे तबै लाज कौं तोरिकैं ॥ ३४ ॥
राम श्री स्याम भूखे सुनौ बिप्रहो ।
जज्ञ को भाग लैकै चलो छिप्रहो ।
बात को धारि कैं बिप्र बोले नहीं ।
गोप बातें जहाँ ते अनेकै कहीं ॥ ३५ ॥
जज्ञ आरम्भ कै स्वर्ग इच्छा करैं ।
कर्म साधै सबै मोद ही में भरैं ।

जज्ञ कौ ईस ताकौं नहीं आदरैं।
मूढ ऐसै कहैं जज्ञ पूरी करैं ॥ ३६ ॥

दो०—मुरकि गोप आये तहाँ जहँ ठाडे नँदनंद।
लाल न दुजवर मानहीं ऐसे सठ मतिमंद ॥ ३७ ॥

सो०—हँसि बोले भगवान अखिल लोक ईस्वर प्रभो।
फेरि जाहु मतिवान दुजपतिनिनकी प्रीति लखि ॥ ३८ ॥

तोमर०—तुम जाहु सो फिरि गोप कहियौ तहाँ करि चोप।
तिनकी त्रियानि सुनाइ जुगबन्धु यों कहिआइ ॥ ३९ ॥
उपजी छुधा तिहिं पाइ दधि भातु बेगि मगाइ।
त्रिय लै चलौ हम संग करि प्रीति रीति अभंग ॥ ४० ॥

दो०—गोप बचन सुनि उर उमँगि प्रेम मगन आकुलाइ।
भोजन सजि आतुर चलीं बिप्र बधू सुख पाइ ॥ ४१ ॥

तोटक०—रचि भोजन चारि प्रकार लिये।
दधि ओदन आदि बिसेखि किये।
दरसे प्रभु मंडल रूप खरे।
दृग हीतल सीतल देखि परे ॥ ४२ ॥
इमि साँवर गौर स्ररीर बनैं।
छवि वोज मनोजनि कोटि घनैं।
सिर पै सुभ चंद्रक चारु रचैं।
बिच गुच्छन सुच्छ प्रसून सचैं ॥ ४३ ॥
अलकैं झलकैं मुख छूटि भनौं।
अहि की त्रिय चंद समीप मनौं।
श्रवनोदय कुंडल जोति करैं।
चल चारु मरीच कपोल परैं ॥ ४४ ॥
दृग भौंह मरोर मरोर हियौ।
चितु चन्द्रक हास चुराइ लियौ।
बन माल बिसाल रसाल गरे।

तिनि ऊपर भौंरनि भौंर परे ॥ ४५ ॥
पट पीत सुनील निचोल लसैं।
तिनिमें मिलि दिव्य सुगंध बसैं।
कछिनी कटि किंकनि जोर कसी।
कर कंकनि जोति मनीनि गसी ॥ ४६ ॥
भुज अंस सखा धरि सोहत हैं।
छविलाल त्रिभंग बिमोहत हैं।
फिरि फेरत पंकज पानि लिये।
सब के मन मोहन मोहि लिये ॥ ४७ ॥

दो०—इहि छवि ठाडे बंधु जुग लसत मंडली ग्वाल।
जमअनुजा के तीर जहँ उपबन परम रसाल ॥ ४८ ॥

सोरठा०—मुनि कहिं त्रप सुनु और बिप्र एक रोकी त्रिया।
करी मूढ अति रौर देतु जान नहिं स्याम पर ॥ ४९ ॥

हरि०—दुज कोह करि निज जोइ रोकी भोइ मति अज्ञान में।
सठ हठ करै नहिं जान देतु अजान भरि मद मान में ॥
त्रिय आनि उर भगवान कौं उर ध्यान छनि भरि रहि गई।
मन बँध्यौ मदन गुपाल में किमि रुकहि सरनागत भई ॥५०॥
उमड्यौ सुप्रेम पयोधि पूरन उठति रुकति तरंग क्यौं।
तजि गयौ देही देह इमि निरमुक्त तजत भुजंग ज्यौं।
चलि कैं मिली नँदलाल कौं करि जगत आसा नास कौं।
सब रहे भौंचक खाइ कैं पति लेत दीह उसाँस कौं ॥५१॥
फिरि सुनहुँ त्रप दुजतिय सकल लै असन पहुँचीं प्रीति सौं।
प्रभु अग्र राखहिं भाखि बैननि करहिं बिनती रीति सौं।
जुग बन्धु आनन देखि छवि दृग लगे आनन चाहि कैं।
जिमि लखत चारु चकोर चंदहि परम प्रीति निबाहि कैं ॥५२॥
प्रभु जानि त्रियमन प्रेम बूढ़े भक्ति संजुत हैं महाँ।
सुख पाइ संग सखानि जुत प्रभु करत भोजन हैं तहाँ।

करि असन जमुनोदक अँचै तिन पै प्रसन्न भये हरी ।
कहि बैन राजिवनैन चितवनि कृपारस सौं हैं भरी ॥५३॥
घर जाहु दुजवरघरनि सब मम भक्ति उरमें आनिकैं ।
सुतपति तुम्हैं ग्रह आदरैं सनमान सासन मानि कैं ।
सुनि बचन अच्युतबदनके लिय मगन मन अभिलाखियौ ।
कर जोरि अस्तुति करहिं प्रभुके चरन उर महँ राखियौ ॥५४॥
भगवान तुम्हरे परस पाये महाभाग्य भई सबै ।
जिन दरस करि जोगीन्द्र बाँधि समाधि पावत हैं जबै ।
सब करम बन्धन छूटिगे छविकी छटनि कौं देखिकैं ।
कृत कृत्य मान्यौ आपु पै हम सफल जीवन लेखिकैं ॥५५॥
करि दंडवत इमि करि बिनै प्रभु मान आइस कौं चलीं ।
दुज जज्ञमंडल में लसे पहुँची तहाँ तरुनी भलीं ।
तिन सहित आनँद मानिकैं दुजजज्ञ पूरन कौं करी ।
सुभ आचरनि अस्त्रीनि के लखि भक्तिसो मनमें धरी ॥५६॥
दुज आपुकौं निंदै सुबंदैं धन्य अस्त्रिनि मानिकैं ।
हम जज्ञनाथ निरादरयौ इनि आदरयौ प्रभु जानिकैं ।
तिहि पाइ सुमति सुबुद्धि उपजी भक्ति उरमें सोहहीं ।
हम करि अवज्ञा ब्रह्म की निरबुद्धि ईरख कोहहीं ॥५७॥

दो०—इहि प्रकार जुरि कैं सकल माथुर दुज पछितात ।
हरि दरसन इच्छा करैं कंसहि देखि सकात ॥५८॥

सो०—हे न्रप मुणि, सज्ञान बंधु गोप गौवन सहित ।
गये गेह भगवान देखत बन सोभा घनी ॥ ५९ ॥
पूरन ब्रह्म अपार मनुज नाट्य लीला रचत ।
निज माया बिस्तार सकल चराचर मोहियौ ॥ ६० ॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द वृन्ददायिन्यां शरच्चन्द्र चारुचन्द्र मरीचिकायां द्विजगुमान विरचितायां श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिकायां माथुर यज्ञ वर्णनो नामा द्वादशप्रकाशः समाप्तः ।

त्रयोदश प्रकाश

दो०—इहि त्रोदसैं प्रकासमें इन्द्र जज्ञ रचि गोप।
ताकहँ मेटहिं नंदसुत करि हैं बासव कोप ॥ १ ॥

हरिगीतिका०—

जुरि ब्रद्धगोप समाज बैठे नंद उपनंदै सबै।
बुधवान मति सज्ञान जे त्रैकाल की जानत सबै ॥
तहँ नंद मन आनंद बोले सकल ब्रजबासी सुनौ।
सहसाक्ष पावन जज्ञ कौ आरंम्भ करनौं हौं गुनौ ॥ २ ॥
करि पूप पूरी क्षीर आदिक पाक नानाबिधि रचौ।
दधि दूब अच्छत फूल फल लै सौंज पूजा की सचौ ॥
यहि मानि गोपी गीत गावहिं प्रेम मन तिनके पगे।
फूले फिरत भूले फिरत सब गोप कारज में लगे ॥ ३ ॥
प्रभु बिस्व जान अजान इमि पूछत पिता कौं आनिकैं।
पितु कौन कारज गोप बींधे कौनु उत्सव मानिकैं ॥
तहँ नंद भोरे प्रेमबोरे बचन सुत सौं यों कहैं।
सुरपाल सुभ हम जज्ञ कीजतु सकल जन तामें नहे ॥ ४ ॥

जिनि हुकम सों परजन्य बरसत अन्नसों सब निर्बहैं।
फल फूल त्रन जल ओखधी तिन पाइ देही सुख लहैं॥
सुनि बचन ते भगवान बोले पिता सौं हित हेरिकैं।
पितु हौं कहौं जो सुनहु बानो सकल सास्त्र निबेरिकैं॥ ५॥
फल रूप कोऊ पुरुप पूरन ताहि नहिं पहिचानिकैं।
दुख सुख सबै ये कर्म प्रेरक यहै वेद प्रमानि हैं॥
जग सब बनज ब्योपार में गो बनज हमरे सार हैं।
रमि सदा गोबर्धन बिसैं त्रन चरहिं करहिं बिहार हैं॥ ६॥
भरि अयन कौं पय स्रवहिं धारा होत तिहि अपनो भलौ।
तिनकी न पूजा करहु पितु तुम कौन अनुमति में चलौ॥
बुध जन बुलावो वेद बिधि रचि अगिनि आहुति दीजिये।
धन धान्य भोजन दान दै सन्तुष्ट भूसर कीजिये॥ ७॥
पयपाक करि पकवान भरि गिरि पूजिये सुख साजि कैं।
फिरि दै प्रदच्छिन गान करि डफ संख भेरी बाजिकैं॥
सुनि बचन प्यारे नंदजू उर मोह ममता में भरौ।
कहिकैं सबनि सौं सुख लह्यौ मोहन कह्यौ सोई करौ॥ ८॥
नर नारि सजि सजि भार भरि भरि पाक नाना बिध लह्यौ।
करि होम पूजा गिरि करी फिरि मान बिप्रन कौं दयौ॥
गिरि गेरहीं उत्साह सौं सुर उच्च प्रभु गुन गावनैं।
तहँ कहिव जो जो करिव सो मनहरे सुन्दर स्यामनैं॥ ९॥

दो०—बिबिध भाँति बाजे बजत नचत गोप करि चोप।
यह उत्सव देखत तहाँ सक्र करिव अति कोप॥ १०॥

तोम०—बल क्रत्त के अभिमान उनमत्त गोप निदान।
मम जज्ञ कौ करिनास रचि आप कोटि बिलास॥ ११॥
कहि क्रोध सौं परिपूर, करि हौं महामद चूर।
सुर ईस ये कहि बैन रिस सों छये अति नैन॥ १२॥

घनमाल लै सिरदार करता प्रलै बिकरार ।
धकरथौ रहै पगजोर कहि को सकै तिहि छोर ॥ १३ ॥
सुरराज लीन्हव बोल दिय ताहि बंधन खोल ।
तिहि सौं कहिव समुझाइ ब्रज देउ सीव्र बहाइ ॥ १४ ॥
करि रोस कौं सिरु नाइ ब्रज कौं चलौ समुहाइ ।
जल बोध सों बरजोर करिकै प्रलै घनघोर ॥ १५ ॥

दो०—मेघ ईस सावर्त्त वह गवनौ दुसह सुभाइ ।
संग गहन गंजन दयौ चल्यौ प्रभंजन धाइ ॥ १६ ॥

त्रिभंगी०—

घन पर घन धाये चहुँ दिसि छाये सो झपि आये भूमि यहाँ ।
बिज्जल की चमकनि घन की घमकनि झंझा झमकनि झरप तहाँ ॥
करि करि बल भारैं अति रिस धारैं छोड़त धारैं जब सोऊ ।
बुन्दन अरराहट मिलि सरराहट मिलत न आहट कहुँ कोऊ ॥ १७ ॥
लागी अँधियारी तम अधिकारी नर भय भारी भभरि रहे ।
येकनि इक टेरैं लखहिं ने हेरैं गिरि भट भेरैं भूलि रहे ॥
गौवें अकबकतीं चल नहिं सकतीं सीतहि कँपतीं दुखित जहाँ ।
तहँ गोप पुकारैं हिय भय धारैं होत कहारे प्रलय महाँ ॥ १८ ॥
गोपी कर मीड़ैं जब सिसु हीड़ैं तब तन पीड़ै धाइ धरैं ।
भरि भरि तिनि अंकनि करि करि संकनि लचकनि लंकनि लचकि परैं ॥
सीदैं नहिं थोरी पवन झकोरीं नवल किसोरीं दुख दरसैं ।
बिछुरीं पिय संगनि निचुरीं रंगनि लिपटे अंगनि बसन लसैं ॥ १९ ॥
बिगलित तहँ बेनी चकित सुनैनी बिथुरी सैनी सुमन झरैं ।
छूटे सौ बारन टूटे हारन भूषन भारन पगन परैं ॥
आवैं नहिं कहने गिर तन गहने साँसत सहने सुख दलकैं ।
तन में तडिता सी कनक लता सी दीप सिखा सी तन झलकैं ॥ २० ॥
कबहूँ रिंग चलती भूमि फिसलतीं कबहूँ मिलतीं बाँह गहैं ।
मोतिन लर उरझी जाइ न सुरझी अति मुख मुरझी उरझि रहैं ॥

जलधर झुकि झुमड़ैं मारुत उमड़ैं घाँघर घुमड़ैं घेरि घनैं।
उडि अंचल फहरैं छितिलौं छहरैं उठतीं लहरैं कौनु भनै ॥ २१ ॥
सुनि सुनि घन घहरैं हिय में ठहरैं थर थर थहरैं झझकि झकैं।
सुन्दर सुकुमारे तन न सम्हारैं डगन पसारैं चल न सकैं।
जहँ उर भरि सोचन जल भरि लोचन आँसू मोचन करहि तहाँ।
हे ब्रज रखवारे, नंददुलारे प्रीतम प्यारे हौ जु कहाँ ॥ २२ ॥

छ०—मुसल धार धारंत धाइ धाराधर छंडत।
झरपि झार बिज्जुलनि झहरि झंझा बन खंडत।
नरहर बरखर भरत डिगत डगभर आरत सब।
होत कहा यह दई निरदई करत कहा अब।
भनि 'मान' रचिव पुरहूत यह तूत भयंकर दुखकरन।
निजु हथ्थ सथ्थ सूझत नहीं अब गुपाल रच्छहु सरन ॥२३॥

दो०—कहाँ नंद नंदन प्रभो कह बलि राम कुमार।
त्राहि त्राहि रच्छा करहु बिस्वभवन भरतार ॥ २४ ॥

पद्ध०—नर नारि बिकल ब्रज के निहारि।
मुसक्याइ कह्यौ तिनसों मुरारि।
अब सुचित होहु मन धरहु धीर।
नहि परहिं कष्ट सब हरहुँ पीर ॥ २५ ॥
करि बोध किये सब समाधान।
सब जानि लियौ सुरपति अयान।
हम इन्द्र जज्ञ दीनिव मिटाय।
करि क्रोध कियौ तिनि यह उपाय ॥ २६ ॥
प्रभु सरनागत यह सकल लेखि।
भइ खबरि बिरद की दरद देखि।
करि करुना करुना के पगार।
उर बढ्यौ पयोनिधि दयाभार ॥ २७ ॥

प्रभु तकिउ ताहि सहजहि सुभाइ ।
लिय कन्दुक इमि गिरिबर उठाइ ।
कर अग्रभाग छवि लसत लीक ।
गज सुंड बसतु जनु पुंडरीक ॥ २८ ॥
इमि लिय उपाट छत्रक सदंड ।
जिमि छत्र छाँह छाई अखंड ।
गिरिधरन कहिव सबकौं सुनाइ ।
गिरि-छाँह सकल मिलि रहहु आइ ॥ २९ ॥
सुनि बचन गोप लै सब समाज ।
अाइ धसे गिरि गर्त्त माँझ ।
सुख बास ठौर चाह्यौ जितेक ।
तिहि दयौ जोग माया तितेक ॥ ३० ॥
नर नारि पुत्र गोधन समेत ।
गिरि छाँह भये सिगरे सुचेत ।
छवि बढी नंद नंदन अतोल ।
झुकि रह्यौ मुकुट मंजुल अमोल ॥ ३१ ॥
कर वाम लिये गिरिवर उतङ्ग ।
कर दच्छिन मुरली करत रंग ।
छवि छलक झलक अलकन सुरोच ।
लखि फनिक सुन्दरी रहीं सोच ॥ ३२ ॥
कुंडलनि जोत गंडन सुरेखि ।
तम दुरत फिरत तिनि किरन देखि ।
दृग तरुन तामरस तरल कोर ।
जे जात दबावत करन वोर ॥ ३३ ॥
बिधु बदन सरल कोटिन प्रकास ।
लजि छिप्यौ मदन मन करि अबास ।
तहँ हँसन फाँस फाँस्यो बनाइ ।

लिय नवल त्रियनकौ चित चुराइ ॥ ३४ ॥
उर सुमन माल पहिरैं उछाह।
जिहि परस पवन भई गन्धवाह।
कटि बँध्यौ काछिनी पै दुकूल।
तन सघन घटा मिलि तडित तूल ॥ ३५ ॥
प्रभु रहे धरा पग अचल रोप।
निज अब्ज कोसतें अधिक वोप।
सब गोपु रहे प्रभुकौं निहारि।
नहि घटत चाव कछु रहे हारि ॥ ३६ ॥
चलि महरि हरबरे कहिब आइ।
सुत गिरि उतारु कर लचक जाइ।
हँसि कहिब तबै बलभद्र बीर।
जनि करहु सोच माता सरीर ॥ ३७ ॥
व्रज नवल नारि गुरुजन बचाइ।
करि करि कटाछि चंचल चलाइ।
तहँ म्रग नैननि द्रग लगत बान।
प्रभु गिर सम्हार लिय डगमगान ॥ ३८ ॥
कछु सिथिल अंग व्याप्यौ अनंग।
धरि धीरज गावत प्रेम रंग।
बिच बिच मुरलीधुन सुर उमंडि।
सुनि सुनि घन गरजतु करि घुमंडि ॥ ३९ ॥
प्रभु प्रबल महा माया अपार।
गई छुधाभूल को लहइ पार।
नहिं जलद जोर व्यापै कुचेन।
गिरि गर्त्त माँह सिगरे सुखेन ॥ ४० ॥
दो०—करत कुलाहल ग्वाल सब गिरि गोबर्धन छाँह।
तिन कौं आपद क्यों परै बसत लाल की बाँह ॥ ४१ ॥

भुजंग०—तिन्हैं देखिकै इन्द्र कैं रोस छायौ ।
चढौ धाइ नागेन्द्र पै आपु आयौ ।
सुपर्वान की राजसी गर्व बाढौ ।
तहाँ जंभभेदी लिये बज्र ठाडौ ॥ ४२ ॥
तबै जाइकै धूम्रजोनी हँकारे ।
भरे रोस सौं जे कहैं बैन भारे ।
अरे मूढ, तें ह्या कहा आइ कीन्हौं ।
ब्रजै बोर बै कौं इतौ झेलु कीन्हौं ॥ ४३ ॥
सुनै बैन भै मानिकै रोस भीनौं ।
सबै एक ही बेर कै जोर कीन्हौं ।
उठै साजि गल गाजि कै मेघ ऐसे ।
उठै लाभ कौं पाइकैं लोभ जैसे ॥ ४४ ॥
मनौ मत्त मातङ्ग के जूह धाये ।
घनै घूमिकैं भूमि पै भूमि छाये ।
घुमंडै घनी घरकै मेघ माला ।
महादुर्मुखा कोह कारी कराला ॥ ४५ ॥
उदै भार आये भरे अम्बुभारे ।
परे टूटिकैं जे धरा धूमधारे ।
करैं रोस सौं घोस के वोघ छंडै ।
महावृष्टि उत्पात पविपात मंडै ॥ ४६ ॥
कहै कौन पै जाइ आकूत भाखे ।
दिसाद्वार धुंधानि सौं रूँध राखे ।
उठैं चंचला के चहूँ चमचमाटे ।
उठै चौंधि कैं है कहूँ झलझलाटे ॥ ४७ ॥
उठैं मेघ के नाद के तर्तराटे ।
उठै आइ कैं जे धरा धर्धराटे ।
उठैं बूँद के पात पै पर्पराटे ।

उठैं सो हला के झला झर्झराटे ॥ ४८ ॥
उठैं पूरके दूरतैं घर्घराटे,
उठैं अम्बु पाखान के गर्गराटे।
उठैं जुल्मुकाते फिरैं हर्बराटे,
उठैं बिस्व में देखिकैं खर्भराटे ॥ ४९ ॥
उठैं सीत के मीत के थर्थराटे,
उठैं पौन के गौन के सर्सराटे।
उठैं जे सिला के गिरे दर्दराटे,
उठैं तिर्छ के ब्रच्छ के भर्भराटे ॥ ५० ॥
उठैं टूटि अस्कंध ते चर्चराटे,
उठैं पत्र छायानि के छर्छराटे।
परैं कूटपै छूटकैं तोयधारा,
उठै उच्च है जे उछाहैं अपारा ॥ ५१ ॥
उडैं श्रृंगते सीकरै ब्रन्द भारे,
मनौ व्योम के बीच छूटे फुहारे।
भरयौ तोइ गंभीर है भूम ऐसौ,
ठिले सिंधु सातों मिले होइ जैसौ ॥ ५२ ॥
उठैं गेरिकैं घोर घेरे अनैसी,
उठैं जोर सौं लोल कल्लोल जैसी।
भिल्यौ तोइ भारी परैं भौंर जामैं,
उठै फैलि फैना मिटै फेर तामैं ॥ ५३ ॥
मिटै कूल कीलाल सौं कौन जानें,
छिपै पंथ हेरैं हिरानैं ठिकानें।
दिसा भाग भूले जु रूके न हेरैं,
तहाँ सोर में को सुनै जोर टेरैं ॥ ५४ ॥
तमी तोम बाढ्यौ छयौ यों बखानौं,
धरा स्वर्ग दोई भये एक मानौं।

कहौ और को देखिबौ कौन लेख,
नहीं आपुनी अंगुली आपु रेखै ॥ ५५ ॥
दिना सप्त लौं सो यही रंग माँच्यौ,
दुराधर्ष ऐसौ प्रलै काल नाच्यौ।
तहाँ जीव राखे सुमाया बिहारी,
सबै जे म्रगा आदि आकासचारी ॥ ५६ ॥

सो०—अचल महाभगवान, रहे अचल पग रोपि तहँ।
अचल भुजा परवान, धरैं अचल कौं अचल कर ॥ ५७ ॥

तो०—दिन सप्त रहे जम कै पग कौं,
करि उन्नत धार धराधर कौं।
गिर गर्त्तन पूर प्रबेस करैं,
गिरि छाहन सीकर बूँद परैं ॥ ५८ ॥
यह देखि दसा सुरपाल सक्यौ,
प्रभु पूरन ब्रह्म अनादि तक्यौ।
बरजे सब मेघन पंथ लह्यौ,
हति कैं सब कौ मद मान गयौ ॥ ५९ ॥
जलहीन पयोधर देखि भनौं,
उतरे मद मत्त मतंग मनौं।
जल रास उमंग भरी उमनी,
सिमटी घटि तोइ तरंग घनी ॥ ६० ॥
नभ आइ घनाघन छाइ लह्यौ,
उघरयौ महि दिव्य प्रकास भयौ।
तम बाढ सगाढ दिसानि छयौ,
रवि अंसनि तेज न रेज भयौ ॥ ६१ ॥
जल बृष्टि महामघ भौन भरे,
निघटे गल दृष्टि दिखाइ परे।

उमडे हद दाबि प्रबाह बढ़े,
समता रविजा लखि कूल कढे ॥ ६२ ॥
गति मारुत आतुर ताहि कियौ,
चलि आवत मंद सुगन्ध लियौ।
हति पंक दिनेस प्रताप रग्यौ,
सिगरयौ ब्रज उज्वल जोत जग्यौ ॥ ६३ ॥

मनमोहन सोहन बैन कहे,
सब गोप समाज चलौ ग्रह हे।
प्रभु बैन सुने सुख मोद कसे,
गिरितें सिगरे धनु लै निकसे ॥ ६४ ॥
जहँ तैं गिरि कौं प्रभु पान धरयौ,
फिरि तौन थली पर थापि धरयौ।
गिरि गर्त्त कढै प्रभु रूप लस्यौ,
जनु चंपक यों निधि तैं निकस्यौ ॥ ६५ ॥

चलि मात पिता उत कंठ लगे,
बलभद्र बली अनुराग पगे।
प्रभु भूर भुजा फिर पूजत हैं,
मन माँझ मनोरथ पूजत हैं ॥ ६६ ॥
सुर अस्तुत बेद बिचार करैं,
भरि अंजुल मंजु प्रसून झरैं।
सँग स्याम सखा लिय गोपनि कौं,
चलि अग्रज अग्र लियैं धन कौं ॥ ६७ ॥

सिगरे मग में घर जात चले,
मुरली सुरतान तरंग मिले।
गुन गावहिं नारि बिनोद भरीं,
प्रभु कौं लखि प्रेम समुद्र परीं ॥ ६८ ॥

ग्रह स्याम गये परबार लिये,
सजि आरति थारन मातु किये।
ब्रजराज सुबिप्रन बोलि लिये,
दिय दान अनेक बिधान किये ॥ ६९ ॥

सो०—बसहिं सदा सुखवास ब्रजबासी ब्रज भूमि पर।
हरि चरनन की आस तिनकौ सुख को कहि सकै ॥ ७० ।

दो०—उपइन्द्रा अरु इन्द्र कौ सुनि हैं यह संबाद।
ताहि न आपत व्यापि हैं कह 'गुमान' निर्बाध ॥ ७१ ॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द वृन्ददायिन्यां शरच्चन्द्रचारुमरीचिकायां द्विज-गुमान विरचितायां श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिकायां इन्द्रकोप गोवर्धन धारणनामा त्रयोदशप्रकाशः समाप्तः।

———

चतुर्दश प्रकाश

सो०—इहि चौदहें प्रकास गोपी गोप समाज सब।
आहैं नंद अवास हरि गुन गन बिरचहिं बिसद ॥ १ ॥

दो०—काम धेनु आगे करें भेंट करें सुरईस।
बरुन धामतें नंद फिरि लै आवहिं जगदीस ॥ २ ॥

ललित०—सुनहु नंद तुम सम कहुँ को है भाग भलाई कैसौ।
पूरन पुन्य पुरातन लहि जिनके सुत उपजौ ऐसौ ॥
थोरी बैस पराक्रम भारी यह अद्भुत गति देखौ।
है कोउ बड़ौ देव देवनि में नारायन सम लेखौ ॥ ३ ॥
पलना बीच परे लालन जहँ धूत पूतना आई।
पय पीवत हरि लये प्रान तब निज तन दई दिखाई ॥
सकट विभंजन करयौ नंदजू जब सुत सरस तिहारे।
महाकष्ट पलटायौ गोपन को ऐसौ बलभारे ॥ ४ ॥
त्रनावर्त्त आवर्त्त पवन के भरत भयंकर आयौ।
लैगौ ललहि उठाइ अकासै नास करन कौं धायौ ॥
ताहि प्रहारि पछारि धरनि पै खंड खंड करि मार्‍यौ।
मरती बेर घोर रव काढ्यौ भूरि भवन भरि भार्‍यौ ॥ ५ ॥

*

येक अचिज सुन्यौ हम कानन जबहिं मृत्युका खाई ।
महरि झुक्यौ तब बदन बिकास्यौ तामें बिस्व बताई ॥
ऊखल बन्धन कस्यौ जसोदा जब दधिभाजन फोरे ।
ताहि उखारि कढै अर्जुन बिच झटक तरक तरु तोरे ॥६॥
बच्छ चरावत बच्छन में जिन असुर बछासुर मास्यौ ।
चीर बकासुर चौंच बदन में पैठि अघासुर फास्यौ ॥
बाल ब्रंद लै ताल बिपिन कौं अग्रज आगे करिकैं ।
धेनुक अधम ध्वंस कीन्हौ जू संकर्षन रिस भरिकैं ॥७॥
कठिन कराल व्याल कालीदह अति दुर्मद मद जानौ ।
विष झारैं छोड़त फनि फुंकित ललहि आनि लिपटानौ ॥
ताहि झकोर झपटि झहरायौ फन पर निर्त्तहिं कीन्हौ ।
गति प्रकास मदनास महाबल त्रिभुवन कौं सुख दीन्हौ ॥८॥
खेलहिं खेल प्रलम्ब दनुजपति कौतुक निधन बिचास्यौ ।
दियौ मिलाइ बली बलभद्रहिं ताहि गरद करि डास्यौ ॥
लागी दहन दवागिनि बनमें धूम धुंध अधिकारी ।
दस दिस भहर भयंकर धाई लपट लपेटन बारी ॥९॥
गोधन गोप जरत सिगरे तब कष्ट माँझ घबरानैं ।
ताहि अमीसम पानि कस्यौ जिन कौ तिन कौ गुन जानैं ॥
मघवा जज्ञ करन तुम चाह्यो ताकहँ मेटि कन्हाई ।
रिस करिकैं सुरराज पठाये प्रलै मेघ दुखदाई ॥ १० ॥
उमडि उदण्ड घेरि ब्रजमंडल मुसलधार बरसाई ।
गोबर्द्धन उद्धरन धरनितैं गिरिधर बिपति बिहाई ॥
बिना स्याम त्रिभुवन को ऐसौ ऐसौ कारज सारै ।
कै आरत सरनागत राखत को कर गिरवर धारै ॥ ११ ॥
गुन निधान बलवान सकल बिध निपुन पराक्रम माहीं ।
जाकौ रूप अनूप काम ते देखत नैन जुडाहीं ॥
कहौ नंद ऐसौ को जग में जाहि न प्यारौ लागै ।

को छविरास निरखि नहिं मोहै को न प्रेम में पागै ॥१२॥
तेरे सदन जनम लिय जबतें भूरि भलाई आई।
ब्रजबासी सम्पन्न नारि नर सुख संपति अधिकाई ॥
धरती भार सहै प्रभु वाको चिरजीवै तुव बारौ।
रच्छा बिस्नु करैंगे वाकी इतनौ मतौ हमारौ ॥१३॥
सुनि सुनि बचन नंद पुरजन के बिमल उठे मनमाहीं।
मोह सिन्धु सुख सिन्धु बढै मिलि कैसे पावैं थाही ॥
गहवर गरे बचन नहिं आवै धरि धीरज फिर बोले।
सुनहुँ सकल मिलि कहिव गर्ग मुनि बचन प्रेममय खोले ॥१४॥
सुतके जनम करम जिन भाखे लच्छन लच्छन गाये।
तुमसों कहौं कहा मति मेरी मनहूँ पार न पाये ॥
सतजुग सेत पीत त्रेतामें द्वापर अरुन भयेजू।
कलि में कृस्न जुगनि चारयौ में चारयौ बरन भयेजू ॥१५॥
या सुत सों फिरि कहे महामुनि सत्रु पच्छ नहिं रैहै।
या सौं बैर भाव जो माने ताहि नासु करि दैहै ॥
याको कहा नाम लैं याके संकट निकट न आवै।
अष्ट सिद्ध नव निद्ध अमित फल सहजहिं में नर पावै ॥१६॥
याके जन्म कर्म को जानैं कहै जु जो कछु जानै।
चलती बेर कह्यौ मुनि मोसौं बिस्नु रूप सम मानैं ॥
सो सुत पुन्य प्रताप तुम्हारे. बिघ्न अनेक बचायौ।
तुमरी कृपा कृपा विप्रन की चौथे पन में पायौ ॥१७॥
सुनि ये बचन सकल ब्रजपति के सब मिलि ऐसौ भाखैं।
काहि न होहु नंद बड़भागी जो मति ऐसी राखैं ॥
धनि धनि नंद धन्य जसुधा वह धन्य घरी दिन लेखैं।
धनि ब्रजभूमि धन्य ब्रजवासी रूप सिन्धु नित देखैं ॥१८॥

---

* यह कथन अयुक्त है क्योंकि कृष्ण का जन्म द्वापर में हुआ था।

सुकृती महाँ कहौ को ऐसौ को ऐसै फल पावै।
को जग पुन्य पूर कौ भाजन को ऐसै सुत जावै॥
जो कछु गर्ग मुनीस्वर भाख्यौ सो सब जानौ साँचौ।
यों कहि उठे सकल ब्रजवासी स्याम चरन मन राँचौ॥१६॥

दो०—अतुल बीर्ज धारी समुझि मुनि मति मन में आनि।
ताही दिन तैं नंदसुत परमेस्वर करि जानि॥ २०॥

गीतिका छंद—

अब कहहुँ तुमसौं सुनहु सौनक सुमति श्रोता जानि कै।
जिहि बिधि करी छल रहित करि सुरराज अस्तुनि आनि कै॥
जहँ सघन कुंज कदम्ब गह्वर हरखि हरि बिहरत जहाँ।
प्रभु जानि जब ये कंत आये सहस लोचन हैं तहाँ॥ २१॥
सिर मुकुट क्रीट बिराजहीं दिन मनि किरन सोभा लसै।
छवि श्रवन मुक्ता हल उदै वह हृदै मनि माला बसै॥
भुज लसत अंगद करन कंकन मेखला कटिसौं कसी।
तन उपर भूषन दिव्यभूषित दिव्यछवि चहुँधा लसी॥ २२॥
कर करे संपुट नमित कंधनि अग्रकामधुका करै।
इमि गये करुना सिन्धु तट पर प्रेम उर सरसी भरे॥
लखि साँवरी नव मृदुल मूरति रहे इकटक हेरिकैं।
फिर करत बिनती अमर पति मन धरत धीर जु घेरिकैं॥ २३॥
मुहि रच्छ रच्छ कृपाल करुनानिधि कृपा कौं कीजिये।
भयहारि हे दनुजारि सरनागत अभै पद दीजिये॥
ब्रज प्रलै घन बरसाइ मैं अपराध करतन नाज क्यौ।
परब्रह्म अज जान्यौं नहीं प्रभु राजसी मद सौं छक्यौ॥ २४॥
अब देव तुम समरथ्थ हौ दूसन छमापन कौं करौ।
गुन दोस कौ न बिचार अपनी बानि कौं चितमें धरौ॥
प्रभु त्रिगुनमय तुमही कहैं फिरि त्रिगुन तें न्यारे रहौ।
उत्पत्ति पालन प्रलय कारन धर्म कौं तुमहीं लहौ॥ २५॥

सब बिस्व तुमरे उदर में सब बिस्व के उरमें बसौ।
चर अचर चेतन सक्ति तुमरी निगम तत्त्वनि में लसौ॥
दुज धेनु दुष्ट सतावहीं अवतार धारन कौं करौ।
भुवभार ताहि उतारि खल संघारि दुख सबं के हरौ॥ २६॥

दो०—इहि प्रकार पालन करत तुरी* ईस जगदीस।
गुनहिं माफ करि करि कृपा बिनय करत सुर ईस॥ २७॥

तारक छन्दः—प्रभु दीन दयालहिं आरत ध्यावैं,
करुनाकर ताकहँ बेद बतावैं।
सुनि बासव की बिनती अति प्यारी,
मुसक्याइ कहैं तहँ कुंजबिहारी॥ २८॥
वह बानि गंभीर लगी कहु कैसी,
उर सीतल लौं घन की धुनि जैसी।
जग प्रान सजीवनमूरि बखानी,
उमगी सुख सिन्धु तरंग प्रमानी॥ २९॥
सुरराज सुनौ यह रीति हमारी,
नहिं पावत मोहि महा अबिचारी।
जिनके मन मान मतंग चढेजू,
जिनके मन राजमदंध बढेजू॥ ३०॥
जिनकी बिसया पर प्रीति प्रकासी।

---

* वेद में वाणी के चार भेद हैं–परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। सायण के अनुसार इस को नादात्मक वाणी भी कहते हैं। यह मूल आधार से उठती है अतः इस का नाम परा है। जिसे केवल योगी लोग ही जान सकते हैं वह पश्यन्ती है। जब वाणी बुद्धिगत होकर बोलने की इच्छा उत्पन्न करती है तब उसे 'मध्यमा' कहते हैं। अन्त में जब मुंह में आकर बोलने की इच्छा करती है, तब वह वैखरी, या तुरी कहलाती है। तुरी, मोक्षावस्था को भी कहते हैं।

जिनके परद्रोह दया उर नासी।
जिनके छल दम्भ असाच अगोऊ,
जिनके तन हिंसक बाधक सोऊ ॥ ३१ ॥
जिनके उर कोह हरौल बखानौं,
जिनके पर पीर प्रतीत न जानौं।
जिनके मन मोह महोदधि माँही,
मिलि मीन भये बिछुरैं छन नाहीं ॥ ३२ ॥
जिनने षट सत्रु सरीर न जीते,
जिनके सब ज्ञान मनोरथ रीते।
जिनकी मति संतसभा नहिं लागी,
जिनकी मति प्रेम तरंग न पागी ॥ ३३ ॥
जिन स्वारथ साधन ही सब जान्यौ,
जिन नैं परमारथ कौ नहिं आन्यौ।
जिनके सुख इन्द्रिनस्वाद कह्यौ जू,
तिनि तैं निसिबासर दूर रह्यौ जू ॥ ३४ ॥
सुनु सक्र कहौं मुहि जे जन प्यारे,
जग माँहि रहैं जग ते फिर न्यारे।
तिनके अभिमान न लोभु अथाहीं,
जिनकी छल छुद्र छुवै नहिं छाँहीं ॥ ३५ ॥
तिनि राजसि रीतिनु का समझानी,
मम कायक बाचक भक्त प्रमानी।
तिनके परमारथ कौ पथ भारी,
तिनके पर पीर दया अधिकारी ॥ ३६ ॥
जिनके धन धर्म धुरंधर सोऊ,
तिनके नृप रंक बराबर दोऊ।
तिनके सुभ कर्म कथा अवगाहीं,
तिनकी जमराज गहैं किमि बाहीं ॥ ३७ ॥

तिनकी गति दीन अधीन न काहू,
तिनके मम आस सुनौ सुरनाहू ।
तिनके परि पूरन प्रेम प्रकास्यौ,
तिनकौ उर अंतर कौ तम नास्यौ ॥ ३८ ॥
तिनकौ मृदु चित्त सुभाउ बखानौं,
तिनकौ हियको मल कोप न आनौं ।
तिननैं पर दोष नहीं अवगाह्यौ,
तिननैं पर द्रव्य बिलास न चाह्यौ ॥ ३९ ॥
तिनके पर नारि विकार न आयौ,
तिनके हिय मोहु महीप न छायौ ।
तिनके यह ज्ञान न आन नबेरौ,
तिनके निहचै उरमें घर मेरौ ॥ ४० ॥

दो०—सुनासीर यह समुझिकर गेह करौ सुख बास ।
सुरन सहित अमरावती बिलसहु राज बिलास ॥ ४१ ॥

इन्द्रवज्रा०—श्रीक्रस्न श्रीक्रस्न गर्वप्रहारी ।
शृंगार कौ रूप बिहारकारी ।
ब्रह्माण्ड लीला तव ईस माया ।
भूलैं फिरैं जीव करौ सुदाया ॥ ४२ ॥

सो०—नाथ धरनि पर आन, गोकुल कर्‌यौ सनाथ तुम ।
यह इच्छा भगवान, अब गोइन्द्र कहाइये ॥ ४३ ॥

दोधक०—देव सबै जुरिकैं तहँ आये, अस्तुति कै हरि के गुन गाये ।
दीनदयाल दयानिधि स्वामी, जानत हौ सब अन्तरजामी ॥
जो बिनती सुरधेनु बखानी, सो प्रभुजू सबके उर आनी ।
हे परब्रह्म अनिच्छ सदाई, सुजनन की सुधि राखहु सांई ॥

दो०—अगुन गुनामय अकथ प्रभु अज गोतीत बखान ।
बिनय करत सक्रादि सुर क्रपा करौ भगवान ॥ ४५ ॥

सो०—बिहँसे दीनदयाल, देवन सुख पायौ तबै ।
मनफूले सुरपाल, अति उत्सव मन मानिकैं ।। ४६ ।।

छप्पय०—ऐरावत गज सुंड गगन गंगाजल लिन्हिव ।
कामधुका पय पूर सकल सौजन महँ किन्हिव ।
तिहि अस्नान कराइ दिव्य भूषन पहिरावत ।
अम्बर अमल सुगंध अंग अंगनि लिपटावत ।
भनि 'मान' बेद उच्चार करि मंगल द्रव्य तहाँ धरत ।
मंदार हार पहिराइ सुर इहि प्रकार पूजा करत ।। ४७ ।।
दिसा अकास प्रकास सलिल निर्मल सरितासर ।
सुरललना करि गान तान तुंबर तालन भर ।
गिरिवर मनि गन खान प्रगट करि निकरि प्रकासित ।
रतन तटन उलछारि सिन्धु बेलानि बिलासित ।
भनि 'मान' सुमन प्रफुलित सुवन त्रिविध पवन आनंद बहि ।
करि तिलक इन्द्र अभिषेकु करि जपहिं नाम गोविन्द कहि।४८।

दो०—रसा रसन वाहत भई बसु प्रगटी बहु ठौर ।
लखि अभिषेकु खरारिकौ ते त्रिभुवन सिरमौर ।। ४६ ।।

सोरठा—संग सहित परवार कामदुघा आमोद मय ।
उमग्यौ प्रेम अपार दुग्ध धरनि छिरकत भई ।। ५० ।।

मोदक०—सुन्दरता प्रभु की अति सोहति,
कोटि मनोभव के मन मोहति ।
स्याम सरीर महाँ छवि बाढिय,
रूप समुद्र मनौ मथि काढिय ।। ५१ ।।
हेरत देव प्रभो मुख वोरहिं,
अस्तुति फेरि करैं कर जोरहिं ।
वोकि उठे तहँ राजिवलोचन,
बासव सौं कहि सोचबिमोचन ।। ५२ ।।

कामदुघा सुर संग किये सब,
जाहु घरै सुख बास करौ अब।
आइसु मानि चले सुर बंदन,
राखि हिये जन के उर चन्दन ॥ ५३ ॥

दो०—बेर बेर दंडवत करि हरि चरननि सिरु नाइ।
इन्द्रादिक गवनै अमर निजु निजु लोक सिधाइ ॥ ५४ ॥

श्रवन सुखद—सुनि त्रप स्याम संध्या जानि,
टेरे गोप गन तहँ आनि।
फेरे गोधनन के ब्रंद,
बनतें चलै घर ब्रजचंद ॥ ५५ ॥
मधुरे सुरन बेनु बजाइ,
गोखुर धूर धुंध उठाइ।
आये जान प्रान अधार,
मातनि सजे आरति थार ॥ ५६ ॥
करतीं आरती सरसाइ,
लेतीं उमगि प्रेम बलाइ।
सौरभ दिव्य देह लगाइ,
फिरि अस्नान प्रभुहिं कराइ ॥ ५७ ॥
बोली मात तहँ तिन तोर,
भोजन करहु नवल किसोर।
बिधिवत पाक बिबिध बनाइ,
ल्याई मात उर सुख पाइ ॥ ५८ ॥
भोजन करत सुन्दर स्याम,
रजनी गइ तहँ इक जाम।
भोजन अन्त बीरा पाय,
नैनन रही निद्रा छाइ ॥ ५९ ॥
सिज्या दुग्ध फेन समान,

तापर सयन करि भगवान।
सबकों देत सुख नँद नंद,
ब्रज में बसत आनँद कंद ॥ ६० ॥
सुन नृप कथा अब तहँ और,
हे कुरु बंस के सिरमौर!
उहि दिन नंद करहिं उपास,
एकादसी पुन्य प्रकास ॥ ६१ ॥
संजम नेम प्रेमहिं नाँधि,
श्रद्धा द्वादसी कह साधि।
ब्रजपति उठे प्रात अन्हान,
गमनैं निसा सूछम जान ॥ ६२ ॥
हरबर धसे जमुना नीर,
आये बरुन भृत्तक धीर।
जिनि गहि लये बाँह ब्रजेस,
लैकरि गये जहाँ जलेस ॥ ६३ ॥
देखत करथौ जिन सनमान,
राखे निकट प्रभु पितु जान।
यातें राखियौ ब्रज ईस,
दरसन चाहनैं जगदीस ॥ ६४ ॥
अब नृप सुनहुँ पर्म उछाह,
इत जागे सकल ब्रजमाँह।
सब भाखत फिरैं यह हेत,
नाहिन सुनैं नंद निकेत ॥ ६५ ॥
मंदिर भयौ भारी सोर,
जागे कृपानिधि दृगकोर।
सुनि करि करिव'हरि हँस बोध,
लीन्हौं बरुन करतब सोध ॥ ६६ ॥

कीन्हौं बरुन लोक प्रयान,
काहूँ मरम कछुव न जान।
श्रीपति जानि आये गेह,
जलपति उठे अधिक सनेह ॥ ६७ ॥

लीन्हैं आइ आगे आन,
ल्याए सदन में सुख मान।
प्रभु कौं उच्च आसन दीन,
छवि लखि भयौ मन तहँ लीन ॥ ६८ ॥

माथे मुकुट अलक उदोत,
कुंडल मकर झलझल होत।
गौरव अमल गोल कपोल,
मनकौं हरत लोचन लोल ॥ ६९ ॥

मुख छवि रहे ललकि निहारि,
सोडस कला ससि बलि हारि।
उर बनमाल सुखमा मूल,
कटिसौं कस्यौ पीत दुकूल ॥ ७० ॥
चरनन लसत लाली जोस,
आभा मंजु कंजनि कोस।
मोहन म्रदुल मूरति स्याम,
बारैं कोटि कोटिनि काम ॥ ७१ ॥

ल्याये रतन भरि भरि थार,
अच्छत फूल फल दधि धार।
चंदन अगर केसरि गार,
पूजा करत वेद बिचार ॥ ७२ ॥
बोले अम्बुपति कर जोर,
बूडे रूप सिन्धु हिलोर।

आये कृपा करि जगनाथ।
कीन्हौं अजिर आय सनाथ ॥ ७३ ॥
पूरन पुरुस ब्रह्म अनूप,
परतैं परैं सुनियत रूप।
धरि जगपालना हित देह,
गो दुज दीन के अस्नेह ॥ ७४ ॥
भारी भरे मम अहमेव,
ल्याये पिता कौं गहि येव।
तुव जानैं न अनुचर भेव,
छमिजे गुनह देवनदेव ॥ ७५ ॥

दो०—यहि प्रकार अस्तुति करी बरुन बारुनी ईस।
अति प्रसन्न लै जनक सँग बिदा भये जगदीस ॥ ७६ ॥

तोमर०—ग्रह ल्याइ मोहन तात, सब बूझियौ कुसलात।
सुख पाइकैं परवार, कहि धन्य नंद कुमार ॥ ७७ ॥
तहँ नंद बोलत बैन, सुनि जो सबै मतु ऐन।
वह अम्बुईस बखान, दिग्पाल ताकहँ जान ॥ ७८ ॥
बिनती करी करजोर, कहि ब्रह्म पूजि किसोर।
सुनि बात गोप सुजान, निहिचै लखे भगवान ॥ ७९ ॥
उर आइ आतमज्ञान, पर ब्रह्म कौं पहिचान।
मनमें करैं यह वोक, किमि देखिये प्रभु लोक ॥ ८० ॥

दो०—महाजोगमाया प्रबल, हरि इच्छा बलवान।
सबके मन की जानि प्रभु, जमुनहिं कर्‍यौ पयान ॥ ८१ ॥

सोरठा०—तिहि थल गये लिबाइ, जहँ अक्रूर बिलोकि हैं।
जन के मन सुखदाइ, सब के मन माया हरैं ॥ ८२ ॥

करहची०—चलि जमुनतीर, धसि अमल नीर।
उर धरि बिलास, लखि अति प्रकास ॥ ८३ ॥

छप्पय०—कोटिन चंद मरीचि कोटि दिनकर कर झलकन ।
कोटिन तडिता तडप कोटि चिन्ता मनि चमकन ॥
स्वयं तेज आभास नास ताकौं नहिं लहियतु ।
नित्यानंद अपार पार माया के कहियतु ॥
परब्रह्म धाम परतैं परैं कहि 'गुमान' मुनि मन थकिव ।
यह अवगति गोपाल की सो गोपन सहजहिं लखिव ॥ ८४ ॥

दो०—अकथ अदृष्ट अगम्य कहि दुर्लभ सुरन बखान ।
बेद पार पावैं नहीं किमि कहि सकै 'गुमान' ॥ ८५ ॥

तोटक०—
प्रभु काढि लिये जलतैं जनहैं, जनु स्वप्न भ्रमैं उनके मनहैं ।
वह ब्रह्म अलोप सुलोक वहाँ, मनिजोट मरीचिन जोति महाँ ॥८६॥
तिहि कौं तकि भौंचकि पाइ रहे, चक चौंधि भरे नहिं जात कहे ।
धरि धीरज स्यामहिं देखत हैं, धनि धन्य सुजीवन लेखत हैं ॥८७॥
करि अस्तुति वेद बिचार लिये, उमग्यौ तहँ ज्ञानसमुद्र हिये ।
प्रभु जान लयौ उर ज्ञान भयौ, तिनकौं ममता अब मोह दयौ ॥८८॥

दो०—हरिमाया प्रेरित भये तिनके हृदय निदान ।
ताही छन श्रीक्रस्न कौं पूरब सम पहिचान ॥

सोरठा०—ऐसे जे भगवान जा माया मोहित अमर ।
गोप तिन्हैं किमि जान निगम नेति करि ध्यावहीं ॥९०॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द वृन्ददायिन्यां शरच्चन्द्र चारुचन्द्र मरीचिकायां द्विजगुमान विरचितायां श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिकायां गोपी निजधाम दर्शनो नामा चतुर्दशप्रकाशः समाप्तः ।

पञ्चदश प्रकाश

सोरठा०—यह पन्द्रहैं प्रकास, रहस केलि आरम्भ हुव ।
कहि हैं सरद बिलास, मुरली सुर मोही त्रिया ॥ १ ॥

गीतिका०—

निसि सरद सुखद सुहावनी मन भावनी देखी तहाँ ।
ब्रजचंद आनँद कंद के आनंद उपज्यौ है महाँ ॥
मुख अति प्रसन्न बिराजहीं कछु भइ इच्छा आनि कैं ।
वह समुझि इच्छा जोग माया थल रच्यौ सुख मानि कैं ॥ २ ॥

भरि अमी रस सम्पन्न ससि सोडस कला करि कैं बढ्यौ ।
तम तोम तेज बिदारि प्राची द्वारि दीपति लै कढ्यौ ॥
दिगतें निवेसित देखिये ससि मिल्यौ झलकन जाल में ।
मनि जटित बैंदा लसत मानौं दिग्बधू के भाल में ॥ ३ ॥

सतो गुन तनु धारि जनु अनुहारि परमानन्दु है ।
नखतेन्द्र उदित अमंद अद्भुत अमृत रस कौ कंद है ॥
छवि झलझलावत बढतु आवतु चढतु आवतु व्यौम में ।
तिहि तरकि तारन के कतारे लंक दाबैं जोम में ॥ ४ ॥

लखिये अखंडल सुधामंडल मंडि सोभा साजु है।
जनु रमामुख सुखमा भर्‍यौ कछु फरतु पटतर आजु है॥
नभ अंक लगिव मयंक देखौ अति निसंक बिराजही।
† ... ... ॥ ५॥

जगमग निसाकर रगमग्यौ नभ दिग प्रकासित ह्वै रहीं।
झलझल मरीचें पसरि नीचें जमुन बीचिन छ्वै रहीं॥
मृदु भूमि सम सुन्दर सुहाई लसत मनकौं लागिनी।
हिमकर किरन उज्ज्वल परी तिहि रंग की अनुरागिनी॥ ६॥

जहँ फटिक सी छिति छिटकि फैली चटक चंदन चाँदिनी।
मनु कुमुद कुंद कदम्ब के मकरन्द छवि की नाधिनी॥
जनु गगन गंगा सित बनज बन मधु ढर्‍यौ छिति आनि है।
जनु मल्लिका रुरतैं कढी छवि बढी इहि अनुमानि है॥ ७॥

जनु हीर चीरैं चिलक चिलकत झलक मुक्तामाल में।
जनु भूर धूर कपूर की रहि पूर भूतल जाल में॥
जनु छीरनिधि कौ फेनु फैल्यौ उमडि तरल तरंग है।
जनु तार तवकन ओप ओपी तदपि कीन्हौ रंग है॥ ८॥

फिरि बन सघन प्रफुलित सुमन मन रम्यौ सुन्दर स्यामकौ।
उमग्यौ सुगंध अनंद आवत तहँ कदम्बन दामकौ॥
उमड़ी लता सुमड़ी द्रुमन झुकि झुमड़ि भूतल छ्वै रही।
इक सुमन गुच्छन लच्छ लच्छन स्वच्छ भार रुरै रही॥ ६॥

इक कलिन कलियानी लता अभिरी बिटप मन कौं हरैं।
इक तुनक तुंग बितान सी कुसुमानि झालर कौं करैं॥
इक फलनि फरि फरि हरी बेली रही लिपटि तमाल सौं।
इक रहे नैन बिटप तहाँ फल फूल दल रस भार सौं॥ १०॥

---

† इस छंद का चौथा चरण मूल पुस्तक में नहीं लिखा है। इस वर्णन में उत्प्रेक्षालंकार क बहुत उत्तम उदाहरण ह।

सुख रंजि प्यारी मंजरी नव मंजु जो मन कौं हरैं।
कहुँ कहुँ नवल दल ललित उलहे ललित लाली कौं धरैं॥
चल भरतु फिरि फिरि ढरतु बुंदन धुंध उडत पराग कौ।
चल गंधवाहक त्रिविध आवत उमगि सर अनुराग कौ॥ ११॥

बन भ्रमत भौरत फिरत दौरत भौंर भौंरनिपै तहाँ।
रस भार तकि गुंजार करि मकरंद पीवत है जहाँ॥
* खग धुनि कुहरि कोकिलन के कूक केकिन की मची।
चहुँ ओर चारु चकोर चितवन चंद सौं तिन की मची॥ १२॥

मृग देत फेरी माल बधि बन जाल में फिरिबौ करैं।
सुख हाल में सब जीव सो नंदलाल कौं तकिबौ करैं॥
उठतीं अनन्द कलिन्द नंदिनि की तरंगे तुंग हैं।
तन पीन तहँ पाठीन जल छहरात उछल उमंग हैं॥ १३॥

बह रेनु कोमल पुलिन की प्यारी सदा मन भावनी।
तिन पर छपाकर की छटा फैली सु परम सुहावनी॥
जल लहरि तैं छुटि सुखद सीकर उचटि कैं तापै परैं।
फिरि मालती के पुहुप कौं मकरन्द कन जापै भरैं॥ १४॥

तहँ करहिं हीतल महा सीतल सुमिलि सोभा कौं धरैं।
फिरि सरद आतप तपन कौ संताप देखि बिदा करैं॥
बँधि रहे दिव्य सुगंध डोरे चहूँ ओरन ह्वै रहे।
निजु धाम करहिं मलिन्द जन मधुपी मदंध सु ह्वै रहे॥ १५॥

तहँ सुखनिकौ निधि छविन कौ निधि पुलिन ऐसो सोहियौ।
चित चुभ्यौ नवल किसोर सुन्दर स्याम घन मन मोहियौ॥
जहँ रसिकराइ प्रबेस करि सोभित करिव छवि छाइकै।
उठि अंग में उमगी उमंग अभंग लहरैं आइकै॥ १६॥

---

* यह पाद अशुद्ध है, इसमें छंदोभंग दोष है।

वह मृदुल मूरति परम सुन्दर नव किसोर बिराजहीं।
तहँ रूप अद्भुत लसत सोहन जगत मोहन राजहीं॥
तनु नील नीरज नील नीरद नील मनि छबि लै बढ्यौ।
रससार के जनु भार भर शृंगार सागर तैं कढ्यौ॥ १७॥

तन की मरीचैं सुधासी चलि चहूँ दिसि पै छूटियौ।
जल सिन्धु जनु सुख सिन्धु सुखमा सिन्धु मैंडे फूटियौ॥
सिर पुरट क्रीट अजीत छवि ललकत छविन के गोट हैं।
मनिगन मयूखन जुटत जोतन कोट कोटन जोट हैं॥ १८॥

सुचि सचित कुंचित असित अलकैं परम सुन्दर स्याम हैं।
तुरतहिं कढी निर्मोख तजि जनु फनिक की बिब बाम हैं॥
रहि श्रवन कुंडल मकर किरनन निकर झल झलकावहीं।
झकमकत छाँही गंड माहीं परम सोभा पावहीं॥ १९॥

वह लाल रुचि करि भाल पर मृगदानु दीन्हौं बिंद है।
जनु अमीरस पीवन रसिक लागौ ससांक मलिंद है॥
भ्रुव असित तम कौ सार कै चट सार भाव अनेक की।
मन लसत है शृंगार रेखा रेख खाँची लीक की॥ २०॥
सुख मान बल नैननि महाँ उपमा कहौ को साजहीं।
जिन में कुसेसय कोस की वह ललित लीला राजहीं॥
मुख सोभ धर दुख दोस हर देखत हियौ सन्तोखिये।
जिहि रंक कर दीन्हौं ससी ऐसौ त्रसंक बिलोकिये॥ २१॥

इमि अधर सधरन मधुर लाली कहौ किमिजु बखानिये।
जनु अमीरस हित पान कौं लागी अरुनता आनिये॥
वह चंद्रहास प्रकास की उपमा कहाँ सुखमा फबी।
फिरि चमक दसनन की चितै चपला चमक घन में दबी॥ २२॥
चितवन चिबुक की गाडनै छबि वाढनै मन मोहियो।
जनु महामन मातंग कौ वह काम वोदी खोदियो॥

दल सहित तुलसी मंजरी बिच कुसुम कलिकन संगहै ।
बनमाल ऐसी लाल उर जिहि भरत भौरैं भ्रंगहै ॥ २३ ॥
बिच बाहु अंग करन्न कंकन मेखला कटिसों कसी ।
भुज मूल पीत दुकूल फहरत तडिप तडिता की लसी ॥
हिय की हुलासिनि काछिनी छवि आसनी सी लेखिये ।
जुग जंग ललित त्रिभंग ठाडे मदन मूरति देखिये ॥ २४ ॥
मृदु अरुन कमलोदर चरन लखि पाप कुधर बिलात है ।
जिन कै भनैं त्रैताप की जुर जरन प्रबल सिरात है ॥
नख चंद्र चारु उदोत की इहि जोत किरनैं जागि हैं ।
मुनि मन तपोधन बिमल मानौं रहे चरनन लागि हैं ॥ २५ ॥

सोरठा०—सप्त सुरनि अनुराग मुख मुरली पूरत भये ।
कढे बहे खटराग तीस रागिनी सहित तहँ ॥ २६ ॥

दो०—सो सुर सरसौ उर लग्यौ ब्रज बनितन कौं धाइ ।
थलचर जलचर गगनचर मोहि रहे सुख पाइ ॥ २७ ॥

मालिनी०—सुनि धुनि बन बंसी चौंकती चित्त प्यारी ।
अझक झझक डोलैं लोल नैनानबारी ॥
दस दिस अवलोकैं राजती स्वर्न अंगी ।
म्रग ढिग बिछुरैं ते हेरतीं ज्यौं कुरंगी ॥ २८ ॥

उठि उठि तिय धाईं छोडि पीकौं सलौनी ।
अति तन सुकुमारैं मत्त मातंग गौनी ॥
चलि चपल मृगाक्षी अंग भूली नबेली ।
हरिबर रसना लै हार सी कंठ मेली ॥ २९ ॥
इक कटि तट प्यारी मुक्त मालानि बाँधैं ।
कुच कलस उघारैं कंचुकी कौं न नाधैं ॥
क्रस कटि सुख दैना अंजती एक नैना ।
चल चपल सुभाखैं कोमलांगी सुबैना ॥ ३० ॥

झरत सुमन चोटी चारु छोटी सिधारैं।
बिमल गिरत मुक्ता माँग कौं ना सम्हारैं॥
म्रदुपद इक दैनी जावकै जोत कीन्हैं।
मनिन जटित बैंदा सीस पै मोम दीन्हैं॥ ३१॥
इक सुमुख सहेली अंग ढाकैं न प्यारे।
ससि मुख इक खोलैं चाहतीं कान्ह कारे॥
बिपुल सुमन बैनी भारसौं हार थाकी।
चलत लचक जातीं लंक के खीनताकी॥ ३२॥
असन करत छोडैं कामनी काम साला।
हरि मन हरि लीन्हैं भावते नंदलाला॥
सठ हठ इक रोकी गोपनैं आपु नारी।
तन बस मन नाहीं क्यों रुकै प्रेम प्यारी॥ ३३॥
इमि तन तिहिं छाँड्यौ सर्प निर्मोख त्यागी।
हरि मिलि चलि आगे रूप माधुर्ज पागी॥
मुख कमल प्रकासी काम के रंगमाती।
उनमद गतिबारी सीघ्रता साधजाती॥ ३४॥
बन सघन बिहाये मान आनंद लेखे।
ब्रजघन पिय प्यारे मित्रजाकूल देखे॥
कनक बनक प्यारी हेरतीं स्याम ओरी।
जनु सरद ससी कौं चाहती हो चकोरी॥ ३५॥
इकटक द्रग पागे रूप में द्रष्ट लागे।
चलत पलक थाके मीन की चाल त्यागे॥
कहि निठुर दुलारे नंद के लाल प्यारे।
सकल ब्रज बधूटी हैं सुनौ बैन भारे॥ ३६॥
बन सघन मझायौ आनि सोभा उज्यारी।
कहि कहि नव बाला कौन हेते सिधारीं॥

कलपद्रुम लतासी मंजु सोहौ नबेली।
पिय परम पियारे छाँडि आई अकेली॥ ३७॥

नहिं नहिं यह नीकी नीत मो मान लीजै।
पर पुरुस बिसैजू भूल चित्ते न दीजै॥
प्रफुलित बन देखौ चारु सोभा जगी है।
ससि किरन सुहाई भूमि तैसी रँगी है॥ ३८॥

थल सकल निहारौ बात जीमें बिचारौ।
मिलि सकल सयानी फेर गेहे सिधारौ॥
सुनि सुनि प्रभु बानी अंग सूखी सहेली।
जनु तुहिन सताई हेम की चारु बेली॥ ३९॥
तनमन झुरसानी चित्त आनंद दीनौ।
जनु बढत लताकौं अग्नि में दाह कीनौ॥
उर सहि मससानी सोक में बाम सोकी।
जनु उदित ससी के अंक में मंक कोकी॥ ४०॥

बिरह अनल झारैं छोड़तीं दीह स्वासा।
अधर मधुर सूखे नामियौ काम आसा॥
थरथर थहराईं दीप की जोत ऐसे।
सदल कमल काँपैं पौन की झौंक जैसे॥ ४१॥
बिलखहिं तिय ठाढी अंग बाढी सुभाएँ।
पदनख छिति लेखै सीस नीचैं नवाएँ॥
म्रग दृग डबकीले देखिये सोभ साजैं।
अमल सजल मानौ मीन से मंजु राजैं॥ ४२॥
झल झल फिरि कैं कैं जोरतीं जोर सोहैं।
तिय सकल रुझैकैं बोलतीं तान भोहैं॥
नवल पिय तुम्हैंजू बूझियेजू न ऐसी।
कहत सदन जाहू बात लागे अनेसी॥ ४३॥

दरसतु तुम सूधे साँवरे रूप भारे।
जल कपट भरे जू लाल हैं नैन तारे॥
जिमि बधक म्रगी कौं गाइ कैसौ रमावै।
फिरि सुबसन वाकौ जो करै चित्त भावै॥ ४४॥
कुसुम कलित सिज्या चारु सोधैं सम्हारी।
तिहि पर पिय प्यारे कंटकै धार डारी॥
अमि परस रसीलै प्रेम सौं पान कीन्हौं।
बिसम बिस सुपीछै घोर कै फेर दीन्हौं॥ ४५॥
मलयन सब अंगै रंग सीरौ चढायौ।
अनल झहर झारा घेर कैं सो लगायौ॥
मुख सरस सरोरौ सोभ साजै सभागैं।
दृग छिपत छबीले देखि कैसे सु त्यागें॥ ४६॥
हँसनि लसनि फाँसी चित्त फाँसे हमारे।
सुरझहिं अब कैसे नंद के हे दुलारे॥
समर सर सलौने नैन ये तान मारे।
ग्रह कहँ किमि जाहीं पाँइ ना जात धारे॥ ४७॥
तन सघन घटा सौ देखि नैमै निबाहैं।
मन तृषित पपीहा स्वाति आनन्द चाहैं॥
तुम कठिन कठोरे बैन भाखे सयाने।
अति निपट प्रबीने कोमलै लाल जाने॥ ४८॥

दो०—कछु रिस में रसमें रहसि इक रुख कहि समुदाइ।
सकल त्रियन के बचन सुनि कमलनैन मुसक्याइ॥ ४९॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्दवृन्द दायिन्यां शरचन्द्र चारुमरीचिकायां द्विज गुमान विरचितायां श्रीकृष्णचन्द्र चान्द्रिकायां रहसि केल्यारम्भ वर्णनो नामा पञ्चदशप्रकाशः समाप्तः।

———

षोडश प्रकाश

दो०—यह सोरहें प्रकास में गोपिन सहित गुपाल ।
नृत्तगान विद्या रचहिं केलि कलानि रसाल ॥ १ ॥

भुजंग०—

सुनैं बैन बालानिकै स्याम प्यारे ।
भिदे अंग में काम के बान मारे ॥
भई जानि इच्छा तहाँ जोगमाया ।
सम्हारीं सबै अंगना रूप काया ॥ २ ॥

महा दिव्य शृंगार सोभा प्रकासी ।
किधौं रूप के सिन्धु ते ये निकासी ॥
सुरी आसुरी पन्नगी देखि मोहैं ।
घृता ची घनी मैनुका मंजु को है ॥ ३ ॥

किधौं पद्म के कोसतें जोस लीन्हैं ।
कढी कोटि पद्मा प्रभा कोटि लीन्हैं ॥
मिली भामिनी भावते स्याम कैसे ।
मिले लोल कल्लोलिनी सिन्धु जैसे ॥ ४ ॥

जुरी मंडली मंडि भूमण्डली में।
उठी नाद कल्लोल सोभा थली में॥
भरी रत्न सों बाँह बाँहैं सुग्रीमा।
मृनाली मिली व्यालसों सुक्खसीमा॥ ५॥
बिचै बामके सोहते स्याम नीके।
मिली दामिनी दाम कादम्बिनी के॥
किधौं चन्द्र की मेखला चारु नीकी।
मिली रूप शृंगार सोभा भली की॥ ६॥
मनौ स्वर्ग पुहपान की गोहमाला।
मिलाई मनो नील अम्भोज जाला॥
किधौं ये तमालै मिली हेमबेली।
महा कोमलांगी लसैं यों नबेली॥ ७॥
इतै मौलि पै क्रीट आभा बिलासी।
मनौ जोति जागी चहूँघा प्रकासी॥
उतै माँग मुक्तावली के उज्यारे।
ससी अंस सोकै तमी तोम फारे॥ ८॥
इतै बाकपै चंद्रिकाभा निकासी।
मनौ सक्र कोदण्ड मण्डी प्रकासी॥
उतै फैल पाटीन पै गुल्क भारे।
मनौ नील आकास पै तेज तारे॥ ९॥
इतै कुंकमा खोर की दौर कैसी।
सुधा धाम में सो गिरा गौर जैसी॥
उतै भाल बैंदा चलै जोत मेलै।
ससी अंक में कै ससी सूनु खेलै॥ १०॥
म्रगादान कौ बिन्द सोभा समूलौ।
किधौं भारथी नील कल्हार फूलौ॥

बिचै बीच सिन्दूर के बिन्द दीन्हौं।
किधौं सूर कौ सारथी चन्द कीन्हौं ॥ ११ ॥
बढी भव्यता भू चढी चारु दीसै।
मनो काम नै तान खैंची कसीसै ॥
इतै आस्य पै छूटि अल्कैं विमोहैं।
मनो सोभ कासार सैबाल सोहैं ॥ १२ ॥
उतै दीह बैनी रुरै पीठ पाछैं।
कि काली खगे हेम के खंभ आछैं ॥
इतै मंजरी मंजु खोसैं ललाहैं।
किधौं रूप अहिलाद ऊगी कला हैं ॥ १३ ॥
उतै मल्लिका फूल बेनीन गोहैं।
किधौं हंसजा हंस के बंस जोहैं ॥
भ्रमै भक्त ताटंक आतंक कीन्हैं।
ब्रखा कन्निका सूर कौं धूरि दीन्हैं ॥ १४ ॥
हरैं सोच कौं लोचनैं लोल साजैं।
मनौ मैन के केत के मीन राजैं ॥
नचैं आमुहैं सामुहैं नैन तारे।
परे पंक रौ कोस में भ्रंग भारे ॥ १५ ॥
डुलै नाक मोती खुलैं जोत तीखे।
कला नास्य की चंद पै सुक्र सीखे ॥
मढी मंढि गंडस्थली ओप आनौ।
किधौं तर्पनी दर्पनी काम मानौ ॥ १६ ॥
लखै होठ बिम्बाफली रंग साली।
चुई सी परै सो छुवै द्रष्ट लाली ॥
दिपै दंत की पाँति कुन्दावली सी।
जिन्है देखि बानी भई बावरी सी ॥ १७ ॥

लसै मंद हाँसी मनौ मोह बीची ।
परी चंद की देखि नीची मरीची ॥
अड़ैं नैन ठोडी चितै चित्त मोहैं ।
किधौं इंदिराधाम सोपान सोहैं ॥ १८ ॥

इतै लाल उरमाल त्रैरंग ऐनी ।
ढरी नील सैलाग्र तैं कै त्रिबेनी ॥
उतै हार ही पै ढुरैं चारु नीके ।
धसैं मेरु तैं पूर मंदाकिनी के ॥ १९ ॥

बजै कंकनै चारु चूरी खनाके ।
उठैं किंकनी लंकिनी के झनाके ॥
गसी मुद्रका छुद्र ना जोत भासी ।
किधौं रूप साखा फँसी काम फाँसी ॥ २० ॥

मिली रोम रासी सुनाभी गहेली ।
उठी कै थली सोभ शृंगार बेली ॥
उड़ैं छोर पीताम्बरं रम्य कैसे ।
घटातैं छुटै ज्यौं छटा बिज्जु जैसे ॥ २१ ॥

उतै अंचलै चंचलै जोर ताके ।
मनौं पुष्पधन्वा रथी के पताके ॥
जरी जेव जामा जरी जेव सारी ।
मनौ ज्वाल मालाउ लीलै उज्यारी ॥ २२ ॥

झुमंडै झगा घाँघरै की घुमंडै ।
मनौ निर्त्त पाथोधि बेला उमंडै ॥
परे पाँइ मंजीर संजीर बाजैं ।
लगी कंज भृंगालि गुंजार साजैं ॥ २३ ॥

परैं भारते अंघ्रि लाली बिसेखौ ।
ढरी सी भरी सी धरा जोत देखौ ॥

लखैं तैस कै को नखे वोप फैली ।
करै जोससों जोतस्ना जोत मैली ॥ २४ ॥

तहाँ भेद बर्त्तें करैं *तांडुलीला ।
कसै मध्य देसी सुबुध्या सुसीला ॥

करैं न्यास येकै पदन्यास साधै ।
इकै तर्पकै झर्प संगीत नाधै ॥ २५ ॥

इकै ताल उत्फाल बाधै बिसाला ।
उडैं अन्तरिच्छै रहै दच्छबाला ॥

इकै निर्त संगीत के सास्त्र भाखै ।
इकै पान सौं तान दै मान राखै ॥ २६ ॥

इकै उच्च ग्रीमा चढी तान गावै ।
इकै खर्ज में जे गरौ लर्ज ल्यावै ॥

सुराली मिली कोकला लील जावै ।
नरी को कहै किन्नरी मोह पावै ॥ २७ ॥

उठैं बाजि बाजे सबै ये कह्यौ कै ।
मिले ताल में सोर ह्वै राग छ्वैकै ॥

बजैं बैन बीना नबीना प्रबीना ।
बजैं संग मौचंग के रंग लीन्हा ॥ २८ ॥

बजै मंडली में सुधा कुंडली है ।
म्रदंगीन के संग मंडी भली है ॥

बजैं खंजरी झंझरी औ मँजीरा ।
सुनै ध्यान छूटै मुनी मौन धीरा ॥ २९ ॥

---

* ताण्डव नृत्य पुरुषों का होता है, अतः यहाँ ताण्डव लीला असंगत है । स्त्रियों के नृत्य को 'लास्य' कहते हैं ।

बजैं मोहिनी जंत्र बाजै सितारी ।
सुरै मंडलै मंडकै भेदबारी ॥
सुरै सोहनैं मोहनैं बाज बाजैं ।
तमूरानि कौ आदि दै तार साजैं ॥ ३० ॥
चढी चारु कम्माइचै चित्त चोरैं ।
मिली जे भली दुंदुभी की टकोरैं ॥
बजैं रंजकै मंजु सौं रुंज बाजैं ।
तहाँ दौर डौरून के डौर साजैं ॥ ३१ ॥
बजै राग कौ सार सारंगिनी की ।
उठावै हिये में भली चोप जी की ॥
बजैं राग की सुंदरी सोभ भारी ।
सुनै ते लगै मुर्ज की लर्ज प्यारी ॥ ३२ ॥
जुरै भेद सौं भेदमय भेद राजे ।
महाताल साधैं बजैं सर्व बाजे ॥
बँधी राग की जोत को वै बखानैं ।
किते भेद गावैं न बागीस जानैं ॥ ३३ ॥
इकै लाल के संग जावै सुप्यारी ।
बजावै इकै तार में तार तारी ॥
हलीबंध के कंध दै कंध एकै ।
महामान कौं तान कौं कान टेकै ॥ ३४ ॥
इकै सीस चालै करै बाहु केती ।
मनौ प्रेम के सिन्धु की थाह लेती ॥
इकै भौंर दै बाल के जाल एसे ।
भ्रमैं जोर उत्ताल आलात जैसे ॥ ३५ ॥
गहैं चीर फेंकै दसा भारु ल्यावै ।
इकै मूर्छना स्वच्छ कै कै रिझावै ॥

इकै निर्त्त संगीत के सास्त्र भाखै।
इकै पानि सौं ताल दै मान राखै॥ ३६॥
इकै कान्ह के गान सौं यों हुलासी।
रही रीझिकै चित्र की पुत्रकासी॥
इकै वोष्ट दै अंगुली दृष्ट पागी।
थकी हेर कै जे छकी तान लागी॥ ३७॥
इकै राग कौं लै अलापै सुनाकी।
किसोरी उठी बोल कै कोकिला की॥
इकै नाद उन्नाद कै मौन धारै।
बिंधे कंज में भृंग गुंजार भारै॥ ३८॥
इकै स्याम के नैन सौं नैन बाँधै।
मनौ मैन के पाइ के दाव साधै॥
इकै स्याम ग्रीवा भुजा में लगावै।
कहै येक येजू भली तान आवै॥ ३९॥
इकै जोरि कै हाथ सौं हाथ लेती।
फिरै गावती कुंज में मंजु लेती॥
इकै लाल के आस्य पै डीठि डारै।
पिये रूप माधुर्जता मौन धारै॥ ४०॥
इकै आस्य की आस सोभा निहारै।
चकोरी चितै चंद सौं कै बिहारै॥
इकै ग्राम तीजै उठी गाइ नीके।
लगी तान प्यारी हृदै आइ पीके॥ ४१॥
उठै रीझि कै स्याम ने बाँह कीन्ही।
तिहै आपनी पुष्प की माल दीन्हीं॥
कहै आइ एकै अजू जो रिझावौ।
अहो फेर प्यारे वही तान गावौ॥ ४२॥

इकै स्याम कौ स्वेद पौंछै सुनैनी।
प्रभो केस छूटे सम्हारे सुनैनी॥
इकै पुष्प पंखीनि ढोरै पियारी।
मनौ भौन भौ भाइ के मोद भारी॥ ४३॥
इकै छोर कै खोल बीरा खवावै।
इकै स्याम कौ पान उच्छिष्ट पावै॥
इकै स्याम के कान में बान गाँसै।
किती हास की तर्कना जो प्रकासै॥ ४४॥
तहाँ फेर कै निर्त्त कै प्रेम भोरे।
बजैं सर्व बाजे बँधे रागडोरे॥
बढ़ी निर्त्त में येक येकै गदेलै।
लसे हार टूटे खसे फूल फेलै॥ ४५॥
छुटे केस वक्षोज पै वोज जोहैं।
फनी छुद्र के रुद्र के सीस सोहैं॥
झरै मालती फूल बेनीन नाँधैं।
उडैं मेघ ह्वैकै बगा पाँति बाँधैं॥ ४६॥
रुरै माँग मुक्ताल सोभा सुहाई।
मनौ सोम पै सुर्धुनी धार धाई॥
ढरैं सीस ते भूमि जलजात ऐनी।
गिरैं व्योम ते स्वच्छ कै रिच्छ सेनी॥ ४७॥
छुटी कंचुकी सोभ बक्षोज साजैं।
तमीचुर सह्यौ कोक आनंद राजैं॥
लसैं स्वेद के बुंद गंडानि कैसे।
परी पद्म के पत्र पै ओस जैसे॥ ४८॥
रहे देव आच्छाद ह्वै व्योम माहीं।
लखैं निर्त्त कौं देह में ज्ञान नाहीं॥

धरातैं उठैं सो छरा राग गावैं ।
सुनैं अप्सरा कान दै मोद पावैं ॥ ४६ ॥
सुनैं राग की सान गंधर्व लाजैं ।
तहाँ देखि कै सो महागर्ब भाजैं ॥
कहैं किन्नरै तुम्बरै गान भारे ।
रहे आइ कैं अम्बरै हेर हारे ॥ ५० ॥
रह्यो चौंधि कै सो थके नैन तारे ।
तहाँ पंचनाराच नाराच डारे ॥
सने तान कैं रागिनी राग भोरे ।
उठे रीझ कैं स्याम कौं हाथ जोरे ॥ ५१ ॥
तहाँ देखि विद्याधरा जे बखानी ।
गईं फूल में भूल के वेदबानी ॥
म्रगा आदि पच्छीन के बृन्द मोहै ।
द्रवैं पाहनैं जू कहौ और कोहै ॥ ५२ ॥

—स्यामा अरु स्याम रहस निर्त्तत मिलि संगै ।
सरद निसा चारु चंद, कुमुदिनि मुदि उदित बृन्द,
आवत आनंद मंद, पौन की उमंगै ।
खग मृग सुत सहित बंध, सुक पिक कलरव प्रबंध,
प्रफुलित बन सुमन गन्ध, गुंजत तहँ भृंगै ।
मेले भुज भुजन ग्रीव, सुखमा सुख सदन सींव,
परख हरख मत्त पीव, बरसत रस रंगै ।
मुकुटनि भ्रकुटी मरोर, मुख तट पट चटक कोर,
लटक मटक नचत जोर, मिलि मिलि अधरंगै ।
उघटत घटना रसाल, तत थेई थेई बिसाल,
तारिन दे तरल ताल, तान की तरंगै ।
थुम थुम थुम थुमक थुंग, दि दि दि दि दि दि दि दि दुलंग,

क्रत धुनि क्रत धुनि क्रत धुनि धुलंग, बजत गति म्रदंगै।
प्रनव बेन बीन मंजु, झर्झरात झाँझ रुंज,
मुरज * जत बजत रंज, बाजत मुँह चंगै।
झमझमाइ झमक लाल उडप तरप सहित बाल,
छिति तल पग तलन ताल, भरत नहीं भंगै।
श्रक उर द्रग म्र † पुनीत, खंजन झख लिये जीति,
निर्त्तत संगीत रीत, उझक झक उतंगै।
लेती गति जमक ठमक, चौकाकी चिलक चमक,
भूषन झक मकत झझक, झलझल झल अंगै।
झरपत उछलात गात, थिरकत अधफर थिरात,
भ्रमत भाव जनु अलात, लजित छवि अनंगै।
म्रदु पग रज जलज पात, नूपुर धुनि सुनि सुहात,
झन झन झन झन झनात, उपज जति उपंगै।
मर्कत कलधौत जटित, रसना कटि निकटि रटति,
लटपट नहिं नैंक अटति, हंसन अनुरंगै।
सुचि कच छूटे बिलोल, श्रमकन उमगे कपोल,
बिलुलित हिय हार डोल, बिथुरीं मनि मंगै।
गंध्रप गुन गन निहारि, किन्नर उर रहे हारि,
बरसत सुर सुमन धारि, करि करि दिल दंगै।
नारदादि महा ज्ञानि, सारदा न कह्यौ जानि,
सो 'गुमानि' का बखानि, प्रेम की अलंगै॥ ५३॥

दो०—राग निर्त्त अनुराग कौ उमडि बढ्यौ जब रास।
कहि 'गुमान' का बरनिये करि करि बुद्धि प्रकास॥ ५४॥

---

* 'मुरज लजत' ऐसा पाठ होना चाहिये। † यहां एक अक्षर छूट गया मालूम होता है, सम्भवतः 'मृग' पाठ होगा।

सो०—सोभा को पय पूर नर्त्त कुलाहल अति बढिव ।
राग कमठ झख पूर तान तरंगहिं उठहिं तहँ ॥ ५५ ॥

दो०—इहि प्रकार रस सिन्धु में मगन भई ब्रजबाल ।
प्रेम कसौटी लैन की मन आनी नँद लाल ॥ ५६ ॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्दवृन्द दायिन्यां शरच्चन्द्र चारुमरीचिकायां द्विज गुमान विरचितायां श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिकायां रहसि केलि वर्णनो नामा षोडशप्रकाशः समाप्तः ।

सप्तदश प्रकाश

दो०—इहि सत्रहैं प्रकास में अन्तर गति प्रभु जानि ।
बिकल बाल पूछत फिरैं खग मृग ललित लतानि ॥ १ ॥

चौ०—सुख समूह जानौं अधिकानौं, प्रेम प्रीत देखन पन ठानौं ।
अन्तर ध्यान भये पिय प्यारे, अतिसुन्दर सुकुमार दुलारे ॥ २ ॥

गीतिका०—सुकुमार प्रानअधार मोहन मदन मूरति साँवरी ।
कहँ गये सजनीछोड रजनी करी मति तिन बावरी ॥
मनहरन उरसुखकरन जसुमति ललन लाला हैं कहाँ ।
ब्रजचन्द आनँद कंद वे सुतनंद के चलिये जहाँ ॥ ३ ॥

चौ०—व्याकुल बिरह भई अति बाला, ।
चाह मीत नवल नँदलाला ॥
कल न परत तिनकौं पल देखौ ।
ज्यौं जल मीन हीन गति लेखौ ॥ ४ ॥

गीतिका०—जलहीन दीन सुमीन देखौ भई अबला हैं तहाँ ।
जिमि कुमुदिनीय चकोरनी बिन चंद मन मन्दे महाँ ॥
बिछुरी म्रगी जनु म्रगनतैं द्रग चपल चंचल यों करैं ।
तजि धीर कौं उर पीर मनमथ हाइ साँसन कौं भरैं ॥ ५ ॥

सब बिपरीत लगे बिन प्यारे, भामिनि भभरि भरीं दुख भारे।
किसलय सिखी सिखा सम मानौं, जहँ निसिनाथ दिवाकर जानौ ॥६॥
निसिनाथ जहँ दिननाथ सौ जगनाथ बिन ऐसौ लग्यौ।
लगि सुमनलाल अँगार से जब मदन जुर उर में जग्यौ॥
किरनें कलेवर बेधतीं लगि जोन्ह आतप ताप सौं।
लिपट्यौ पराग बयार लागत उरग स्वाँस प्रताप सौं॥७॥

साहस करि सिमिटी इकठौरी, कहिये कहाँ कान्ह मति बौरी।
ढूँढत चली बिपिन गिरधारी, हरि आसा तिनकौं अधिकारी॥८॥
हरि आस दास 'गुमान' तिनकौं ढूँढती बन बन चली।
छवि भली गोपनकी लली तन मनहुँ चंपक की कली॥
बन सघन दुर्घट नाकतीं उघरे न अंग सम्हारतीं।
कच सकच बेनी मचकसौं कटि लचक मगमें हारतीं॥९॥

कुंजर गति गामिनि गुन साला, भूखन भारथ कहि नवबाला॥
स्याम स्याम रटती मनमाहीं, धरि म्रदुचरन कठिन छिति पाहीं॥१०॥
म्रदु चरन जावक जुत अरुन कोमल कमल के हाथ से।
धरती कुसन पर कंटकन पग पद्मराग प्रबाल से॥
पट नील मुख तट लौं खुले छवि छटा ऐसी है बढै।
जनु स्याम जलधरतें सुधाधर, अमित सोभा लै कढै॥११॥
बिथुरी माँग न हार सम्हारैं, अलकैं छूटि परी छवि भारैं।
परिरम्भन चाहैं त्रियसेनी, उर अकलाइ कुरंगमनैनी॥१२॥
अकलाइ उरन कुरंगनैनि न बैन मुख कछु आवही।
सुख दैन बिन नहिं चैन, छन छन मैन अधम सतावही॥
कज्जल कलित द्रग ललित आँसू ढरत व्याकुल हैं महाँ।
गहबर गरैं पूछत फिरैं खग म्रग बिटप बेलिन तहाँ॥१३॥

हे तुलसी तुलसी नहि औरै बस कीन्हैं सोभा सिरमौरै।
जिन उर सदा लगी सुख माहीं, तिन हरि कथा कहौ हम पाहीं॥१४॥

हरि कथा अब तुम कहौ कब प्रानेस प्रीतम देखिहैं।
बिरहागि तें उपजी बिथा तिन भेटिकैं यह मेटिहैं॥
तुम प्रीत रीतहिं जानतीं जस जीत जगमें लेउजू।
नँद लाल मदन गुपाल प्यारे की बताउन देउजू॥ १५॥
हे चंदन बंदैं हम तोहीं, सीतल जस सुनियत नहिं कोही।
ते तुम लगे अनलते ताते, बिन हरि करे सकल सुख हाते॥ १६॥

बिन हरि करौ सकल सुख हातौ गयौ नातौ नेह है।
मलयज सदय सीतल हृदय है अदय दाहत देह है॥
बिरहागि जागि प्रचंड पूरन, भई तूरन है महाँ।
सुखदानतें दुखदान ऐसौ, समय बीतौ है तहाँ॥ १७॥
उर आस दास 'गुमान' राखै स्याम सुन्दर लालकी।
पुजवै सदा जन जान जिन कौ खबर सब जग जालकी॥
* .... ।
हे बंसीबट, तुम तट छाहीं, खेलत रहे मिले गल बाहीं।
कमनी कोटि काम अभिरामा, कहुँ देखे घन सुन्दर स्यामा॥ १८॥

कहुँ देखियौ घनस्याम सुन्दर रसिक मंदिर हैं कहाँ।
सुनि सोध कर बट बोधकर अबला अबल ये कहाँ।
यह बिरह धार अगाध में गये छोडि हमकौं है अबै।
बिन कसक जिनके बस परे अब हँसत हैं हमकौं सबै॥ १९॥
हे करील, मन नील छटा से, देखे स्यामल स्याम घटा से।
हे चलदल, चलत न कहुँ लाला, देखे मोहन मदन गुपाला॥ २०॥

कहुँ लखे मोहन रूप सोहन जगत जोत बिचारिये।
तुम पुन्य तरु तरनीन की यह बिरह ताप निवारिये।
कहुँ कहुँ अनार मुरारि की सुधि नारि हमकौं जानि कैं।
सुख छीन प्रीतम हीन तातें दीन मन पहिचानि कैं॥ २१॥

---

* इस छंद के दो चरण मूल पुस्तक में नहीं हैं।

हे तमाल, कहुँ लाल निहारे, हे तरु ताल तुंग तनु वारे।
हे खजूर, सर पूर पियारी, कहुँ कहुँ जीवनमूरि हमारी ॥ २२ ॥
कहु कहाँ जीवन मूरि ब्रज की भूर सुख जिनसौं कस्यौ।
रस में रहसि रचि रहस प्रभु अबलान मन जिननै हँस्यौ ॥
वह श्रवन कुंडल डुलन की छवि खुलन की बिछुरै नहीं।
फिरि कोटि कोटि बिनोद लीला जाइ नहिं हमपै कही ॥ २३ ॥
हे पाखर, नट नागर देखे, हे छौकर सौकरु, अवरेखे।
कहि सुधि प्रान पिया बलिहारी, हे पलास जिय आस तुम्हारी ॥ २४ ॥
पुजवौ पलास जु आस जिय की अब निरास न बोलिये।
तुम ब्रह्म ब्रच्छ पुनीत हमरे मीत की सुधि खोलिये ॥
बिन प्रान इंद्री जान जिमि ससि बिना श्री निस की गई।
इमि कमल लोचन लोच बिन करि सोच गत ऐसी भई ॥ २५ ॥
बन उपबन थल सकल निहारी, देखे नहीं भक्त भयहारी।
गुन मंदिर खबरे कहु प्यारी कदम सदम राखौ सब नारी ॥ २६ ॥
करि कदम राखौ सदम तर जहँ रहे बिलमत हैं हरी।
दुख लीन नहिं आधीन लखि, नहिं दीन देखि दयाभरी ॥
घनस्याम तन अभिराम सोभा, काम कोटिन सानकी।
तिन ललन चलन चलाई मैटौं तपन बिरह क्रसान की ॥ २७ ॥
बौंरसिरी सिरमौर सिरी की, कहत न हरबर बात हरी की।
हे चंपक लंपट मत तोही, हरि बिछुरत फूले अलि द्रोही ॥ २८ ॥
हरि बिछुर तन फूले फले दुख सूक नहिं मन आइ जू।
बिपता दई जो दई तापै आपु कछु न बसाइ जू ॥
बिछुरत हृदै निदरयौ कुलस कर मीड करतीं हाइ जू।
* ... ... ॥ २९ ॥
हे खूझौ बूझौं मैं तोही, कहुँ देखे मोहन निरमोही।
हे कदली, सदलीक तुम्हारी, सीतल तन हीतल मृदुबारी ॥ ३० ॥

* इसका अन्तिम चरण मूल पुस्तक में नहीं है।

तुम सदा सीतल मृदुल हीतल गुन कथौ सुखधाम के।
अब देहु श्रीफल फल हमें गल बाँह मेलैं स्याम के॥
सुन निम्बनार, निबाह लीजै नाह खबरै भाखिकैं।
कटहर कहूँ जो हरि लखे तौ कहहु उर में राखिकैं॥ ३१॥
करि करुना करुना अधिकारी, कहुँ करुनाकर कुंजबिहारी।
जिन सिर मुकट मनोहर सोहै, कमनी कोटि काम मन मोहै॥ ३२॥

कमनीय कोटिन काम वह छवि धाम मन कौ भावतौ।
सुखसिंधु उमग तरंग सी रस तान आन सुनावतौ॥
बिधुबदन वह कब देखिबी बिरहाग तपन सिराइजू।
बिछुरत अमीरस रूप तलफत मीन द्रगन सुभाइजू॥ ३३॥
कुंद मुकुंद कहौ किन सोधू, सुनतन श्रमन होइ कछु बोधू।
जिन नैनन सैनन सों मोहै, अल म्रग मीन दीन है जोहै॥ ३४॥

अल मीन मृग ह्वै दीन जोहै नैन ऐसे जानिये।
छवि गंज खंजन कंज की त्रिय मान भंजन मानिये॥
वह हसन प्यारे ललन की छवि मालकी बिसरै नहीं।
दिल में बसी भोहैं कसी अब जाय नहिं हमपै कही॥ ३५॥

हे बेली, सुन्दर गिरधारी, देखे तुम कहुँ बिपिन बिहारी।
पूछहिं तिय तिय सौं हित मानी, बनिता बिपत येक सम जानी॥ ३६॥
बनिता बिपत सब येक सम करि सपत हम तुमसौं कहैं।
तुम फली फूली भरी मधुकहि हरी सुधि मुद कौं कहैं॥
उलहन भली दुलहन मिली रस रली चित नहिं आनतीं।
अभिरी उरनसौं सुख लहौ बिरहीन दुख नहिं जानतीं॥ ३७॥

हे सेबती, सेबती यातें, कहि है पिय मोहन की बातें।
जुही सुही सूधें ह्वै भाखै, बूडत बिरह सिन्धु तिय राखैं॥ ३८॥
बूडत बिरह के सिन्धु तें राखौ जगत जुवती जुही।
दुख दीह खग परबार कौं हरि की खबर भाखौ कुही॥

तुम हे रसाल, बिसालमति नँदलाल देखे हैं कहौं।
नहिं स्वारथी परमारथी कहि भारथी कौ जस लहौं॥ ३६॥
हे नारंगी, आगरि रस की, देखत तैं नैकहु नहिं कसकी।
कहि गुन कान्ह कुँवर कौ भारौ, हे मालती सालतिय टारौ॥ ४०॥
तुम मालती हरि सालती अरु हालती देखौ सबै।
गुन आनती उर लागती प्रभु जानती भाखौ अबै॥
मधुब्रतन संग बिहारती मधु ढारती रस लीन कौं।
सुख सौं सुगन्धन बाहती कत दाहती बिरहीन कौं॥ ४१॥
हे बेला, दुख बेला भारी, मेटौ कहि पिय खबरैं प्यारी।
हे खग गन म्रग माल सुहाई, कहुँ देखे हैं कुँवर कन्हाई॥ ४२॥
कहुँ देखियौ पिय कान्ह जो पै जिनि छिपावौ जानिकैं।
अब कान में हम सों कहौ तुम परम हित हिय मानिकैं॥
जिन असित कुंचित मनी सौंधैं रही अलकैं छूटिकैं।
यह सकल ब्रज बनितान कौ मन लयौ बिननैं लूटिकैं॥ ४३॥
चलि आगे इक सखी सयानी, बोली प्रेम मनोहर बानी।
यह थल सखी निहारौ नीकौ, प्रफुलित कुसुम जुडावन जीकौ॥ ४४॥
प्रफुलित कुसुम सुन्दर लता मिलि नै परी रसभार सौं।
सुखमा सरस बयार आवत सनि सुगंध सुढार सौं॥
उर प्रीति ल्यावत मन रमावत द्रगन भावत है महाँ।
चलिकैं बिलोकौ त्रियन रोकौ होत धोकौ है तहाँ॥ ४५॥
जहँ रंजत कुंजन अलिमाला, मेरे जान यहीं नँदलाला।
यह सुनि चौंकि चितै तिय कैसे, चंदहि चाहि चकोरी जैसे॥ ४६॥
जिमि चाहि चंद चकोरिनी सी सकल त्रिय चाली तहाँ।
मिलि चले प्रभुपद चिन्ह छिति पर परम हित फूली महाँ॥
धुज जब कुलस अंकुस सहित हरि चरन जानि बिसेखिकैं।
कछु रिस भई तिन बीच बीचन चिन्ह औरै देखिकैं॥ ४७॥

कोसक गई सुहागिल नारी, को बड़ भाग भई पिय प्यारी।
रूप रासि को गुनन गहेली, गुन निधान बस करें सहेली॥ ४८॥
गुन के निधान सुजान प्रीतम बस करे सुख मानिकैं।
धन धन्य तिय सोई सुहागिल चुभी चित में आनिकैं॥
इक तकहु ह्याँते चिन्ह औरैं मिटे प्रेम बढाइकैं।
पग चिन्ह गहिरे कान्ह के हैं लई कंध चढाइकैं॥ ४९॥
कछु रिस रस कछु मिलन उछाहू, ढूँढत फिरहिं बिपिनमें नाहू।
तहँ देखी व्याकुल म्रगनैनी, प्रभु कर गही भुजंगम बैनी॥ ५०॥
प्रभु करन गही भुजंग बैनी सुमन सैनी संग में।
बनमाल उर पहिराइ जासौं भँवर भूले रंग में॥
चरचित सुगन्धिन अमल सुन्दर अंग ऐसे सोहहीं।
निजु हाथ प्रभु चित्रित करे लखि सकल त्रिय मन मोहहीं॥ ५१॥
हरि बियोग तलफैं तिय कैसे, ग्रीषम मीन तनक जल जैसे।
सुखमाहत उपमा इमि लेखौ, ससि की कला उदित रवि देखौ॥ ५२॥
ससि की कला रवि के उदै हरि के बियोग त्रिया भई।
छन छन कलेवर छीन उर दुख पीन सुख आसा गई॥
रसना रटत छन स्याम स्यामहि छनक नैन उघारिकैं।
छन ध्यान धरि रहि जात सुन्दर, हृदय माँझ सम्हारिकैं॥ ५३॥
घेरि रहीं तिय सकल सयानी ताकहँ पूँछि उठी अकुलानी।
कहु कहु कहु कहँ नंद दुलारे, किहि अपराध छोडिगें प्यारे॥ ५४॥
प्रीति प्रतीति राखि तिय तोरी, ले आये सब में करि चोरी।
कैसे छाँडि गये बन माहीं, सो अब कथा कहहु हम पाहीं॥ ५५॥
बोलि उठीं सुनि सुनि सुख दानी, सुनहुँ सखी मिल सकल सयानी।
मान 'गुमान' कर्‌यौ नहिं थोरौ, मैं जानी प्रीतम प्रिय मोरौ॥ ५६॥
उडिगौ सुख सजनी मत अपने, जैसे रंक रजायस सपने।
इतनौ कहत बदन बिलखानौ, जलरुह द्रग आँसू अधिकानौ॥५७॥
सकल तियन मिलि ताहि प्रबोधौ, बाँह पकरि कहि चलि बन सोधौ।

* .... ॥ ५८ ॥

दो०—हरक रोस रस चाहि करि चली सकल ब्रजबाल ।
ताहि संग लै ढूँढती मोहन मदन गुपाल ॥ ५६ ॥

चौपही—जहँ लगि चंद किरनि उजियारौ ।
तहँ लगि ढूँढ्यौ नंद दुलारौ ॥
ढूँढे सर कानन गिरि कंदर ।
मिले न कहूँ रसिकवर सुन्दर ॥ ६० ॥
व्याकुल भईं सकल ब्रजधरनी ।
ज्यौं गजराज बिना बन करनी ॥
चलि न सकैं सिन्धुर गति हरनी ।
बिना बारि ज्यौं थाकी तरनी ॥ ६१ ॥
स्याम बिरह अब सूर प्रकास्यौ ।
सुख समूह ससि सोभा नास्यौ ॥
आतप तपन तच्यौ तन भारी ।
चित्त चकोर परी तहँ कारी ॥ ६२ ॥
देह दमक दीपत छिति रूखी ।
रसबाहन लत्ता सब सूखी ॥
बिपत बयारि बिपुल तहँ बाही ।
केलि बेलि बिरहानल दाही ॥ ६३ ॥
बुध्ध कुमुदिनी देखि सकोची ।
चकही चाहि चितै तहँ लोची ॥

दो०—इहि प्रकार बिलखाइ सब, करि बिचार धरि धीर ।
आईं जमुना पुलिन जहँ, रहस रच्यौ जदुबीर ॥ ६४ ॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द वृन्ददायिन्यां शरच्चन्द्रचारुमरीचिकायां द्विज-गुमान विरचितायां श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिकायां गोपिका विरह वर्णनो नामा सप्तदशप्रकाशः समाप्तः ।

---

* इस पद्य का अन्तिम चरण पुस्तक में नहीं है ।

अष्टादश प्रकाश

दो०—अष्टादशें प्रकास में गोपी जमुना तीर।
स्याम भई लीला रचहिं फेरि मिले बलबीर॥ १॥

रहस०—ह्वै गईं स्याम मई ब्रज बाम।
प्रेम विबस ह्वै बिकल सकल मिलि बिपिन बिहारैं।
बिछुरे नंदकुमार बिरह बस तन मन वारैं॥
नव किसोर कमनीय मृदुल मूरति पिय प्यारे।
कहाँ छोडि करि गये नंद के नवल दुलारे॥
लीला करहिं अनूप रूप तिय तिन कौ धारैं।
गजगैनी पिकबैनि सुमुख सुन्दर सुकुमारैं॥
येकै अगबग आदि पूतना ह्वै कै आवै।
येकै मोहन मीत मदन मूरत दरसावै॥
येकै बरही पच्छ स्वच्छ सिर मुकट बनावै।
बिच बिच कली बनाइ सुमन गुच्छानि लगावै॥
येकै अलकनि रचै कचनि कुंचित मुख बोलै।
झलकन कलित कपोल चलत नागिन सी डोलै॥
येकै रोरी आड मेटि मगब्रंद सम्हारै।

मानौ लग्यौ मयंक अंक अलिनी पति भारै ॥
येकै भोंहैं कसै तिरीछे हेरनि हेरे ।
चंचल नैन चलाइ सैन दे तियन सुटेरे ॥
इक कर्नाभर तजहि करन कुंडल झलकावै ।
सीस डुलाइ डुलाइ डुलनि प्रीतम की लावै ॥
येकै मृदु मुसक्याइ पिया कैसी अनुहारी ।
चंद मरीची चारु चमक बिज्जुल बलिहारी ॥
येकै गुंजामाल उरन धारै सुखदाई ।
मनहुँ हेमगिरि धसी जमुन सरसुती सुहाई ॥
येकै पट कट तटनि जान पीताम्बर बाँधै ।
उरझी दामिनि मनहुँ कनक बेलिनि छवि नाँधै ॥
येकै कछिनी घनी बनिक करि घाँघर केरी ।
हिलि मिलि सखन मँझार उच्च सुर गाइ अहेरी ॥
येकै ललित त्रिभंग होहि ठाडी पिय प्यारी ।
सखा कंध कौं टेक बढी छवि कुंज बिहारी ॥
येकै भुजगल मेल सखा के सुरन अलापै ।
ता धुन सुनि मुनि महा मदन उर हिय में काँपै ॥
येकै बेनु बिषान फैंट खोंसै छवि धारै ।
लटक फटक वह चलन ललन की चलनि सम्हारै ॥
येकै गोधन दूर जात तिन कौं मुरकावै ।
बैनी मचकत भार लचक लंकनि तुर धावै ॥
येकै साँवर रूप धार सुखमा सुखसैनी ।
पररम्भन इक करहि चकित चंचल मृगनैनी ॥
येकै बेनी गूँथ कलिन कुसुमनि भरि भारै ।
येकै मन मुकताल रुरै सिर तिनहिं सम्हारै ॥
येकै लकुटी लिये जमुन तट पुलिन बिहारै ।
गुहि गुहि वह बनमाल लाल सम उर में धारै ॥

येकै मुरली अधर मधुर धरि धरि रहि जाती।
समर समर पिय कान्ह समर डर पैठौ छाती॥
येकै हँसि हँसि कहहि परसपर रस की बातैं।
निबिड कुंज बिच छिपै छबीली करि करि घातैं॥
येकै बीन बजाइ रिझाइ कदमतर कैसे।
मनभावन मन मोह रिझावत वे ते जैसे॥
येकै पति गति भरै प्रेम प्रीतम अनुरागी।
सुन्दर प्रान अधार जगत जीवन रस पागी॥
येकै चित्र बिचित्र अंग गिरिधात लगाये।
कर्न समीप सुरंग मंजु मंजरी बनाये॥
येकै सुन्दर चतुर कपट रचना रचि न्यारी।
नंदनँदन ब्रजचँद मनोहर बोलन प्यारी॥
येकै मुदित प्रसून गैंद कर पर उलछारै।
तहँ दल फल मृदु मेल खेल खेलै खिलवारै॥
होत भई तदरूप रूप लखि रूप उज्यारे।
कहि 'गुमान' पिय प्रेम प्रीत तकि प्रगटे प्यारे॥ २॥

पद्धटिका०—पिय मिलन प्रेम उर झिलमिलाइ।
जनु सिन्धु सूर छाया दिखाइ॥
इमि महामोद उर भयौ आइ।
जिमि बूडत कर गहि लियौ धाइ॥ ३॥
सब इंद्री चेती इहि प्रमान।
जनु म्रतक देह में परे प्रान॥
तनु अमृत धार सींच्यौ समूल।
तरु पुंज पुराने उठे फूल॥ ४॥
दिव द्रष्ट अंध पाये समान।
जनु है अजान कौ महाग्यान॥

जिमि चारु चकोरी ताप मेंट।
सुख कन्द चन्द सौं भई भेंट ॥ ५ ॥
रस सिन्धु तरंगिनि बढ्यौ जोर।
लखि बिमल ससी पूरन किसोर ॥
मनि गिरी रंक पाइ सुफेर।
इमि चितै चित्त दै रहीं घेर ॥ ६ ॥
तपि रह्यौ बिरह हिय गौ सिराइ।
जनु महात्रिखत सर सुधा पाइ ॥
कमनीय कोटि वय नव किसोर।
माधुर्ज मूर्ति मन लियौ चोर ॥ ७ ॥
सिर पुरट मुकट मनि झलमलाइ।
छवि छटा छूटि चहुँघा दिखाइ ॥
वह भाल लाल कौ प्रभा भूप।
तिहिं तिलक मिलक लै मिल्यौ रूप ॥ ८ ॥
कुंडलन किरन गंडै उदोत।
मिलि अलक झलक की ललक जोत ॥
कस रहीं भौंह बस परे प्रान।
जे हृदौ बेध द्रग मदन बान ॥ ६ ॥
कलकंठ महाकौस्तभ बिहार।
उर रत्नप्रभा के भरथौ भार ॥
मंदारहार पै अलि मदंध।
मिलि गंधवाह बाहत सुगंध ॥ १० ॥
जटि रहे नगन जगमग बिसाल।
कर कंज रंज कंकन रसाल ॥
कलधौत किंकिनी धुन प्रबीन।
कलहंस सुरन सुर भयौ लीन ॥ ११ ॥

पग दूपर नूपर मुखर जोर।
तिन झनक खनक चित लियौ चोर ॥
नखचंद मरीचिन परी होड।
किहि कह 'गुमान' उपमा बिगोड ॥ १२ ॥

त्रिय रहीं सकल प्रभु कौं निहारि।
बुझि गई बिरह की द्रग दवारि ॥
इक रही पलक थक थके नैन।
मुख रही हेरि नहिं कढ़ैं बैन ॥ १३ ॥

इक रही हिये में ध्यान धार।
इक प्रेम बिबस तन नहिं सम्हार ॥
इक भौंह ऐंठ द्दग झमझमाइ।
करि करि कटाछ चंचल चलाइ ॥ १४ ॥

इक फैंट पकरि करि हाव भाव।
नट नचत नैन करि करि उपाव ॥
इक ग्रीव मेल मनिभरी बाँह।
इक पररंभन करती उछाह ॥ १५ ॥
इक रदन अधरदल मिसमिसाइ।
इक पियै रूप द्दग नहिं अघाइ ॥
इक चित्र लिखी सी रही देखि।

इक सफल छरी पिय मिलन लेखि ॥ १६ ॥
इक ऐंड भरी ऐंडाइ अंग।
पिय तकत तेज बाढ्यौ अनंग ॥
इक रही भुजासों भुजा जोर।
इक दिये कंध पर कंध जोर ॥ १७ ॥

इक लेहि फुरहरी छवि सिहाइ।
इक रही हेर द्रग डबडबाइ ॥

नृप, अति प्रबीन सुन्दर सुनैन।
धरि धीरज इक मत कहै बैन ॥ १८ ॥
रिस रस सुभाइ मोहन चढाइ।
द्रग उभै मदन खंजन चलाइ ॥
हेरहि सुभाउ ते रसिक लाल।
सब बाल करी तुमने बिहाल ॥ १६ ॥
जैसे मलाह तरनी चढाइ।
लै बीच धार दीन्हीं बहाइ ॥
जिमि प्रथम लेप चंदन सम्हार।
फिर मीडि दिये तापै अँगार ॥ २० ॥
यह करी पिया तुमने अबूझ।
नहिं सूझ करि कछु प्रीति बूझ ॥
तुम अति कठोर कीन्हौं सुभाइ।
धक हमहिं जिई यहि छवि बिहाइ ॥ २१ ॥
द्रगभरे प्रेम जल झलझलाईं।
इमि कहैं बैन गर गदगदाईं ॥
सुनि सकल त्रियन के ललन बैन।
उर उमगि जोर करि जग्यौ मैन ॥ २२ ॥
प्रभु बचन कहे तहँ सुधासार।
रसभरे प्रेम के प्रीत भार ॥
हे चंद्रहास, हौं सकल भाव।
हौं मिल्यौ तुम्हैं नहिं अनमनाव ॥ २३ ॥
पल जुदौ होहुँ नहिं रीति मोर।
बँधि रह्यौ तुम्हारी प्रीति डोर ॥
मैं सदा रहौं तुम्हरे सु पास।
अब करौ कोटि कोटिन बिलास ॥ २४ ॥

यह सरद निसा पसरी सुरंग।
बन प्रफुल्ल सुमन गुंजरत भ्रंग॥
ससि किरन निकर फैले प्रकास।
उर उमग कुमुदिनी करि बिकास॥ २५॥
खुलि रहे पुलिन झुकि रहे फूल।
जग रहे जोति रँगि रहे कूल॥
म्रदुरेन फरस देखौ बिसाल।
तहँ परत जमुन जल के उछाल॥ २६॥
छवि छिटक चाँदनी चटक ऐन।
पय परथौ मनौ उफनाइ फैन॥
कलहंस कुलन कुहकन कलोल।
कलकंठ कलापी उठे बोल॥ २७॥
चलि त्रिविध पवन सुन्दर सुढार।
आवत अनंद मकरंद झार॥
यह छवि बिचार करिये न बेर।
अब रहस सकल मिलि रहहु फेर॥ २८॥
प्रभु बचन सुधारस जीवमूर।
ह्वै गये बिरह के रोग दूर॥
करि मंदहास सुन्दर प्रबीन।
छवि बढी कनकबल्ली नबीन॥ २९॥

दो०—महा जोगमाया प्रबल को कहि सकहि अपार।
ब्रज बनितन के अंग में फेरि करे श्रृंगार॥ ३०॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द वृन्ददायिन्यां शरच्चन्द्र चारुचन्द्र मरीचिकायां द्विज गुमान विरचितायां श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिकायां गोपी विरह निवारणो नामा अष्टादशप्रकाशः समाप्तः।

———

एकोनविंशति प्रकाश

दो०—उनईसैं जु प्रकास में गोपी करि श्रृंगार।
मिलि मिलि फिर श्रीकृष्ण सौं रचि हैं रहस अपार ॥ १ ॥

रवण०—ललना ललित तन सुकुमार, छवि लखि रहत नैन निहार।
सोडस बरस बैस बिचार, सोडस सजै अंग सिंगार ॥२॥
मोतिन भरी माँग उद्दोत, रविजा मिली सुरसरि सोत।
सुन्दर लसत लम्बे बार, कबरी परस येडिन धार ॥३॥
गोहे बेल कूल बिसाल, जमुना धारि हंस मराल।
पाटी परम सुन्दर स्याम, चीरी नील मनि अभिराम ॥४॥
झलकत भाग बैंदा जाग, आयौ भाग मिलन सुहाग।
कानन परन छवि छहराइ, सोभाधाम धुन फहराइ ॥५॥
तरफत जुत्त तरौना ताक, मनमथ रथी के जनु चाक।
भौंहे चढी रसभर मान, खेंची मनहुँ काम कमान ॥६॥
चंचल नैन चित के चोर, खंजन कंज गंजन जोर।
अंजन रची रेख सम्हार, फाँसे मीन फाँसी मार ॥७॥
नासा बनी बनक उतंग, कीन्हौं बीच भिरत कुरंग।
बेसर कनक की छवि मूल, मानौ रही केसर फूल ॥८॥

मोती अधर छवि अनुराग, कैंधो भ्रगुज खेली फाग।
गौरभ बने गोल कपोल, माँजे मुकर मनहुँ अमोल ॥९॥
तिनि पै परे गाडि अनूप, उमगी परै पानिप रूप।
ऐसी अधर लाली लाल, जैसी पकी बिम्ब रसाल ॥१०॥
दसनन की बनक इहि भाँति, मानहुँ कुंद कलिन की पाँति।
बिहसन में कछू नहिं बीच, निकसी मनहुँ चंद मरीच ॥११॥
ठोडी चिन्ह तम लघु जान, लाग्यौ चंद चरनन आन।
मुख तट परी कि भारी रेख, बैठौ चंद कौ परिबेख ॥१२॥
ग्रीवा डोल गुलक सुढार, मानहुँ बँधी नखत कतार।
उरभर सुमन गन ससिहार, पसरयौ मेरुतें ससि मार ॥१३॥
कंचुक कसी उरजन बाँह, पहिरी काम सुभट सिलाह।
बाँहैं बनी मृदुल म्रनाल, राजै सुखद सोभा ताल ॥१४॥
अंगद कहौ बानिक बेस, कीन्हे अर्ध चन्द्र बिसेस।
राजै रोम राजिर कील, मानहुँ चढी पत्ति पपील ॥१५॥
कटि तकि छीनता की कान्ति, त्रिबली दई कंचन पांति।
नाभी कूप छवि गम्भीर, माँची तहाँ नजर की भीर ॥१६॥
भ्रंगी लंक इहि अनुहारि, कंठीरव गये बन हारि।
कौचनग जरे भूषन भारु, मर्कत रची चूरी चारु ॥१७॥
महँदी बुंद करतल देखि, कमला अजिर ससि त्रिय लेखि।
किंकनि कनक की छवि देत, करधुनि मंद मनहरि लेत ॥१८॥
घाँघर उमडि घुमडत घूमि, तासौं रह्यौ मन लगि भूमि।
नूपुर मुखर पगन प्रबीन, सुनतन श्रवन मनसा लीन ॥१९॥
हंसक हंस से छवि ऐन, बैठे कमल दलन सुखैन।
कहिये का नखन की जोति, जैसी चन्द्रमा में होति ॥२०॥
भूषन भरी ओप अपार, फूली मनहुँ सुरतरु डार।
ऐसी बनी बानिक बाल, मोतिन पूरी बेल रसाल ॥२१॥

पिय पै करि कटाछ प्रबीन, जिन के केलि में मन लीन।
उर उठि बढ्यौ आनँद रंग, उमग्यौ मनहुँ सिन्धु तरंग ॥२२॥
तिनि चलि गही हँसि करि बाँह, बसि करि लिये मोहन नाह।
बर्नन करै कहा 'गुमान', जे मिलि रहीं स्याम सुजान ॥२३॥

दो० — पिया मिलन रस कौ जलद, बरस्यौ सुधा अघाइ।
केल बेल उलहीं नवल, नव पल्लव हरियाइ ॥ २४ ॥

त्रिभंगी—

मिलि मिलि पिय प्यारी गोप कुमारी रूप उज्यारी रस बरसैं।
बरसैं रस सुन्दर अति गुन मंदिर पिय छवि अंदर धर सरसैं॥
सरसैं अवगाहैं बाँह न बाँहैं पिय बस चाहैं छवि बिमला।
बिमला उरभरि भरि भरि, कुलवत धरि, हरि मिलि हरिबरि, नव नवला
नवला नव अंगन उरज उतंगन अतनत रंगन तन भूलीं।
भूलीं रस रंगन हँसकर संगन लाज उलंगन कै फूलीं॥
फूलीं तहँ निर्त्तैं अति गति बर्त्तैं गुन अनुहर्त्तैं गुनसाला।
साला गुन गावैं पियहिं रिझावैं करन बजावैं करताला ॥ २६ ॥
तालन परताला भेद रसाला बजत बिसाला कर कंकन।
कंकन की खनखन नूपुर झनकन पिय सँग बन बन मिलि अंकन॥
अंकन लिपटातीं फिरि झहरातीं थिरक थिरातीं छिति उछलैं।
उछलैं छिति तलतैं कलन कलनतैं चलदल दलतैं चल सुचलैं॥ २७ ॥
सुचलैं छवि छहरैं पट की लहरैं अंचल फहरैं छूटि परैं।
छूटी मुख अलकैं श्रमजल झलकैं पिय मन ललकैं कल न परैं॥
कलरव पिकबानी रस सरसानी पियहिं लुभानी मृगनैनी।
मृगनैनी सचिकै बैनी मचिकै कटि तट लचिकै लचक घनी ॥ २८ ॥
लचकन कटितट की बिगलन पटकी छवि मुखतट की छलक परै।
छलकै छवि जोरन किरन करोरन गोप किसोरन पै तरपै॥
तरपै पिय पल पल भूजल झलझल, चहुँ दिस चलचल झलक उठैं।
उठतीं झलसारी कलित किनारी पिय बलिहारी नेह रुठैं ॥ २९ ॥

रूठैं नवबाला गुनन रसाला उर सुखसाला मान करैं।
करतीं तिय मानन छिपतीं कानन श्रमकन आनन सोभ धरैं॥
धर प्रीतम ल्यावैं कलन रिझावैं बेनु बजावैं सुरन खरीं।
सुर सुनत न कानन बेधत प्रानन छोडहिं मानन प्रेम भरीं॥३०॥
प्रेमाकुल साँची पिय गहि राँची झम झम नाँची झमक नई।
झमझम झमकातीं, झझक झकातीं उर अकलातीं नेह नई॥
नेहैं नव रंगन सुधि नहिं अंगन बिथुरी मंगन जलज धरैं।
जलजन की श्रैनी अति सुख दैनी श्रक उर ऐनीं सुमन झरैं॥३१॥
झर सुमन सुहाई अति मन भाई छवि अधिकाई नव नागर।
नागर सूमंडैं, फिर गति मंडै घुमड घुमंडै घन घाँघर॥
घाँघर की घुमडन गति की सुमडन सुर की उमडन छाइ रही।
रहि सुर सुरलीना राजत बीना तार प्रबीना बाजि रही॥३२॥
बाजन मुरजन की धुनि गरजन की उठि लरजन की उरझ रहीं॥
उरझैं रस प्यारी उघटैं न्यारी क्रत धुन तारी तार रहीं॥
रहि थुम थुम थुंगन, धिधिक धुलंगन मिलिकर संगन रंग करैं।
कर रंगन खेली गुनन गहेली सकल सहेली सोम धरैं॥३३॥
धरतीं गति खंजन झझकन रंगन झख दृग अंजन फैलि परैं।
फैलैं श्रुति कुंडल जब फिरि मंडल भ्रमहिं अखंडल चित्त हरैं॥
हरिपद हर झरपै गति भर भरपै कर धर करपै ताल बजैं।
बाजैं पग झनझन पाइल ठन ठन चूरी खन खन खनक सजै॥३४॥
साजैं गति जम जम चलती छम छम तन छवि चमचम, चमक लसैं।
लसि दीप सिखासी लनक लतासी चंद्र प्रकासी कसि भौंहैं॥
भौंहनि कौं कसतीं पियउर बसतीं मुर मुर हसतीं मुख सोहैं।
सोहैं दृग कैकै उझक उझैकै पिय दृग दैकै करि गोहैं॥३५॥
गोहैं करि ठाडी रस रस बाढी गहि गति काढी फिर नचतीं।
नच नच फिर बढतीं तानन चढतीं, उघट उघढतीं फिरि रचतीं॥

रचतीं तिय भेदन भीजी स्वेदन मनमथ बेदन दूर करैं।
कर गहि पिय बोली छूटी चोली माल अमोली मेल गरैं॥ ३६॥
गर बिच भुज मेलैं लाज गदेलैं करतीं केलैं स्याम मिलीं।
मिलि सौरभ डोरैं अतर झकोरैं पिय रस बोरैं हिलनि हिलीं॥
हिल मिल मन दीन्हौं पिय बस कीन्हौं सब सुख लीन्हौं चेत थकीं।
थाके जड जंगम सुर भ्रम अंगन सुरतिय रंगन भोइजकी॥ ३७॥

दो०—हरसत सुर सरसत द्दगन करखत नहीं निहार।
दरसत रस तरसत मिलन बरसत सुमन अपार॥ ३८॥
द्रखद द्रवत द्रुव चुअत मधु रितु अनरितुहि बिहाइ।
जड की देखौ यह दसा चेतन कही न जाय॥ ३६॥

कवित्त०—बेला कौं सकेलि रविनंदनी थिराय रही,
हरक हिराइ रही मति बन चाली की।
चित्र कैसे खचे देव देवबधू जके रहीं,
थकि रहीं राह तहाँ नखतन जाली की॥
भनत 'गुमान' अगनाद में बिमोहि रहे,
भोइ रही मनसा बिहंगन की आली की।
रहस खुसाली में मदन मद खाली करथौ,
छूटि गई ताली ताल सुनत कपाली की॥ ४०॥

खग मोहे म्रग मोहे नग मोहे नाग मोहे,
पन्नग पताल मोहे धुनि सुनि जासुरी।
सुर मोहे नर मोहे सुरन सुरेस मोहे,
मोहि रहे सुनि कैं असुर अरु आसुरी॥
भनत 'गुमान' कहैं मोहिबे की कहा बानि,
चर अचर मोहे उमग हुलासुरी।
गोपिन के ब्रन्द मोहे आनँद मुनिन्द मोहे,
चंद मोहे चंद के कुरंग मोहे बाँसुरी॥ ४१॥

दो०—मोहि रह्यौ ब्रह्माण्ड सब जाकी धुनि सुनि कान।
ता मुरली की का कथा को कहि सकै 'गुमान'॥ ४२॥
रहस केलि थाकी तरुनि तिनकौ तन न सम्हार।
कुंकुम रंजित उर प्रगट छूटि गये मुख बार॥ ४३॥

कवित्त०—छूटि गये बार बंध, हार सब टूटि गये,
लूटि लये अंग रति रंग रस सार में।
लाजहू कौ भार गयौ उनमद माद गयौ,
सुरन ठिकान लयौ चित्त के बिचार में॥
भनत 'गुमान' मुख बैन तहाँ झीने परैं,
धीमे परैं नैन महामदन उतार में।
हार रहीं नार उर आइ है सम्हार जौंन,
रही ना सम्हारतीं बिहारी के बिहार में॥ ४४॥

दो०—आई उर न सम्हार जब पर्यौ लाज कौ भार।
मदन माद मादौ पर्यौ जान पर्यौ संसार॥ ४५॥
मन चेतौ तन चेतियौ चेते दृग तिहि ठौर।
कह 'गुमान' को कहि सकै हरि इच्छा सिर मौर॥ ४६॥

सोरठा०—इहि प्रकार भगवान गोपिन सुख दीन्हौं महा।
श्रमत अंग फिरि जान जमुना जल प्रबिसे प्रभो॥ ४७॥

पद्धटिका०—जैसे गजेन्द्र करिनिन समेत।
इमि धसे नीर करुना निकेत॥
तहँ लसत मध्य गोपिन गुपाल।
नखतेन्द्र सहित जनु नखत जाल॥ ४८॥
जस अमल कमल मीलित सुगंध।
गुंजरत भ्रंग मधुमते अंध॥
तहँ तरहिं तरुन दीपत असेख।
जनु कसी कसौटी कनक रेख॥ ४९॥

जल उछल फेर जलमें छिपाइ।
छन मनहुँ दामिनी दमक जाइ॥
जल छींट छहर हिलुरत हिलोर।
डुल उठन कंज मकरंद ढोर॥ ५० ॥
फिर डुलत कंज कुहुकत मराल।
सुनि होत हिये आनँद रसाल॥
जहँ करत कृपानिधि जल बिहार।
प्रमदान संग प्रमुदित अपार॥ ५१ ॥

दो०—इहि प्रकार जल केलि करि निकसे श्रीभगवान।
ब्रह्म राति बीती त्रपति को कहि सकै प्रमान॥ ५२ ॥
रसिकराइ श्री स्याम गोपिन सुख दीन्हौं महा।
पुजये मनके काम मोद गमन ग्रहकौं कियौ॥ ५३ ॥

गीतिका०—

मुनिनाथ जू जगनाथ के गुन गाथ जे तुमने कहे।
जग करन पावन मन रमावन श्रवन भावन मैं लहे॥
परब्रह्म व्यापक सर्व जाकी आदि सुर नहिं पावहीं।
फिरि धर्म पालन धर्म निधि फिरि धर्म भूतल थापहीं॥ ५४ ॥
दुज धेनु वेद म्रजाद राखन ब्रह्म आये आपुही।
श्रीसंत मुनि मन रंज पालक पुन्य पूर प्रतापही॥
यहि रहस केलि कलानि रचि बनितानि मन तिन ने लये।
मन सकल धर्माधार प्रभु परदाररत कैसे भये॥ ५५ ॥
सुन त्रपति जे सज्ञानमति नहिं तिन्हें मति अनुराग हीं।
सब बिधि महा सामर्थ ईस्वर तिनहि कर्म न लागहीं॥
सुनि कै जु ईस्वर कर्म कौ सुनि जे अनीस्वर जो करैं।
करि कर्म भवनिधि में परै सुनि कर्म भवनिधि सौं तरैं॥ ५६ ॥
जब गरल तीछन ज्वाल माल उठि झुकी झहराय कैं।
सुर असुर जरतन जानि संकर पान किय सुख पाय कैं॥

सुन, त्रपति को सामर्थ ऐसौ जरत बिस्व बचावही ।
तिहि तैं न ईस्वर कर्म करिये श्रवन सुनि गुन गावही ।। ५७ ।।
सुन त्रपत प्रभु की जोगमाया महाप्रबल बखानिये ।
रति सब बिसैं सबसैं बिरति रति बिरति कैसे जानिये ।।
यह बिसद ब्रह्म बिलास तुमसौं कह्यौ गोपि बखानिकैं ।
फल चार दाता परम पावन यहै वेद प्रमानिकैं ।। ५८ ।।

दो०—रहस केलि की सुभ कथा सुक मुनि त्रपहिं सुनाइ ।
प्रेम प्रीति रस सरस की सरिता सरस चलाइ ।। ५९ ।।
जो कोऊ बाचैं सुनैं समुझैं चित्त लगाइ ।
ताकौं फल चारौं मिलैं कहि 'गुमान' सुख पाइ ।। ६० ।।
सारद सेस गनेस सुर कहि न सकैं गुन गाइ ।
सो 'गुमान' का कहि सकैं कही यथा मति पाइ ।। ६१ ।।

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द वृन्ददायिन्यां शरच्चन्द्र चारुमरीचिकायां द्विज गुमान विरचितायां श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिकायां रहसि केलि वर्णनो नामा एकोनविंशप्रकाशः समाप्तः ।

———

विंशति प्रकाश

दो०—बिंसतमे है यह कथा सर्प ग्रहै ब्रजराइ।
संखचूड की मनि हरहिं मोहन बेनु बजाइ॥ १॥

स्रग्विणी—

अंबिकारन्य कौं गोप साजे सबै।
नन्द के साथ में ब्रन्द चाले तबै॥
मातु श्रीलाल की रोहिनी संग में।
राम श्री स्याम जू गोपिका रंग में॥ २॥
पाक मिष्टान्न कौं ताक कैं लै चले।
सो झके भारसौं थार साजैं भले॥
जाइ पूजे अनंदी सुनंदीस कौं।
पाँइ धारे तहाँ नाइ कैं सीस कौं॥ ३॥
फेरिके अम्बिकादेवि पूजी तहाँ।
वेद को सोधि कैं मोद भीजे महाँ॥
अन्न बस्त्रादि गो द्रव्य कौ दान दै।
जानि भूदेव पूजा करी मान दै॥ ४॥

गोप की चोप गावैं रिझै कान्ह कौं।
गोप ऊँचे गरै तैं करैं गान कौं॥
रम्य आनंद की देखि सोभा महाँ।
अच्छ फूले फले भौंर भौंरें तहाँ॥ ५॥

दो०—पसुपत पूजे व्रत कर्यौ कीन्हैं अमित बिधान।
नदी सुरसुरी तीर तट ब्रजपति कर्यौ मिलान॥ ६॥

तारक०—तिहि रात समुझि सबही सुख सोये।
अधरात गये सिगरे भय भोये॥
तहँ आइ ब्रजेस ग्रसे अहि भारे।
कहि कृश्न हि कृश्न उचार पुकारे॥ ७॥
सुनि गोप उठै कर उल्मुख धारे।
तकि अंग भुजंगहि संग प्रहारे॥
दहि गात गयौ नहि साँसत मानै।
लखि ता कहँ गोप सबै अकुलानै॥ ८॥

दो०—सोर सुनत प्रभु आइ तहँ ताहि देखि भगवंत।
बाम चरन अंगुठा छुयौ भयौ देव छबिवंत॥ ९॥
प्रभु पूछत सुर कहु कथा किहि अपराध भुजंग।
तिहि अस्तुति कर जोर करि फिरि निजु कह्यौ प्रसंग॥ १०॥
विद्याधर मैं आहु प्रभु भर्यौ रूप अभिमान।
अष्टावक्र मुनिन्द कौं हँस्यौ मूढ अज्ञान॥ ११॥
मुनि प्रसाद दरसन मिले अहो भाग्य मम आइ।
यों कहि गौ निज लोक कौं प्रभुचरनन सिर नाइ॥ १२॥

सोरठा०—नंद समेत समाज सदन सिधारे सुख सहित।
दान अमित बिधि साज दीन्हैं बिप्रन बोलिकैं॥ १३॥

तोटक०—सुख स्याम सबंध चले बन कौं।
लियै संग सबै रमनी गन कौं॥

रजनी कवनी वह स्याम लसैं।
मन मोद मनोरथ में बिलसैं ॥ १४ ॥
नभ तारन जोति भरी गरजै।
जनु नील निचोल जरी पर सै ॥
जल जाल किधौं छवि जाल भरीं।
निसि सुन्दर पाटिन फैलि परी ॥ १५ ॥
द्रुगद्वार प्रसन्न बिराजत हैं।
लतिकान लगे द्रुम राजत हैं ॥
बन फूल रह्यौ चहुँ ओर महाँ।
जहँ गुंजत भौंरनि भीर महाँ ॥ १६ ॥
मुख दिव्य प्रकास प्रकासत है।
दिग्द्वारन कौ तम नासत हैं ॥
सुर मंडल मंडित गावत हैं।
रवनी प्रभु रंग रमावत हैं ॥ १७ ॥

दो०—इहि प्रकार तरुनीन में बिहरत स्याम सबंध।
तिहि अवसर आयौ तहाँ संख चूड मति अंध ॥ १८ ॥

तोमर०—वह राजराज दिगीस, तिहि दास सो कुरु ईस।
जिहि रूप देखि कराल, सब बाल ब्रंद बिहाल ॥ १९ ॥

सोरठा०—ताहि तक्यौ भगवान, उठै धरनितैं धरमि का।
बहै काल सम जान, भागि चल्यौ पाछै परे ॥ २० ॥

छप्प०—जिमि भग्गिव अहिभीत बली बिहगेन्द्र झपट्टिव।
जिमि भग्गिव तमतोम उदित रवि किरन चपट्टिव ॥
जिमि भग्गिव घन पटल झमकि झंझा जब कुप्पिव।
जिमि भग्गिव वघ बोघ नाम परताप न मुक्किव ॥
जिमि भग्गिव भरि सिन्धु लखि सिंह किसोरहि रिस भरिव।
इमि भग्गि असुर पग लरखरत धाइ धरनि कन्हरि धरिव ॥२१॥

दो०—धरकत भरकत असुर उर धाइ धर्‌यौ भुजमेल ।
परयौ गरुड चुंगल उरग कैसे होइ उबेल ॥ २२ ॥
असुर पछारयौ भूमि पै मनि लीन्ही श्रीनाथ ।
जगत अराम अराम दै दई राम के हाथ ॥ २३ ॥

श्रवण०—

आनँद भरे श्री बलभद्द, जान्यौ स्याम बल की हद्द ।
गोपिनु लखे नंद किसोर, उमगी प्रेम हिये हिलोर ॥ २४ ॥

जोरी जब दृगन दै पीठ, भागौ तब बिरह दै पीठ ।
पै नहिं तजत अपनौ दाँव, बेधत उरन करि करि घाव ॥ २५ ॥
मनमय मुकुट मंजु अमोल, चितवन लेत चित कौं मोल ।
अलकैं झलक ऐसी नाँधि, लेती मनहिं बरबस बाँधि ॥ २६ ॥

कुंडिल मकर अद्भुत जान, निर्तत बिना पद बिन पान ।
जबही बदन छवि हिय आनि, तब ही मदन सर संधानि ॥ २७ ॥
हरिबर हँसन लीन्हौ फाँसि, मानौ मोहिनी की पाँसि ।
फूली माल सौरभ देत, भोरे भौंर भौंरे लेत ॥ २८ ॥
किंकिनि कसी पीत दुकूल, पारत दामिनी कौं हूल ।
अंगद बनै बाहु बिसाल, कछिनी जानु जंघ रसाल ॥ २९ ॥
ऐसौ चरन जानत पैंच, जिनने लये मनु मन खैंच ।
बानिक बनैं नटवर ऐन, जापै नचत नट से नैन ॥ ३० ॥

गिरिवर शृंग चढे उमंग, ठाडे लाल ललित त्रिभंग ।
मुरली अधर धरि बलबीर, पूरी सरस सुर गंभीर ॥ ३१ ॥
सो सुर लग्यौ सर सौ धाइ, उठियौ चर अचर अकुलाइ ।
सुनि सुनि मोहिनी धुनि बाजु, जान्यौ जगत जीवन आजु ॥ ३२ ॥

उमडे सघन घन नभ छाइ, छोडत बुंद मृदुल सुभाइ ।
झुमडे अमर चढे बिमान, मुरली सुरन सुनै दै कान ॥ ३३ ॥
गोपी मोहियौ सब साथ, तिन मन परे मनमथ हाथ ।

ठाडी ठगी सी धरि मौन, भूली तन बदन कहि कौन ॥ ३४ ॥
मूँदे अच्छ पच्छन डारि, पंछी सुनत सुरन सम्हारि ।
आँसू ढरत सीसहिं ढोर, मानहुँ बँधे सुर की डोर ॥ ३५ ॥
ग्रीवा श्रवन पुच्छ उठाइ, हरनी हरख हिं रुकी आय ।
जे सुर बिंधी रस की चौंप, तिननैं दिये तन मन सौंप ॥ ३६ ॥
बेली द्रुम लता झुकि झूमि, चुवती धार मधु की भूमि ।
चर में अचर धरि मन प्रीत, बाँधे अचर चर की रीत ॥ ३७ ॥
ऐसी बजी मुरली तान, मोहे सकल लोक सुजान ।
* ... ... ॥ ३८ ॥

दो०—ता मुरली कौं मोहसों मोहन अधर चढाइ ।
ता मुरली की मोहिनी मोपै कही न जाइ ॥ ३६ ॥

सोरठा०—करि बिहार श्री स्याम ग्रह आये त्रिभुवन धनी ।
संग बली बलराम गोपिन सकल समाज जुत ॥ ४० ॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द वृन्ददायिन्यां शरच्चन्द्र चारुमरीचिकायां द्विज गुमान विरचितायां श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिकायां रहसि श्री नंदोद्धारण शंख चूड वधो नामा विंश प्रकाशः समाप्तः ।

---

* इस पद्य का अन्तिम चरण पुस्तक में नहीं है ।

एकविंशति प्रकाश

दो०—इकईसयें प्रकास में ब्रखभासुर ब्रज आइ।
कंस बिचारैं मंत्र कौं केसी दनुज पठाइ ॥ १ ॥

षट्पद०—अंगन भूतल खनतु शृंग गिरिशृंग ढहावतु।
खुरन करूरत खरै धूरि धारन नभ छावतु ॥
सूछम गोमय करतु मूत्र धारन छन छोडतु।
गौवैं ब्रखभ समेट हूँक फुसकरतु बिगोडतु ॥
अस कंस मेघ परसत सघन ब्रखभासुर रिसताइयौ।
ऐंडात गात ग्रीमा कसत दहक दलाकत आइयौ ॥२॥

पद्धटिका०—वह करत नाद छन छन कठोर।
गौ गर्भ गये गिरि सुनत सोर ॥
ब्रज सकल नारि नर अति अधीर।
भगि चले भभरि नहिं धरत धीर ॥ ३ ॥
डग डगन डगमगन ढरन भार।
हे कृष्ण, कृष्ण, यह मुख उचार ॥
गो ब्रखभ बिकल बिडरे खँभार।
भग गये ग्वाल नहिं तन सम्हार ॥ ४ ॥

प्रभु राखु राखु जन सरन जानि।
यह दुष्ट सतावत अधमखानि॥
तिन देखि रसिक राजीव नैन।
करि समाधान फिरि कहे बैन॥ ५॥

दो०—सखा कंध पै कंध दे ठाडे ते ब्रजचंद।
कहिव यहै धीरज धरहु हनहुँ अधम मतिमंद॥ ६॥

सोरठा०—ताकौ टेर सुनाइ अरे दुष्ट इत आवही।
जो पौरख अधिकाइ दीनन कहा सतावही॥ ७॥

भुजंगप्रयात०—सुनै बैन कौं सनमुखे दुष्ट टूट्यौ।
मनौ इन्द्र के हाथ ते बज्र छूट्यौ॥
करै पुच्छ ऊँची महाबेग आयौ।
करैं श्रृंग साम्हें महारोष छायौ॥ ८॥
जुरौ आइ बलदाइ मातंग मानौ।
परब्रह्म देवादि देवे न जानौ॥
करैं घ्रान ते फूत हुंकार कै कै।
चपैटौ चहै ईस्वरै श्रृंग दैकै॥ ९॥
लसै तुंग तीखे करे तेज नैनै।
सुकौमार सैलाग्र से अग्र पैनै॥
उपावै रचै कोटि दावै न पावै।
फनी मै मनौ पच्छराजै बतावै॥ १०॥

छप्पय०—पकरि श्रृंग बलबीर धीर जुग ठेल पछिल्लिव।
फेर झपट गहि पुच्छ झटक झकझोर सुमिल्लिव॥
उलट पलटि तन गइव लटक मुख धरनिय पारिव।
भरभराइ तहँ उठिव लटपटत अंग सम्हारिव॥
करि मधु अरिष्ट गंभीर सुर खुरन धूर धुंधरि पुरिव।
हुंकारि तहाँ रव रत हुडकि हूढो दै हरि सौं जुरिव॥ ११॥
ताहि पकरि भगवन्न मोरमुख ग्रीव मरोरत।

अंगनि अंग उमेठि रजक जिमि बस्त्र निचोरत ॥
लीन्हें शृंग उपाटि फेर उलछारि पछारिव ।
नैन रसन असु कढे मूत्र करि समल सुभारिव ॥
भनि 'मान' ब्रह्म जानै नहीं अति मदँध तामस भरिव ।
वह असुर अधम अबिचार सौं पग पसार पुहुमी परिव ॥ १२ ॥

दो०—असुर अधम पसुजोन फिर बिसई सठ अघवान ।
ये औगुन सब गुन भये जब मारिव भगवान ॥ १३ ॥

सोरठा०—ब्रजबासी सुख पाय गगन अमर बरखत सुमन ।
कंस सुनत दुख पाइ मुनि नारद आये तहाँ ॥ १४ ॥

तोटक०—तप तेज भर्यौ तन यौं दरसै ।
जनु अग्निसिखा निरधूम लसै ॥
त्रप देखि सभा भहराय उठी ।
करि दंड प्रणाम पसारि मुठी ॥ १५ ॥
धरि उत्तिम आसन पूजि तहाँ ।
मुनि बैन कहैं मतिमान महाँ ॥
सुनि कंस कहौ अब खोल सबै ।
जब सत्रु बिचारु बिचारु तकै ॥ १६ ॥

दो०—राम क्रस्न बसुदेव के पुत्र बली अभिराम ।
पहुँचाये तिनि होत ही नंद मित्र के धाम ॥ १७ ॥

गीतिका०—

धरि सुत तहाँ ताछिन सुता लै सूतिका ग्रह आइयौ ।
तिहि रुदन कौ सुर सोर सुनतन घोर गत तुम धाइयौ ॥
लिय सजग कन्या रजक कौं दै तिहि पछारन को ठई ।
जिहि रजक भारे भुज उखारे धरनि पारे नभ गई ॥ १८ ॥
वह जोगमाया महादेवी बचन कहै प्रकासिकैं ।
सुनि श्रवन तुम बसुदेव छोडे साधु साधुहि भाखिकैं ॥

न्रप, राम कृस्न महाबली जे सत्रु हिये बिचारिये।
तिनि पूतनादि प्रलम्ब धेनुक त्रनावर्त सँघारिये ॥ १६ ॥
तब देवरिखि के बचन सुनि सुनि रोस तन में धारियौ।
उर जरिव कोहानल अनल मुख मनहुँ आहुति डारियौ॥
असि काढि तीखन महाभीखन भान ग्रीसम तेजसी।
बसुदेव पै उद्दित करी तिहि अतुल अदय अगेजसी ॥ २० ॥
फिरि देवरिखि मुसकाइ न्रपहिं निबारि बचन सुनाइकै।
नहिं कंस जानहि राजनीतिहि नीति करु सुख पाइकै ॥
बसुदेव कौ बध सुनत तुरतहि सुत पराइन को करै।
नहिं होइ कारज जग अजस नहिं होइ कछु तेरे करै ॥ २१ ॥
यह कहत मंत्र नरेस तुमसौं राजनीति बिलासिकै।
बसुदेव दारा सहित दोऊ लोह फाँसिनि फाँसिकै ॥
इमि राखु जननी जनक तिनकै गोपि थल पहिचानिकै।
फिरि रचहु सत्रु अपाइ मंत्रिन सहित मंत्र बिचारिकै ॥ २२ ॥

दो०—यौं कहि नारद मुनि गये दया धर्म धर धीर।
रिखि भाख्यौ सोई करयौ कंस न्रपति बेपीर ॥ २३ ॥

सोरठा०—तहाँ बेगि अकुलाइ केसी असुर बुलाइयौ।
कहिब ताइ समुझाइ जाव ब्रजनि सत्रुनि हनौ ॥ २४ ॥

पद्धटिका०—लिय बेगि निकट मंत्रिन बुलाइ।
चलि मल्ल मया सी अधम आइ ॥
मदमते अंध बल बिपुल रंग।
बजरंग अंगरन में अभंग ॥ २५ ॥

चानूर दुस्ट मुस्टक प्रचंड।
सल तोसलादि पौरख अखंड ॥
लिय बोल कुबल कौ पीलबान।
तिहि जानि सयानौ डीलबान ॥ २६ ॥

करि हुकुम यहै सबकौं सुनाइ।
ब्रज राम क्रस्न मम सत्रु आइ॥
सब सूर सकल सामन्त आइ।
तिहिं बधन चित्त रचिये उपाइ॥ २७॥

तहँ रंगभूमि भूसित सुबेस।
जिहि बीच खंभ रौप्यौ सुदेस॥
जल जाल झालरैं जलज भूमि।
छवि छलकि छलकि छलकै सुभूमि॥ २८॥

धुज केत बाँधि तोरन करोर।
चहुँ ओर जोर बँधि रहे कोर॥
कलधौत पन्छि पच्छनन रंच।
मनि मंच रचौ मनिके प्रपंच॥ २९॥

फिरि उच्च नीच रचु जथा जोग।
न्रप सभा बैठि बैठे सुलोग॥
तहँ द्वार राखु कुबलय मतंग।
जिहि रोस भरत को जुरहि जंग॥ ३०॥

जो होइ कहूँ तिहिते उबार।
तौ मल्ल हतैं भू पै पछार॥
करि चतुर्दसी तिथि कौं अरंभ।
धरि धनुख पूजिये महासंभ॥ ३१॥

यह जज्ञ रचहु निज सत्रु काज।
सुन मंत्र वही जिहि होइ काजु॥
यह न्रप निदेस सेवकनि दीन।
जे रचनामें अति ही प्रबीन॥ ३२॥

दो०—आइ सकल मिलि सोधि मनि रचना रची अनंद।
मनहुँ कंस के काल कौं ग्रेह रचत मतिमंद॥ ३३॥

सोरठा०—तदनन्तर अक्रूर, बोलि पठाये गेहते।
कुमति मंत्र भरपूर, कही कथा नरनाह ने॥ ३४॥

तोमर०—सुन दान ईस सुबैन, तुम बंस में सुख दैन।
मम हेत को ब्रज जाव, बसुदेव के सुत ल्याव॥ ३५॥
तुम सों कहौं यह जान, तुम नीति में मतिमान।
उठि प्रात गवनौ साजि, जववान जान बिराजि॥ ३६॥

दो०—कहि अक्रूर न्रपाल सुन जैहौं ब्रज मन फूल।
मंत्र कर्‍यौ तुम सकल मिलि सोई अनरथ मूल॥ ३७॥

सोरठा०—जैहौं होत प्रभात, सिद्धि करन परमातमा।
भई कलह की बात, यों कहि भवन सिधारियौ॥ ३८॥

दो०—सूत कहैं सौनक सुनौ सुक मुनि कहि कुरुराइ।
अस्वरूप केसी असुर अति सकोप ब्रज आइ॥ ३९॥

नाराच०—धधात धाइ धर्धरात है धरा धमंक में।
सस्याइ सूख सोक देव देखि संक अंक में॥
लगे जु टाप पाहनें पिसान चूर ह्वै गये।
दिसानि द्वार दाबिकै सुधूर पूर छ्वै गये॥ ४०॥

भ्रमात ना श्रमात गात जो अलात बात के।
ठठाइ हीस दीह देत पात बज्रपात के॥
सँसात स्वाँस घ्रान होत लोक लोक भै भरे।
उमंडि मंडि तुंड फेन फैल फैल कैं परे॥ ४१॥

जदुष्ट पुष्ट दन्त दीह इन्द्र सस्त्र सारसे।
असुच्छ पुच्छ क्रोधजुक्त अग्नि के अँगार से॥
उछाल पुच्छ कौं प्रचंड व्योम में फिरावही।
भ्रमे दिसान मेघमाल दुःख जाल पावही॥ ४२॥
ढकानि कंध अच्छ अच्छि लच्छितैं गिरावहीं।
मनौं प्रतच्छ भूधरा धरा सपच्छ धावहीं॥

भगे गुवाल गोप नारि बाल खभंराइकैं।
सदु:ख क्रन्न क्रन्न जीव लै * पराइकैं ॥ ४३ ॥

सदु:ख भभंराइ जे सम्हार ना सरीर में।
न बूझहीं न सूझहीं दवित्र दीह पीर में ॥
महाकराल कालसौ अकाल जीव भक्षही।
बिहाल त्राहि त्राहि त्राहि जक्त रक्ष रक्षही ॥ ४४ ॥

छप्पय०—तरफत अंगन अंग धापि धमकत धर धमकत।
ढरकत गिरिबर शृंग नरन नारिन उर भरकत ॥
फेरत पुच्छ उठाइ गेरदै नगर सुगेरतु।
हेरतु नंद कुमार चहूँ दिस नैन तरेरतु ॥
भनि 'मान' रोस निर्घोस करि फेन फुलिङ्गन को स्रजहि।
सुख घ्रानि रंध्र स्वासानि सुर ससरात आइव ब्रजहि ॥ ४५ ॥

सोरठा०—हे प्रभु दीन दयाल सरनागत जन राखिये।
असुर महा बिकराल यातैं जीव उबारिये ॥ ४६ ॥

दो०—ब्रजबासी देखे सकल अति व्याकुल बेहाल।
समाधान करि बोध तिनि बोले श्री गोपाल ॥ ४७ ॥

सोरठा०—ताकहँ टेर सुनाइ खलमद बल बिध्वंसिनी।
समरि सिन्धु तरि जाइ तबहिं पराक्रम जानबी ॥ ४८ ॥

छप्पय०—कानि सुनत प्रभु बानि जरिव खल कोह जरनि महँ।
तनमनाइ कर टापि धापि धरि धाइ धरनि महँ ॥
अति प्रचंड हयनानि रह्यौ ब्रह्मण्ड पूरि रव।
सुर बिमान नभ छइव सोर सुनितन संभ्रम भव ॥
भनि 'मान' भयंकर रिसि भरिव भरतु भीम मंगल इव।
वह क्रुद्ध बिरुध्यौ सन्मुखै अधमजुद्ध उद्धत भइव ॥४९॥

---

* यह अशुद्ध है, इस में तीन मात्राएँ कम हैं। कदाचित् यहां 'चले' पाठ होगा।

झंझा झरपिनि झपि झार दस दिसि कौं धावत।
कबहुँ निकट कहुँ दूर जाइ बढ फिरि फिरि आवत॥
उछलत तरल तुरंग सूरता जी तकि कँपिगे।
खुरन धूरि धुधरत धूर धारनि में दबिगे॥
भनि 'मान' झपटि चटपट चटकि कौंचटि करि उचटतु अरतु।
वह कपट लपेटौ असुर तन पलट उलट टापिनि करतु॥५०॥

जो प्रभु अजय अबध्य भक्त बच्छल भय भंजन।
पूरन पुरुख पुरान प्रकृति के पार निरंजन॥
स्वयं ब्रह्म परिपूर नेति निगमागम गावत।
व्यापि रहिव चर अचर फेर श्रुति ताहि बतावत॥
भनि 'मान' कहौं का अधमता नेक असुर नहिं मन धरतु।
ब्रह्मादि देव सेवत चरन ता प्रभु कौं लातैं करतु॥५१॥

छलबल करतु अनेक आसुरी मति उर आनतु।
परब्रह्म नहिं जान गोप ग्वालन सम मानतु॥
जनु खगनायक निकटि नाग सुत भय उपजावतु।
मनहुँ सिंह की रिंघ समद सिन्धुर मझियावतु॥
भनि 'मान' ताहि भुवनाधिपति खेल खिलावत बढि अनखु।
प्रभु प्रबल पछिले पग पकरि फटकि दियौ तिहि सम धनुखु २५।

गर्द मर्द ह्वै उठिव कुरक ह्वै फुरकि सम्हारिव।
छोडत स्वासनि बिसम बढिव कोहानल भारिव॥
मन समान तिहि बेग अतुल बल बिपुल बतावत।
दर्दराइ दरि दखद खुरन खुरतार उठावत॥
भनि 'मान' समर सनंध्य इमि ग्रसैं लेत त्रैलोक कहँ।
मुख बाइ धाइ केसी असुर हाइ हाइ तहँ अमर कहँ॥५३॥
कालदंड सम बाँह मेलि प्रभु ता मुख दीन्हिव।
लाल लोहसी तप्त तालु लगि तलफत चिन्हिव॥

सुर करोरनि जोतु जुलनि ज्वालनसी झारति।
बज्र समान कठोर दसन दारुन भुव पारति॥
भनि 'मान' भुजा बढि उदर में दसहु द्वार रुन्धत परिव।
गइ टूटि डोरि तन जीव की टूक टूक ह्वै महिं परिव॥५४॥
महाघोर रव करिव फटिव तन गिरिव धरनि इमि।
जन सरवर ह्रद सूख गइव फटि पटल पटल जिमि॥
ताकहिं म्रतक निहारि गगन सुर मगन निहारहिं।
पुष्पबृष्टि सुर करहिं अपछरा गान उचारहिं॥
भनि 'मान' दिसन बिदिसन सकल धूरि धुंध सब मिटि गइव।
ब्रजनारि पुरुख आनंदमय जबहिं निधन केसी भइव॥५५॥

दो०—देह मिटै देही कढ्यौ गिर्यौ धरनि बलवान।
अंत सबल जनु कंस कौ हरि लीन्हौं भगवान॥५६॥
अस्व रूप केसी असुर असुरन में सिरताज।
कंस तुल्य तिहि जानिजे न्रप भूखन कुरुराज॥५७॥

सो०—ब्रज जन कमल समान फूलि उठे प्रभु मित्र लखि।
दुख तम देखि परान चित्त कोक आनंदमय॥५८॥

दो०—हरि मन हरि प्रिय हरि हितू हरि बधि हरिसौं नेम।
हरखित आये देवरिखि हर दरसन के प्रेम॥५९॥
महातपी तप तरनि ताप पातकन बिमोहन।
धुंसक तम अज्ञान ज्ञान विज्ञान बिमोहन॥
तप्त सुर्न सम देह तेज तप ज्वलनि प्रकासित।
सदा सच्चिदानंद चित्त आनंद बिलासित॥
भनि 'मान' रागसागरसुहृद सम दम कर इंद्रीनि जित।
चलि समर कौतकी देवरिखि आये हरि दरसन हित॥६०॥

दो०—कर बीना बीना बनौ बीना गाइन राग।
उर बिराग हरि राग में पगे रहत मन पाग॥६१॥

इन्द्र०—हे कृस्न हे कृस्न सुजोग धारी।
केसी करयौ बिघ्न बलाधिकारी॥
लोकेस जा भीति सभीत भारी।
दुष्टानि में पुष्टित गर्भगारी॥ ६२॥
ताकौं हतो ख्याल बिहार कर्त्ता।
गीर्वान इन्द्रादिक दुःखहर्ता॥
भूभार भारी हरिये मुरारी।
संसार साची जन पक्षधारी॥ ६३॥

छप्पय०—कुवलय मल्ल ससंक मगध दल दलिहौ भारहु।
द्वारावती बसाइ फेर भौमासुर मारहु॥
सहसनि त्रिया बिबाह तहाँ जदुकुल बिस्तारहु।
कासिराज, ससिपाल, आदि न्रप साल्व सँघारहु॥
हति जरासिंध करि पांडुमख सदा प्रभो परमारथी।
भुवनादि भूमि भारत रचहु पारथ रथ ह्वै सारथी॥ ६४॥

दो०—इहि प्रकार भक्तन अवनि पालहु दुष्टन मारि।
कहि नमामि गे देवरिखि हरि गुन गन उच्चारि॥ ६५॥

तोटक०—प्रभु गो धन गोप सकेल चले।
गिरि के तट में सब मेल भले॥
बन फैल बगार धरा फिरतीं।
मन उन्नत चारु हरे चरतीं॥ ६६॥
चलि ग्वाल उमंगन शृंग चढे।
प्रभु प्रेम प्रमोदन अंग बढे॥
करि हास गरे भुज मेलत हैं।
फिरि आँखि मिचामिच खेलत हैं॥ ६७॥
प्रभु बाल बिनोदनि राँचि रहे।
तहँ खेल खिलारिन माँचि रहे॥

मय दानव सून ततच्छन में।
खिभिरयौ मिलि बालक ब्रंदन में ॥ ६८ ॥

दो०—मय दानव कौ पुत्र यह व्योमासुर बलवान।
आयौ गोपन में तहाँ करन लगौ अपमान ॥ ६९ ॥

सो०—सखा हरे तिहि बार रहे ग्वाल गन सेस कछु।
राखि सिला दै द्वार गिरि गोवर्द्धन कंदरा ॥ ७० ॥

रसावली०—प्रभु देखि हाल, रहि सेस ग्वाल।
मन में बिचार, छल है मुरारि ॥ ७१ ॥
गहियौ सदुष्ट, कर मूल पुष्ट।
गये सूख अंग, हुव खेल भंग ॥ ७२ ॥

छप्पय०—महा कठिन बिकराल रूप तिहि प्रभुहि बताइव।
कोटिनि करत उपाइ हाथ नहिं छुटत छुटाइव ॥
सिंघ दसन गज गहिव कहहुँ किमि उकढ सुजाई।
खग नायक की चुंच बिधिव अहि किमि भग जाई ॥
यह 'मान' कहतु छूटइ सुकिमि बज्रमूठि प्रभु तिहि धरिव।
उलछार पछारिव असुर कौं दै चिकार धर पर परिव ॥७३॥

दो०—धर धरकत ढरकत द्रखद द्रुम तरकत भख भोर।
अति लाघव पटिकव अधम गिरि तट नंद किसोर ॥७४॥

सो०—बन ते गोधन फेर सखन सकेल चले घरै।
मुख मुरली सुर टेर मोद भरे मातन मिले ॥ ७५ ॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द वृन्ददायिन्यां शरच्चन्द्रचारुमरीचिकायां द्विज-
गुमान विरचितायां श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिकायां मधु अरिष्ट
केशीवध वर्णनो नामा एकविंशप्रकाशः समाप्तः।

———

द्वाविंश प्रकाश

दो०—द्वाविंशतिहिं प्रकास में आये ब्रज अक्रूर ।
लै जेहैं बिधि बंधु कौं जे जगजीवन मूर ॥ १ ॥

ललितपद०—

उठे प्रात अक्रूर सूर कर प्रातकृत्त अनुरागे ।
बुद्धिमान सज्ञान सुहृद हरि चरन प्रेमरस पागे ॥
सुबरन रचित खचित मनि गन सौं सुबरन महा सुहायौ ।
दिनकर किरन समान किरन छवि ऐसौ रथ मगवायौ ॥ २ ॥

लागे तुरँग सुरँग अति चंचल पौनहुते अधिकाई ।
मन बढि हरि दरसन के काजै तिन चढि खुरी कराई ॥
हाँक्यौ रथ अक्रूर सूर उठि धूर धुंध नभ छाई ।
द्रग तलफत लखिबे के काजैं उर मिलिबे अकुलाई ॥ ३ ॥

मग लगि चले सगुन देखत मन लेखत अमित निकाई ।
गोथन बच्छ दूध पीवत म्रगमाल दाहिनी आई ॥
धन्य कंस आइसु मुहिं दीन्हौं भई चित्त की चाही ।
छिन छिन प्रेम सिन्धु में डूबत रथ हाँकन सुधि नाहीं ॥ ४ ॥

देखौं कब गौर स्यामल तनु अतुलित ललित लुनाई।
सुनियतु काम मनोहर मूरति जोरी परम सुहाई॥
दीनबंधु करुना के सागर संतन सदा सहाई।
जो मोकौं जन जान आपनौ मिले होइ मनभाई॥ ५॥
जग कर्मन तप रह्यौ हृदै यह दिन हू दिन अधिकाई।
भरि अँकबार अंक भरि भैंटों तब जिय जरनि सिराई॥
धन्य भाग दिन आजु धन्य वे पुन्य धन्य अधिकावै।
द्रग चकोर वा बदनचंद को रूप सुधा कब पावै॥ ६॥
देखौं कबै सोक भय मोचन लोचन अति अनियारे।
जे गोपिन उर मदन बान से सले होत नहिं न्यारे॥
जब यह भाल लाल चरनन कौं परसे तब रज लागे।
खुलि है कठिन कपाट सुकृत के भाग भलाई जागे॥ ७॥
सोच बिचार करत मन माहीं दिनमनि अथवत जाने।
चंचल हय करि चलि रथ बाह्यौ खिरक आइ नियराने॥
गो गोसली करत ग्वालन मिलि लालन तहँ पहिचाने।
ब्रखभ नाद हुंकार धेनु कौ सुनत श्रवन हुलसाने॥ ८॥*
कछु चलि गये अगमने जबहीं छिति अंकित पग देखी।
अंकुस कुलिस कलस धुज जामे धन्य धरनि कर लेखी॥
बिह्वल प्रेम तुरत रथ उतरे रज वह सीस लगाई।
नैन कंठ उर सरस परस कर मनहुँ रंक निधि पाई॥ ९॥
बोले स्याम ग्वाल सब सुनि जौ दोहत भेल लगत हैं।
करि अबार डारत तुम हमसों बाबा दकन लगत हैं॥

---

* इस जगह निर्हेतुत्व दोष है। क्योंकि अक्रूर मथुरा से प्रातःकाल चलकर शाम तक भी वृन्दावन न पहुँच पाये। तिस पर भी तुर्रा यह है कि 'लागे तुरँग सुरँग अति चंचल पौनहुते अधिकाई' पाठ लिखा गया है। कदाचित् कवि को मथुरा वृन्दावन का फासला ज्ञात न था।

धौरी धूमरि पियरी पाटै जमुनी आदि लुराई ।
इन के बच्छा पहिले मेलौ सबते पहिले आई ॥ १० ॥
जादर लाल दूध की हेटी और नसमरी जोहौ ।
इन के बच्छा दुबरे दाऊ इनकौ दूध न दोहौ ॥
कारी कबरी लीली रोथैं हेमै नहीं निबाहै ।
मेरे जान चुखानी सिगरी तातैं बछा न चाहै ॥ ११ ॥
बोले बलबह कछू दिनन ते मोहि पत्यानी गैया ।
बड़ी लखेरी बड़ी फरसरी तुम जिन दुहियौ भैया ॥
आजु वही दुहिहौं मैं दाऊ और दुहन नहिं दहौं ।
पीठि ठांकि पुचकारि पोंछि करि मैं सूधी कर लैहौं ॥ १२ ॥
सुनि सुनि बचन दानपति कौ मन दरसन चाहि रम्यौ है ।
हृदय छिपै प्रभु बंचन स्वाति जल सुनि सुख जलज जम्यौ है ॥
चौदह लोक स्रजत पालत लय होत तनक भुव भाएँ ।
गो पर ब्रह्म अन्तमय स्वामी यह ततबीर लगाएँ ॥ १३ ॥
बिहरत मिलौ ग्वाल गोपिन में ग्वाल न ताकहूँ जानै ।
जैसे चंद हतौ जलनिधि में जलचर जलचर मानौ ॥
खिरक द्वार पहुँचे सुफलकसुत सुत हरि हरखि जके हैं ।
इकटक नैन टकटकी दीन्हैं गति तजि पलक थके हैं ॥ १४ ॥
कर दोहनि लोवनि मन लीन्हैं छवि सोहनी सुराजै ।
कटि पट पीत निकट गौवन के नटबर बेस बिराजै ॥
अलकै ललित चलत कुंडल छवि गंडन कलित सुहाई ।
छवि कंजन खंजन की गंजन ऐसी दृगनि लुनाई ॥ १५ ॥
मदन सुभट धनु करी कसी से ऐसी भोंह कसी सी ।
बदन सरद सरसी रुह तापर अलसि सुमाल लसी सी ॥
सोभा सलिल बदन सरसी पर पूरनता कहती है ।
हँसन तरंग सगंडू व्यौमन हेरे मिलत नहीं है ॥ १६ ॥

गहिबर गरे हृदय भरि आयौ दृग जलरुह जल ढारै।
उमडि महानद परथौ प्रेम कौ कैसे बाँह पसारै॥
चित्र खचे से रहे देखि कर उर धीरज नहिं धारै।
चलि न सकै को मिलै धाइ कर को मुख बचन उचारै॥ १७॥
करुना सिन्धु दीन के नाइक देखि दसा मन भाई।
प्रेमाकुल जन जानि आपनौ महिमा भक्ति दिखाई॥
भुजा पसार अगमने चलि गहि मोहन कंठ लगाये।
कहि को ऐसौ कृपासिन्धु को करि है जन मन भाये॥ १८॥

मेटत ही त्रयताप पापकी भवभय भभर भगानी।
कंस दरस की दुसह दवागिनि लागत हृदय सिरानी॥
छोडन नही हृदै भावै मन सुख समूह यों धारै।
ज्यौं गजराज तप्यौ आतप कौ रेवाउदक बिहारै॥ १९॥

समर सिंघ बल रिंघ महामति राम मिले फिर आई।
उमगी प्रीति प्रमोद तरंगिनि चढी कूल है धाई॥
बाँह पकरि लै चले सदन कौं स्याम संग दोऊ भाई।
मान सहित आसन बैठारे मिले नंद फिरि आई॥ २०॥
पग प्रच्छाल करी पूजा प्रिय पाक बिबिध मँगवायौ।
भोजन अंत दये बीरा परजंक बिसद बिछवायौ॥
तापर पौंढ खोइ मग श्रम तहँ मगन मोद मन भारी।
राम स्याम आये फिरि बैठन ब्रंदा बिपिन बिहारी॥ २१॥

हे अक्रूर कहत मनमोहन अब कछु गोइ न राखौ।
कुसल प्रस्न अपनी जदुकुल की सो सब हमसों भाखौ॥
कंस नरेस उदित ब्रखरवि सम तच्यौ कुमति लटियाई।
जजन जज्ञ जदुकुल सुरपूजा मिटी सकल हरिआई॥ २२॥
धर्म सलिल निघटौ जग सरवर प्रजा मीन अकुलानी।
जाके नग्र बसत तुम कैसे सो सब कहहु कहानी॥

बोले तहँ अक्रूर सूर परिपूरन प्रेम प्रकासी ।
सुनिजे ब्रजजीवन नँदनंदन छवि सुन्दर सुखरासी ।। २३ ।।

दुस्सह तरनि प्रताप त्रपति के साँसत बसत कुबासा ।
प्रात्रटकाल आगमन तुम्हरौ जियत जीव इहि आसा ।।
घन समान उद्दोत कलेवर द्रष्ट अमृत भर कीजै ।
जलचर सम मथुरा के बासी करि सीतल सुख दीजै ।। २४ ।।

तापर कंस कर्‌यौ यह आइस कुटिल त्रपति निर्ज्ञानी ।
बोलि पठाये दोऊ बंधव धनुस जज्ञ जिय ठानी ।।
जगतअधार जगतपत जन की भव भय भारी हरने ।
जग कारन जग प्रीतम प्यारे जग कारज सब करने ।। २५ ।।

दो०—सुनि ब्रजचंद अनंद सौं कह्यौ नंद सौं जाइ ।
दूत पठायौ ब्रज बिसै गोरस सकट भराइ ।। २६ ।।

सोरठा०—गोरस सकट भराइ जुगल बंधु प्रियनंद जुत ।
प्रात मधुपुरी जाइ धनुस जज्ञ त्रप देखि हैं ।। २७ ।।

पद्धटिका०—

मधुपुरी चलन की सुनत बात ।
कँपि उठे त्रियन के बिमल गात ।।
उर जम्यौ बिरह अंकुर सुहाइ ।
गई निसा नींद आँखिन न आइ ।। २८ ।।

दिगद्वार अरुन कीन्हौ प्रचार ।
नभ फैल उठी लाली अपार ।।
इमि ककुभ केस छबि बढयौ भूर ।
जनु पूरदई सिन्दूर धूर ।। २९ ।।

दिग नभमें तारक इमि बिसाल ।
जनु पद्मराग दिग त्रियाभाल ।।

कर परस परस कीन्हौं प्रभास।
मुख कमल कमल सोडस प्रकास॥ ३० ॥
मधु मंजु कंज गुंजरत भृंग।
चलि मिले कोक कोकीन संग॥
खग कुलन कुलाहल मच्यौ जोर।
सुनि जगे जगतपति जानि भोर॥ ३१ ॥
करि प्रातकृत्य सिंदन मगाइ।
तिहि चढे अनुज जुग अद सुभाइ॥
पग बन्दि दानपति महाधीर।
रथ बाहि तुरंगम गति समीर॥ ३२ ॥
त्रिय कढी गुरजननि टोर सील।
ह्वै रहीं मलिन मंजीर झील॥
कर मीडि हाइ लेतीं उसाँस।
बिन स्याम भाखसी ब्रज निबास॥ ३३ ॥
इक कहइ कहाँ मोहन मुरारि।
द्रग बारि बिमोचहिं नवल नारि॥
इक मूर्छि गिरी प्रभु सुनै गौन।
इक रही ध्यान धसि साधि मौन॥ ३४ ॥
इक कहइ कहा अक्रूर क्रूर।
ले गये हमारी जियन मूर॥
इक उच्च थली पर चढइ धाइ।
फिर रही जहाँ लगि रथ दिखाइ॥ ३५ ॥

दो०—महाबिकल गोपी भई हृदै बिरह की पीर।
राम स्याम रथ पहुँचियौ रवितनया के तीर॥ ३६ ॥

हरिगीतिका०—

रथ गयौ जमुना जल निकट प्रभु आचमन जलकौ कर्‌यौ।
जलधार नहिं मझि पाइयौ इहि पार रथ अस्थित कर्‌यौ॥

फिरि दानपति अस्नान कै प्रभु मानि आइसकौं चले ।
उरऊ बस्यौ जल डूब देखे राम स्याम महाभले ॥ ३७ ॥
यह है कहा मन भयौ संभ्रम उछल जलते आइयौ ।
रथ जुगल बंधव देखि अस्थित फेरि भ्रम कौ पाइयौ ॥
तहँ फेरकै अक्रूरजू जल डूबि सो थल देखियौ ।
वह दिव्य रूप अनादि पूरन ब्रह्म दरस बिसेखियौ ॥ ३८ ॥
गिर तुहिन सम बिग्रह ग्रहन लखि पाप निग्रह होत हैं ।
िर सहित सुन्दर अंग से अस्फटिक चटक उदोत हैं ॥
नि जटित क्रीट जुलजुल कर निकर झलक बिराजहीं ।*
सहस द्रगनि असेस सोभा सेस ऐसे राजहीं ॥ ३९ ॥
ाहि पर चतुर्भुज रूप अद्भुत सजल जलद निहारिये ।
नि नील इन्दीवर कहा छवि कोटि कोटिन बारिये ॥
द रत्न उज्जल मुकुट माथे जुटित जोति बिराजही ।
खरवि किधौं मध्याह्न के इहि भाँति दीपति साजही ॥ ४० ॥
ुव भाल सुन्दर तिलक तापर झलक छलक अपार सौ ।
रँग पक्क बिम्बाअधर लाली मधुरता कौ सारसौ ॥
द्रग अरुन अरुनोदय कमल के जनु सहोदर से लसैं ।
कच कुंच मेचक अलक तट जनु भ्रंक अवलिनसौं बसैं ॥ ४१ ॥
तहँ श्रवन कुंडल मकर डोलत छवि कपोलन में भरे ।
झल मलत ऐसे मनहुँ रवि प्रतिबिम्ब रविजा में परे ॥
मुख सुधासर सम्पन्न सोभा सरद ससि पूरन मनौ ।
तिहि मध्धि ईसद हास वीची जनु मरीची सी भनौ ॥ ४२ ॥
सुख श्री निबास बिसाल बच्छ दयाल दीनन पै रहैं ।
मनि कंठ कौस्तुभ उर बिभूसन भुजन भूसन को लहैं ॥
दुज सूल कटि तट मेखलापट पीत धोती पीत है ।
भुज चार आयुध चार कर में वेद कहि गोतीत है ॥ ४३ ॥

* यह पाद अशुद्ध है ।

पग पद्मराग प्रबाल रँग नख चंद चारु बिसेखिये।
मुनि मन सदा ललकत रहैं हम ध्यान में कब देखिये॥
प्रभुरूप को कहि सके सोभा अमित अतुल अखंडि सो।
तहँ पारखत सब करत अस्तुति मधुर बानी मंडि सो॥ ४४॥
जहँ ब्रह्म रुद्रहि आदि सुर उच्चार गुन गन गावहीं।
प्रहलाद नारद सारदा सनकादि जिनि कौं ध्यावहीं॥
कहि सिद्धि विद्याधर तपी जोगीन्द्र बाँधि समाधिकौं।
फिरि नेति नेति हि कहहि श्रुति तिहि गुनन जानि अगाधिकौं॥४५॥

दो०—देखि रूप अक्रूर के रोम उठे सब गात।
अश्रुपात गदगद गिरा कहत बनत नहिं बात॥ ४६॥

सो०—धरि धीरज अक्रूर हस्त कमल जुग जोरि करि।
महाज्ञान मतिभूर जय जय सब्द उचार हीं॥ ४७॥

पद्धटिका०—

प्रभु अखिल बीज जग जन अधारि अद्वैत द्वैत भक्तन उधारि।
तुम राम रोम कोटिन अपार ब्रह्माण्ड लगे को लहहिं पार॥४८॥
तुम त्रिगुन आत्मक त्रै बिहाइ हे दयासिन्धु चित मृदु सुभाइ।
जग स्रजत पालना करत नाथ लै करत वेद में सुनी गाथ॥४९॥
सुरसंभु स्वयंभू गुन अनन्त नहिं लहत अन्त यह कहत सन्त।
तुम ब्रह्म सक्ति चेतन अखंडि बह रही व्यापि चर अचर मंडि॥५०॥
सुर असुर सेव्य पग बंदि सीस प्रभु अकथ अनामय तुरी ईस।
फिरि प्रकृति पुरुस पूरन पुरान मुहि दियौ दरस निज शिष्य जानि ५१
परब्रह्म रूप दीन्हौं दिखाइ तिहि करत जोग जोगी उपाइ।
फिरि लोप होत नहिं लग्यौ झेल नट कला लेत जैसे सकेल॥५२॥

दो०—बेर बेर दण्डवत करि मोद गमन मति धीर।
निकल नीरतें कृत्त करि गये जहाँ बलबीर॥ ५३॥

सो०—बोले श्री भगवान संभ्रममय अक्रूर तुम।
जल बूडत मतिमान गगन तरनि देख्यौ कहाँ॥ ५४॥

चौ०—हे भगवान तरनि आकास ये सबतें तुम में आभास।
पन्नग पवन जहाँ लगि लेखि चर औ अचर बिस्वमय देखि ॥५५॥
अन्तरजामी जानत सबै या कहिकै रथ हाक्यौ तबै।
गति मारुत आतुर यह जान मथुरा निकट पहुँचियौ आन ॥५६॥

छप्प०—कहुँ बन उपवन सघन फूल फूली फुलबाई।
कहूँ कूप सर अमल बिपुल बापी मन भाई॥
कहूँ मत्त गजराज बाज राजी कहुँ फेरत।
कहूँ गिरत म्रग मेख मल्लविद्या कर पेरत॥
भनि 'मान' सुभट पाइक रथी नगर नार बहु लोग तहँ।
पुर कोट द्वार प्रबिसत निकस भीर कुलाहल होत जहँ ॥५७॥

दो०—यह प्रकार देखत भये ब्रज जीवन ब्रजराज।
उपवन सरस निहारि तहँ उतरे सकल समाज॥ ५८॥

सो०—जाहु घरै अक्रूर कहौ आगमन जाइकै।
आहैं प्रात जरूर निसा बिगत न्रप कंस के॥ ५९॥

दो०—कर संपुट अक्रूर करि करी बिनय की गाथ।
मेरे ग्रह पग धारिये तो मैं होहुँ सनाथ॥ ६०॥

सो०—सुन अक्रूर सुबैन भक्तन में सिरताज तुम।
तुव मंदिर सुख दैन कंस मारि हम आइ हैं॥ ६१॥

दो०—प्रभु आइस धर सीस पर गये न्रपति दरबार।
तहँ आगमन सुनाइ कै गवनै निज आगार॥ ६२॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द वृन्ददायिन्यां शरच्चन्द्र चारुचन्द्र मरीचिकायां द्विज गुमान विरचितायां श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिकायां अक्रूर द्वारेण श्रीरामकृष्णागमनो नामा द्वाविंशप्रकाशः समाप्तः।

त्रयोविंशति प्रकाश

दो०—त्रयबिंशतैं प्रकाश में मथुरा प्रबिस प्रसंग।
सयरंध्री माली मिलन रजिक धनुस करि भंग ॥ १ ॥

श्रवणसुखद०—

मथुरा देखिबे की चोप, लीन्हैं सखा संगे गोप।
सुंदर गौर स्याम किसोर, ऐसी मृदुल जोरी जोर ॥ २ ॥
पुर चहुँ कोटि द्वारिन भीर, परिखाभरी जल गंभीर।
प्रबिसे नगर देखन स्याम, देखे कनक सुन्दर धाम ॥ ३ ॥
बैठे बनिक हाट बजार, मानौं धनद बस्त अपार।
चौहट चौतरा चौपार, झल झल होत छबि आगार ॥ ४ ॥
जिन के जटित मनिमय द्वार, बिद्रुम फटक चटक निबार।
तोरन जलज झालर भूमि, कलसा रहे नभ कौं चूमि ॥ ५ ॥
छाजै छबि छबीले जोर, तिन पर नवल नर्त्तत मोर।
जहँ सोरह कँगूरा जाल, मनि बैडुर्ज बज्र प्रबाल ॥ ६ ॥
राजै उच्च चहुँ प्रासाद, जिनपै चढे जाइ बिसाद।
झँझरिन झझक झाँई लाल, उगलैं मनहुँ ज्वाला जाल ॥ ७ ॥

पारावत भ्रमै मन भूम, दर्पन देखि बोलै घूम।
जहँ तहँ दुन्दभी घहराइ, ऊँची धुजा नभ फहराइ॥ ८॥
ऐसी नगर सोभा देखि, हरखित सखन जुत हरि सेस।
आये जुगल बंधव जानि, धाई नारि उर सुख मानि॥ ९॥
येकै अटन चढि चढि देखि, ऊगे मनहुँ चंद बिसेखि।
येकै केस छूटे सीस, आई पौरि धाई बीस॥ १०॥
ऐसौ देखिवे कौ भाव, जिनकौं भयौ बिभ्रम हाव।
मोतिन लरैं रुरकैं भाल, ऐसी बेग दौरीं बाल॥ ११॥
बैनी फूल फैली छूट, उरतें हार भूपर टूट।
त्रिय गजराज गमनी तौन, चंचल चंचलासी जौन॥ १२॥
तिनिकौ तन बदन न सम्हारि, इक टक रहीं नैन निहारि।
जुरत न नैन ऐसो हाल, जैसे ठठैं उर नट साल॥ १३॥
भूलीं असन पानी पान, भोईं मदन मोहन बान।
एकै कमल बदन उघारि, लाजा फटकती छज बारि॥ १४॥
फूलन बरस हरसें एक, छोड़े पतिव्रता की टेक।
दूवर जोर मंगल मूल, अच्छित दूब दल फल फूल॥ १५॥
पूजा करहिं ब्रह्म बिचार, अस्तुति करहिं वेद बिचार।
पुरजन सकल नर औ नारि, प्रभु पर रहे तन मन बारि॥ १६॥
इत उत छवि बिलोकत जात, पहुँचे रजक ग्रह जगतात।
* ... ... ॥ १७॥
सोरठा०—बोले श्रीभगवान, राज वस्त्र दे रजक तैं।
पहिरे हम सुख मान, मन इच्छित गोपन सहित॥ १८॥
मोदक०—गोप गुवाल सबै बनचारिय।
कंमर बस्त्रन के अधिकारिय॥

* इस के अन्तिम दो चरण मूल पुस्तक में नहीं हैं।

राजनि चोल नहीं तुम लायक।
बैन कहे अपने दुखदायक ॥ १६ ॥

दो०—रंगकार रँग में निपुन रजक सुदुष्ट सुभाइ।
राजमया धनवान पुन तातैं मद अधिकाइ ॥ २० ॥
तासु बचन सुन नंदसुत मुख ताडन तिहि कीन्ह।
ग्रीम मरोरि बहोरि तहँ डार धरन पर दीन ॥ २१ ॥

तोटक०—तिहि मृत्युक देखि परयौ महि में।
सब भ्रत्तक भागि चले भय में ॥
प्रभु लूटि दुकूल लिये सिगरे।
घर भीतर बाहर लौं बगरे ॥ २२ ॥
पट पीत सनील चुभे मनमें।
सुख पाइ सबंध सजे तनमें ॥
कछु सेत सुरंग रँगे गहिरे।
मन इच्छित गोपन ने पहिरे ॥ २३ ॥
दरजी मरजी मिलि आइ गयौ।
अरजी करि कै कर जोरि रह्यौ ॥
प्रभु पाइ निदेस दुकूल सचे।
प्रति अंगन अंगन माँहि रचे ॥ २४ ॥
तिहि के उर में प्रभु प्रेम लह्यौ।
बर माँग दयानिधि ताहि कह्यौ ॥
तब मूरति बास करै हियमें।
प्रभु इच्छ यहै जन के जियमें ॥ २५ ॥

दो०—जो माँग्यौ सोऊ दयौ दई बिभौ सुख पाइ।
मुक्ति दई सारूप फिर को ऐसो प्रभु आइ ॥ २६ ॥

सो०—गये सुदामा गेह माली जात बखानिये।
राखत हरिपद नेह आगे चलि प्रभु कौ लये ॥ २७ ॥

लक्ष्मीधर०—अर्घ दै ल्याइ बैठारि सिंहासनै ।
पाइ प्रक्षालतीं से ग्रहे बास नै ॥
धूप दै दीप पूजा करी रीति सों ।
पुष्पमाला समर्पी महा प्रीति सों ॥ २८ ॥
पक्क लैकै फलै मिस्ट आगे धरे ।
अंजुली जोरिकै प्रेम आँसू ढरे ॥
भाग्य है आज ऐसो कहौ कौन में ।
जो परब्रह्म आये अछै भौन में ॥ २६ ॥
त्रिप्र पित्रादि कुल देव ह्वै भूरि कै ।
सिद्धि निद्धै सुमेरे रही पूरिकै ॥
देव देवाधि स्वामी कहौ सो करौ ।
पुन्य मेरे जगे पाप तापौ हरौ ॥ ३० ॥
प्रेम पूरौ लख्यौ देखि निहिकाम कौ ।
मोद बाढ्यौ महाराम कौ स्याम कौ ॥
अच्युतै रीझि बोलै कही भावनी ।
भक्त तेरे बसै ज्ञान स्यौ पावनी ॥ ३१ ॥
अन्न बस्त्रादि द्रव्यै रहै गेह में ।
येक सी दृष्ट राखै रहै नेह में ॥
जोरि कै पानि कौ सीस नायौ तहाँ ।
देह ठाडे भये रोम हर्स्यौं महाँ ॥ ३२ ॥

दो०—छोडति सरस सुगंध मधु लिपटत भ्रम भ्रंगालि ।
पहिराई पग बन्दि तिहि फेरि सुमन की मालि ॥ ३३ ॥

दोधक०—

ता ग्रहते चलि कुंज बिहारी, मारग राज लख्यौ सुखकारी ।
सोहत सुभ्र सुगंधन सीच्यौ, मत्त गयंदन के मद भीज्यौ ॥ ३४ ॥

कंस नरेस कहावत दासी, वक्र सरीर निहारत हाँसी।
चंदन लेप लिये कर माँही, जात चले जु मिली मग माँही ॥ ३५ ॥
मोहन देखि मनोहर जोरी, देखत ही त्रियकी मति भोरी।
बूझि उठै प्रभु हैं कुबिजा कौं, अंगन लेप करौ कहु काकौं ॥ ३६ ॥
जो हम अंगन लेप सम्हारौ, होइ भलो सब भाँति तिहारौ।
बैन सुने रवती हरखी है, कोटि मनोज प्रभा परखी है ॥ ३७ ॥
कंस नरेसहि लेप चढाऊँ, लेपन बुध्धि प्रबीन कहाऊँ।
सो सब अंग बनाइ बताऊँ, चित्र बिचित्र बनाइ बताऊँ ॥ ३८ ॥

आजुहि धन्य घरी सुख छायौ, आजुहि जीवन कौ फल पायौ।
प्रेम उमंगि हिये महँ आयौ, केसर चंदन चौप चढायौ ॥ ३९ ॥
अंगन लेप बिचित्र बनाये, और सुगंध सखान लगाये।
तापर रीझि उठे जदुराई, देखत प्रीति हिये अधिकाई ॥ ४० ॥
दो०—चरन चरन सों दाबि प्रभु करसो ठोडीं तानि।
अति सुन्दरी किसोर बय भई अंगना जानि ॥ ४१ ॥

दंडक०—केसरि सी भासी अंग केसरि प्रकासी बाल।
हेम की लतासी फेर हेम कलिकासी है ॥
महारूपरासी देह दीपिकासी खासी।
फूले फूलन सुबासी फूले फूल मालिकासी है ॥
भनत 'गुमान' कोटि कोटि मैनकासी कहा।
काम बनतासी ताडितासी वा प्रकासी है ॥
चित्रते निकासी हरि चित्र पुत्रकासी सोहै।
चंद की कलासी चारु चारु चंद्रिकासी है ॥४२॥

दो०—रति रम्भा करिये कहा रमा कहै अति होति।
वहै कूबरी सूबरी करी कनिक की जोति ॥ ४३ ॥
करै कटाच्छन स्याम पर बाम सु इहि अनुमान।
सुमनधनुस जनु धनुस ते छोडत तीखन बान ॥ ४४ ॥

सो०—सयरंध्री अकुलाइ पीताम्बर गहि छोर कौ ।
मेरे ग्रह सुख पाइ चलहु जगतपति प्रानपति ॥ ४५ ॥
दो०—गिरिधर ताहि प्रबोध कर कछुक लाज कौ भार ।
कंस मारि तेरे मदन करिहैं कछुक बिहार ॥ ४६ ॥
सो०—प्रभु बानी उर धारि हृदय मदन सर की बिथा ।
उतकंठित ह्वै नारि प्रोसित ह्वै ग्रह बासु करि ॥ ४७ ॥

मोतीदाम०—चले जुग बंधु सखा सब संग ।
लजै जिनि अंगनि कोटि अनंग ॥
लियौ नटनागर मारग और ।
सरासन जज्ञ रच्यौ जिहि ठौर ॥ ४८ ॥
बँधे तहँ तोरन केत पताक ।
अनेकन सूर रहे धनु ताक ॥
सजै सब अस्त्रनि सस्त्रनि अंग ।
फिरैं चहुँ वीरन लच्छन संग ॥ ४९ ॥
हिये हरि जानि बहोत अबेर ।
प्रभा लखि फेर तक्यौ धनु फेर ॥
धर्यौ जनु पर्वत आइ समूल ।
लसै सुरराज सरासन तूल ॥ ५० ॥

छप्पय०—अति लाघव घनस्याम बाम कर धनुस उठाइव ।
सहज सुभाइ नबाइ चौप करि ताहि चढाइव ॥
गुन संजुत जब करिव करिय टंकोर कठिन धुनि ।
अभ्भक परे सब सुभट सजग ह्वै गये धीर पुनि ॥
भनि 'मान' ताहि खैंचत प्रभो मंडलीक कर श्रवन छिय ।
बल बिहद समद सिंधुर मनहुँ कमलनाल द्वै खंड किय ॥५१॥

दो०—तासु रह्यौ रव पूरि कै दिस बिदिसन आकास ।
पुर नर नारी कंस के सुनत श्रवन उर त्रास ॥ ५२ ॥

भुजंग०—महा सब्द के सोर में जोर भूले।
समाधान ह्वै क्रुध्ध में जुध्ध फूले॥
सबै रत्तकै तत्तनै घेर आये।
इकै खैंच कैं खर्ग कौं अग्र धाये॥ ५३॥
इकै अत्तकै सत्त कौ सौ उभारे।
इकै लै गदा कौं अदा कै निहारे॥
इकै सामुही सूल की हूल कीन्है।
इकै कोह माते धनुर्बान लीन्है॥ ५४॥
इकै भिन्न ह्वै भिन्डपालै फिरावै।
इकै गर्ज कै तर्ज कै तेज आवै॥
चहूँघा रहे घेर कै दुःखदानी।
कहै रोस कै जोस में तर्ज बानी॥ ५५॥
सबंधै हिये स्याम हर्सै अलेखे।
मृगाधीस ज्यौं मत्त मातंग देखे॥
तहाँ रामजू स्यामजू संग दोऊ।
लियै हाथ कोदंड के खंड दोऊ॥ ५६॥
हनै सीस जे श्रोन धारा ढरे हैं।
इकै फूटि कै टूटि भू पै परे हैं॥
इकै हाइ कै बाहु जंघा बिनाहीं।
इकै चूर ह्वै सूर जानै न जाहीं॥ ५७॥
इकै सर्द ह्वै जर्द ह्वै दर्द भारे।
इकै मर्द जे गर्द में मर्दि डारे॥
भगी भीर भहराइ पाछे न हेरै।
गिरै येक के येक अस्कंध भेरै॥ ५८॥
भगे जीव लै भूमिपालै सुनाहीं।
सुनै कंस कै भौ हृदै कंप जाहीं॥

भर्‌यौ सोख में रोख में नैन राते।
सकाने सबै जे बली बीर माते॥ ५९॥

दो०—धनुस भंग सेना हनी जुगल बंध यह जानि।
सकल सभासद मन बिसैं परब्रह्म पहिचानि॥ ६०॥

सो०—अरुन भये रवि आनि बरुन दिसा लाली चढी।
सरनि कोक दुख मानि बिस्वभरन डेरन गये॥ ६१॥

दो०—फेर करैं अस्नान कौं भोजन करि जदुराइ।
बंधु सहित मिलि मंत्र रचि सोये प्रभु सुख पाइ॥ ६२॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द वृन्ददायिन्यां शरच्चन्द्रचारुमरीचिकायां द्विज-गुमान विरचितायां श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिकायां मधु अरिष्ट केशीवध वर्णनो नामा त्रयोविंशतिप्रकाशः समाप्तः।

चतुर्विंश प्रकाश

दो०—चौबीसयें प्रकास में ह्वै है कथा बिसाल।
रंगभूमि यह मल्ल मिलि हनि हैं कंस कराल ॥ १ ॥

पद्धटिका०—सुक कहत भूमिपति सुनहुँ धीर।
त्रप कंस महा सोचित सरीर ॥
भौ असुभ सुप्र तिहि निसा आइ।
बिन सिरक बंध देख्यौ डराइ ॥ २ ॥
खर चढ्यौ जात दच्छिन दिसाइ।
उर अरुन सुमन की माल बाँह ॥
बिन चरन लगाये तैल अंग।
लखि छाइ छिद्र मिलि प्रेत संग ॥ ३ ॥
सूचित अरिस्ट त्रप नस्ट मानि।
भय भर्‌यौ भयंकर काल जानि ॥
उठि प्रात त्रपति मंत्रिन बुलाय।
सजि रंग भूमि बैठौ सुजाइ ॥ ४ ॥
चलि देस देस के जे नरेस।
त्रप मंच सभा बैठे सुबेस ॥

नर नारि नगर कुल ज्ञाति और।
तिन जथा जोग लहि मंचि ठौर ॥ ५ ॥
बल बिपुल मल्ल आये कराल।
उनमत्त बान बाँधे बिसाल ॥
जिन्ह नृपहि आनि कीन्है जुहार।
करि रंग भूमि पूजा प्रचार ॥ ६ ॥
चानूर दुष्ट मुस्टक प्रचंड।
* ... ... ॥
सब जानत है छल बल प्रपंच।
ये कहे मल्ल सिरदार पंच ॥ ७ ॥
बाजे अनेक मिलि सुरन बाजि।
सजि रंगभूमि पर मल्ल गाजि ॥
भुज ताडन करि इक इक निहार।
तहँ करत मल्लबिद्या बिहार ॥ ८ ॥
दो०—कंस बुलाई देवकी सहित निगड बसुदेव।
नंदादिक बुलवाइयौ बासुदेव बलदेव ॥ ६ ॥
मोतीदाम०—लिये नृप भेंट चले तहँ नंद।
अनेकन गोप गुवालन व्रन्द ॥
नरपाल जुहारि सभामहँ पैठि।
धरी तहँ भेंटि फिरे फिर बैठि ॥ १० ॥
चले बिबि बंध सखा सब संग।
तिन्हें लखि लाजत कोटि अनंग ॥
गये नृप मारग राजदुवार।
तहाँ बहु बाहन सूर अपार ॥ ११ ॥
दो०—झरत दान दीरघ दसन झुक झहरात अभंग।
बुलवायौ नृप कंसने कुबलय महामतंग ॥ १२ ॥

---

* प्रथम पाद का द्वितीय चरण मूल पुस्तक में नहीं है।

छप्पय०—हुकुम पाइ त्रप कंस कुबल मातंगय खुल्लिव।
घेर चले गडदार दार ढोरत मद भुल्लिव।
गंड भौर भहनात सुपग झहनात जँजीरन।
ताहि भयंकर देखि भभर भाजत भय भीरन।
भनि 'मान' सहस दस मत्तबल चलत अचल बिचलत थलिन।
घर नगर गैल टेरैं परीं हूइ कूइ माँची गलिन ॥ १३ ॥

कोह कराल उमंग जंग जुरिबे कहँ आइव।
धूसर धूरि धँधातु दीह दिग्गज सम धाइव।
कुपित दृस्टि करि हेरि फेरि कुंडलिय सुंडकरि।
गजत प्रलय घनघोर सोर इमि तुमुल सुंडकरि।
भनि 'मान' देखि आतंक कौ संक मानि सब सुर सकिय।
मद झरत झुकत झूमत झहरि जब दुरंद कन्हा तकिय ॥१४॥

नव किसोर कमनीय मृदुल मूरति अति सुन्दर।
स्याम गौर कमनीय जुगल बंधव छवि मंदर।
ताहि देखि भगवन्न कहिव अग्रज सह हँसि करि।
देखहु यह मातंग पीत पट बाँधिव कसि करि।
भनि 'मान' अतुल बीरज प्रभो अतुल पराक्रम किमि कहय।
ब्रह्मादि देव सेवत चरन तासु तेज गज किमि सहय ॥१५॥

पीलवान तिहि पेलि सुंड ग्रीमा कहि मिल्लतु।
चाहत लियौ लपेटि दसन दारुन उर ठिल्लतु।
गलित गंड मदधार भाइ कंधन पर आनतु।
ताहि खबर कछु नाहिं ब्रह्म पूरन नहिं जानतु।
भनि 'मान' पछिल सिमटत झपट जुरत अधम फिरि रिस सहित
करि करि उपाइ कुंजर थकिव बल पौरुख उद्दिम रहित ॥१६॥

जिमि तक्किय सुरपाल सील तजि नील गिरिन्दहि।
जिमि तक्किय खगनाह नाग कुल माँझ फनिन्दहि।

जिमि तक्किय बडवागि समुद जल कहँ संघारन।
जिमि तक्किय रवि तेज कुहर तम तोम बिदारन।
भनि 'मान' प्रबल झँझा तकहि जिमि घन सघन घमंड कौ।
इमि तकिय मदंध गजेन्द्र मनि म्रगनाइक जगदीस तहँ ॥१७॥

बहु झपटत गहि सुंड झटक झकझोरत झिल्लत।
कबहुँ दसन गहि ठेल मेल भुज तासह ि ल्लत।
कबहुँ उदर तर फिरत पगनतर ह्वै कढि आवत।
कबहुँ निकट कहुँ दूर गरुड जिमि फनि गरमावत।
भनि 'मान' ताहि गहि पुच्छ फिरि, चकित चिक्कारतु तज अनखु।
नँदनंद गयंद फिराइ करि फटक पंच बिंसत धनुखु॥१८॥

गिरत धरा धसमसिय धपक के धमक धराधर।
पुर मंदिर सब डोल लोग कढि भगे गिलाकर।
तन अचेत नहिं चेत बिकल ह्वै बिलबिलाइगौ।
मद प्रबाह गौ सूखि सहमि सिन्धुर ससाइगौ।
भनि 'मान' सहस प्रभु झपट करि म्रगाधीस के तूलतैं।
लिय दन्ती दन्त उखार इमि कमलनाल जिमि मूलतैं ॥१९॥

चीतकार कर घोर सुंड पटकन्त भूमि पर।
श्रोन भभक भभकन्त अन्त जब भइव दन्तधर।
म्रतक अंग गये पसर स्याम कज्जल सम जानहुँ।
गरज गगन तैं खसिव धरन धाराधर मानहुँ।
जनु लगत बज्र बज्राधि कौ जिमि कलिन्द गिरि ढहि परिव।
इमि गिरि उतंग गजराज तहँ बसत राजद्वारे डरिव ॥२०॥

कंध धरे गजदंत बंध दोउ संग बिराजत।
बदन बीररस भरे श्रोन सीकर तन छाजत।
बिथुरी अलक कपोल लोल कुंडल झल साजत।
कटि पट नरबर बेस कनक किंकिनि कल बाजत।

भनि 'मान' सूर सावन्त नृप रंगभूमि पर लसत जहँ ।
प्रभु प्रबिस जथा गजजूथ महँ पंचानन कुलकलस तहँ ।।२१।।

देख्यौ तहँ भगवान अमित छबित्रान बिपुल थल ।
तोरन केत पताक ताहि मंचन की झलझल ।।
नगर नारि नर ज्ञाति सूर आयुध्ध सम्हारत ।
गुरु सिष्यन संजुक्त मल्लबिद्या बिस्तारत ।।
भनि 'मान' दुंदुभी घोस घन करत बिरद उच्चार तहँ ।
उद्दण्ड मंडली नृपन की, मंडलेस नृप कंस सह ।। २२ ।।

मल्लन बज्र समान त्रियन मनसिज परिपूरन ।
जोनिन महा बिराट दंडधारी नृप कूरन ।।
जोगिन जोति सरूप, सिध्ध मुनि ब्रह्म बखानहिं ।
निगम तत्तु बुध लहहिं प्रजा प्रभु प्रभु सनमानहिं ।।
बसुदेव देवकि हि पुत्र सम परम पियारे प्रान इमि ।
जदुकुल हि बंस अबतंस से कंसहि काल कराल जिमि ।। २३ ।।

बोलि उठ्यौ चानूर पूर मुख तूर्ज सब्द कहँ ।
हैं गोपाल प्रबीन सुनै हम बाहुजुध्ध महँ ।।
नृप आइस कहँ मानि मल्ल क्रीडा उर धारहु ।
हूहै तुम कल्यान नृपति जो रीझहि भारहु ।।
भनि 'मान' कहिव प्रभु बाल हम नृपति सासना अनुसरहिं ।
तुव सुबल बाहु बिस्तार अति कहउ सु किमि समसर करहिं ।।२४।।

बधु अरिस्ट करि नस्ट बली बक बदन बिदारिव ।
केसी प्रबल प्रलम्ब आदि धेनुक संघारिव ।।
कुबलय महामतंग अयुत गजबल तिहि सालक ।
राजसभा नहिं दोस कहहु तुम कैसे बालक ।।
भनि 'मान' कहिव मुसक्याइ प्रभु लरहिं न मन कछु ल्याइयहु ।
तुम महाबली बिद्यानिपुन राखे खेल खिलाइयहु ।। २५ ।।

मुस्टक खत्त चानूर सकल सल तोसल राजत।
धूरि बिमर्दित अंग भूर उरनमत बिराजत॥
झुकत जँजीरन झार भार पर्बतन उठावत।
गिन्दुक इमि उलछारि सार मुदगरनि फिरावत॥
बल बाँह उमैठत ऐंठि करि तमकि झमकि आये उरे।
भनि 'मान' राम घनस्याम सों आइ जुगल जोरिनि जुरे॥२६॥

बाहु जंघ करि ठोक डिट्ठि डिट्ठिय अनुसरही।
भुजनि भुजनि सौं जोरि स्याम करि फिरि भुज धरही॥
आकर्सन बिच्छेप भ्रमन परिरंभन साधत।
उत्सर्पन उत्फाल सर्ब अंगनि कौं बाँधत।
भनि 'मान' स्याम चानूर सौं बाहु जुध्ध हुव अति प्रबर।
तालंक अंक मुस्टक भिरे मल्ल जुध्ध करि परसपर॥ २७॥

चरन चरन सौं जोरि जानु जंघा फिरि जोरत।
उर भरि सिर सों भिरत बाहु ग्रीवा कसि तोरत॥
झुकत सम्हारत अंग अचल जिमि खम्हन डोलत।
दाउँ उपाउ चलाइ गोपि गुन गुरुव सुखोलत॥
भनि 'मान' उसेलत ठेल करि धरत छूटि चालन करत।
जग जीति मल्ल बिद्या कही ते छल बल करि सब रचत॥ २८॥

उतपति पालन प्रलय जासु भ्रकुटी ते होइय।
अंडकटाह अनेक रोम रोमनि प्रति भोइय॥
जासु उदर में बिस्व बिस्व उर अंतरबासिय।
तुच्छ असुर सम भिरतु ताहि महिमा नहिं भासिय॥
भनि 'मान' जासु बल सक्ति सौं धरनीधर धरसिर धरहिं।
खल कुटिल जीव जानैं कहा ता प्रभु सौं पौरुख करहिं॥ २९॥

पुरजन परजन सुहृद बंधु प्रिय जनक सुजन जिय।
व्याकुल भये सरीर देखि रन अद्भुत करनिय॥

अति अनीति नृपसभा सभापति अतिय बिचारिय।
मंत्रिय मूढन कहत त्रपत डरु मानत भारिय॥
भनि 'मान' मल्ल ये मेर सम तन कठोर दारुन जमल।
मृदु वय किसोर लै सम करे राम स्याम कोमल कमल॥३०॥

जब जानी भगवन्त भक्ति बत्सल करुनामय।
जननी जनक सबंध मोह व्याकुलता मानिय॥
मन मुसक्याइ मुरारि सहज बल समर सम्हारिव।
दीन्हों झोक अमोघ दुष्ट बल टूटिव भारिव॥
थकि परिव गात वहि निबल भइव स्वास बेग छन छन भरत।
तहँ खेल खिलाइ खिलाइ प्रभु निधन फेर ताकौं करत॥ ३१॥

जिमि बिसधर व्यालादि बिपुल झकझोर सहिव किमि।
जिमि मृगेन्द्र की झपट दपट करिनिनपति लहि किमि॥
झंझा रुकहि न तूल पात पविपात न मुक्कहि।
तिमि प्रभु झोक अमोघ दुष्ट खल किमि करि रुक्कहि॥
भनि'मान'ताहि त्रिभुवनधनी करि लीला हनि असुर धुव।
लरखरत पाइ घुमित गिरिव चूरि चूरि चानूर हुव॥३२॥

उत बलि रामकुमार कोह करि नयन तरेरे।
मनहुँ पद्मदल प्रात रँगे जावक रंग केरे॥
गोर गात छविजाल लाल रिस बस ह्वै आइव।
मनहुँ हेमगिरि जुलित जोति ज्वालामहँ ताइव॥
आकर्खि दुस्ट मुस्टिक हनिव मनहुँ बज्र गिरि पर गिरिव।
सिर फूट टूट पंजर गइव गर्दि मर्दि मुस्टक मलिव॥ ३३॥

अधर परे बेहाल म्रतक धर धरनिय लुट्टय।
बिबरन भये सरीर अंग भंगन सिर फुट्टय॥
इन्द्रिय परिय अचेत मोह ममता सब छुट्टय।
रंगभूमि गय फैलि भल्ल बाने सब टुट्टय॥

भगवत बिरोध अस हाल हुव सकल सभा सुखेय बदन।
जे अमर मल्ल झुमडे झपट राम स्याम किन्हहि कदन ॥ ३४ ॥
सकल सभा सकपकिय अकबकिय कंस बतानव।
हरबर बालक हनो पकरि नंदादिक आनव ॥
गोधन गोपिय गोप लूटि बजमंडल जारहु।
उग्रसेन बसुदेव देवकी सहित संघारहु ॥
भनि 'मान' स्याम बिहँसे मृदुल कंस बचन सुनि चितइ तहँ।
जिमि दुजराज मतंग कहँ ताकत सिंघ किसोर जहँ ॥ ३५ ॥

भुजंगप्रयात०—

कहै बे प्रमाने महा बंस घाती, दब्यौ बाइमें ज्यौं बकै संनिपाती।
सुनी देवकीसूनु ने दुस्ट बानी, भयौ दुर्मती काल के बस्य जानी ॥३६॥
उडे भूमिते भूमिभर्त्ता मुरारी, गये मंच पै रंच गर्वप्रहारी।
सजे भूमिपाली सभा मद्धि येसे, रहे घेरिकैं हेरिकैं चित्र केसे ॥३७॥
उठौ कंस भइराइ सोभा नसानी, छिपी कोस तैं रोस खैंची कृपानी।
ब्रखादित्य के तेजसी वोज धारा, कढी चंचलासी चमंकै अपारा ॥३८॥
दये चर्म आगैं भरैं बाह ठाडौ, हठी बिस्वद्रोही महारोस बाढौ।
दिसा व्योम हेरै रिसे नैन ताये, जबै देव आच्छादिकैं धाइ आये ॥ ३९ ॥
चितै अच्चुतै वोरही में मकाने, तहाँ कालके गाल के तुल्य जानैं।
हृसीकेस कैसौ महावीर्जधारी, बहै ब्रह्मज्वाला लखौ तेज भारी ॥४०॥
उभारे रहैं खर्ग कैसे चलावैं, सिखा अग्नि की क्यों परवेरू मझावैं।
जबै कंस के बंध की चित्त आनी, धरयौ धाइकै सत्रु सारंगपानी ॥४१॥
धरयौ धाइकैं सत्रुकौं अत्र कैसे, धरै मत्त मातंग कौं सिंघ जैसे।
धरै कुंडली चुंगली नाथ गाढे, छुडा को सकै बीर को है उखाडे ॥४२॥
भगे राव राजा भगे जे निखङ्गी, उडे कीट को चापि ज्यौं लेत भ्रंगी।
परे कूदिकै भूमि लै बिस्वरूपी, कढयौ अब्जजोनी यथानाभिकूपी ॥४३॥
गिरे भूप भूपै डरे लोग भारे, तहाँ देखि उदबिग्न हाहा पुकारे।
दसा कंस की सो बिना हंस कैसे, चपै पील के पाँव पिप्पील जैसे ॥४४॥

सिख गह चहूँ ओर खैंचौ मुरारी, कढोरैं फिरैं रंगभू पै बिहारी।
मनो नागभच्छी लिये नागछौना, कियौ नंदके लाल ताकौ खिलौना ॥४५॥

गई राजसी रूप जाकौ हरयौ है, गिरे मौलितें क्रीट भूपै गिरयौ है।
कहूँ कुंडलै जे गिरे भूमिभारे, कहूँ मालि मुक्ता परे टूटि तारे ॥४६॥

कहूँ बस्त्र भीने फटे धूर मैले, कहूँ गन्धबाहै खुसे फूल फैले।
कृपानी कहूँ छूटि धारा खरी है, कहूँ छूटि कै चर्म न्यारी परी है ॥४७॥

भयौ अस्त बीसौ भई दीन धारा, कढौ देह देही रही ना सम्हारा।
सुनौ राज कुरुनंद जो भक्त द्रोही, बिरोधी सबै बालहा दुष्ट कोही ॥४८॥

परब्रह्म देवाधि देवै न ध्यावे, सु कैसे कहौ मंद आनंद पावे।
दयासिन्धु ऐसे कृपासिन्धु स्वामी, दई मुक्ति ताकौं भयौ मुक्तगामी ॥४९॥

दो०—अष्ट अनुज नृप कंस के कंक आदि निर्बोध।
देखि बन्धु की लघु दसा करि करि धाये क्रोध ॥५०॥

हरिगीतिका०—

बलराम जू तिन ओर चितये कोह नजर बिहारिकैं।
जनु छुधित सिंघ किसोर हर्खिव दुरद जूह निहारिकैं॥
छवि गौर गात बिसाल मुख पर बीररस लाली चढी।
जनु उदित उदयाचल सिखिर पर बाल रवि सोभा बढी ॥ ५१ ॥

भुजदंड परघ प्रचंडलै उद्दण्ड बलखण्डे खरे।
सिर फटत फूटत झुकत झूमत श्रोन छोडत भूपरे॥
फिरि झपटि दस दस दपटि इक गहि पटक महिं मारे घने।
इक बल न थोरे जंघ तोरे भुज मरोरे ते हने॥ ५२ ॥

रिस भरत मुसली समर में नहिं समर सनमुख गोडहीं।
नर बापुरे की को कहै सुर असुर धीरज छोडहीं॥
इमि लसत हलधर सबल बल भुज बिपुल खलबल गारिकैं।
गजराज कुम्भ बिदारि ठाडौ जनु गजारि गुजारिकैं॥ ५३ ॥

खल बध करै रिस परिहरै मुख अरुन निघटत जात यों।
मनु कढ्यो संध्यागर्भ ते सोडस कला निसिनाथ ज्यौं॥
मिलि गौर स्याम किसोर दोऊ रंगभूमी साजहीं।
सुर परखि हरसत सुमन बरसत दुंदुभी नभ बाजहीं॥ ५४॥

मुनि नारदादि सिवादि सुर उर उमगि अस्तुति धारहीं।
हरि गुनन सानी वेद बानी जपत जप उच्चारहीं॥
जै जै जै गोविन्द गदाधर गंज गजेन्द्र गजारि गते।
जै जै जै मधु कैटभ मर्दन मल्ल बिमर्दन मल्ल मते॥ ५५॥

जै जै जै हिरनाक्ष हिनाकुस उदर उदार बिदार हते।
जै जै जै नरकासुर मारन नरक निवारन बार न ते॥
जै जै जै बकबदन बिदारन बारुन बादि उबारवते।
जै जै जै काली मद धुंसक केसी कंस बिधुंसक ते॥ ५६॥

जै जै जै दुर्जन दल दाहन दाहन दर्दन दुंद दते।
जै जै जै खल दल बल खंडन खंडन खंड करे दुखते॥
जै जै जै सरनागत आरत सारत साँरगपानि सते।
जै जै जै भक्तनि भय हारन भूभिय हारन भूमिभ्रते॥ ५७॥

जै जै जै त्रिसुरारि त्रिबिक्रम त्रिगुन त्रिबिक्रम बिक्तकृते।
जै जै जै लीला पुरुसोत्तम लीलापति लीला * पते॥
जै जै जै चक्रीस चतुर्भुज चर्चित चंदन चित्त चिते।
जै जै जै परब्रह्म परातम आतम आतम प्रानपते॥ ५८॥

जै जै जै अव्यय अबिनासी अलख निवासी अलख अते।
जै जै जै इन्द्रीस तुरीस सुरीस्वर ईस्वर ईस इते॥
जै जै जै जगदीस जगतपति जगत जनक जाचत रजते।
जै जै जै घनस्याम घनाघन घेर घुमंड घमंड घते॥ ५९॥

* मूल पुस्तक में इस जगह एक अक्षर छूट गया है।

जै जै जै उदित उध्धत रद उर्वी उदक उदारवते।
जै जै जै तेजोमय तारन तरवर तारन तार तते॥
जै जै जै थिर थावर जंगम थल थल थम्हन थम्ह थिते।
जै जै जै हे दीन दयानिधि दास गुमानहिं भक्ति हिते॥ ६० ॥

दो०—अस्तुति करि ब्रह्मादि सुर गये आपने धाम।
त्रपपतनी पत मृतक सुनि धाईं बिहबल बाम॥ ६१ ॥

गीतिका०—

डरन डग डगमगत चलत न धर धरा उर में पर्यौ।
मुख सूख रूखे बदन कंपित रुदन करतीं दुख भर्यौ॥
बिगलत बसन छूटी रसन नहिं गिरत भूमन जानहीं।
हिय करहिं ताडन करहिं कार न जगत सूनौ मानहीं॥ ६२ ॥

पिय तन सम्हारैं मुख निहारैं गुन उचारैं सोचहीं।
मुखचंद खोलैं दीन बोलैं द्रगनि आँसू मोचहीं॥
यह देस कोस सम्हार सब बिधि प्रजा पालन को करैं।
तुम सहित सोदर समर सोये देखि धीरज को धरैं॥ ६३ ॥

परद्रोह रति अरु कोहरति मदमोह रति कीन्हीं तहाँ।
सब बिस्व बिन अपराध हे त्रपनाथ तुम पीडी महाँ॥
तुम रहे भूले मल्ल बल गजराज पौरख मानि कैं।
छन माँझ हरि चूरन करे तिन दुस्ट जन पहिचानि कैं॥ ६४ ॥

फिरि भ्रमै मानुस नाटि लखि कछु ज्ञान उर आन्यौ नहीं।
परब्रह्म अज अद्वैत ऐसौ अजै प्रभु जान्यौ नहीं॥
इमि आस तजि रनिबास सुखकी खबर उरमें ल्यावहीं।
फिर फिर तपत पत बिपत नहिं संताप छिन छिन पावहीं॥ ६५ ॥

दो०—करहिं प्रलाप अनेक बिधि दुख समूह कौं सोधि।
राम स्याम समुझाइयौ त्रपपतिनिन करि बोधि॥ ६६ ॥

सो०—अखिल लोक भगवान नृपपतिनिन आइस दियौ ।
तजहु मोह अज्ञान मृतक क्रिया बिधिवत करहु ॥ ६७ ॥
दो०—यह आइस दै जगतपति समर सिरोमनि रूप ।
गये जहाँ जननी जनक सुनहुँ परीक्षित भूप ॥ ६८ ॥

इति श्रीसज्जनकुल कैरवानन्द वृन्ददायिन्यां शरच्चन्द्र चारुमरीचिकायां द्विजगुमान विरचितायां श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिकायां कंसनिधन वर्णनो नामा चतुर्विंशप्रकाशः समाप्तः ।

———

पंचविंशति प्रकाश

दो०—पच्चीसएँ प्रकास में जनक जननि मिलि ईस।
उग्रसेन कौं राजु दै पढन जाँइ जगदीस ॥ १ ॥

तोटक०—

जुग बंध पिता जननी हि मिले, सुखदै उतकंठित भैंटि भले।
इमि सीतलता सुत अंक भरे, सरदातप चंदन लेप करे ॥ २ ॥

अति दीरघ ताप मिटी तनकी, छिति ग्रीसम बुन्द परै घन की।
सुख अंकुर रोम उठै जबहीं, बिपता रजधंधु मिटी तबहीं ॥ ३ ॥

उर प्रेम तरंगिनि तुंग चढी, दुख कूल महीरुह तोर बढी।
सिथिलै सब अंग प्रमोद पर्यौ, नहि जाइ कह्यौ कछु कंठ भर्यौ ॥४॥

दो०—देखि दसा पितु मातु की बोध कर्‌यौ करि नेह।
बंदबास ते काढ प्रभु बैठारे निजु गेह ॥ ५ ॥

सोरठा०—तदनन्तर तहँ जाइ उग्रसेन न्रप भेटियौ।
परम प्रेम सुख पाइ दुख दावागिनि मेटियौ ॥ ६ ॥

तारक०—न्रप राखि सिंघासन छत्र धर्‌यौ जू।
निजु हाथ दयानिधि चौंर कर्‌यौ जू ॥

प्रभु बैन कहे जु बिबेक बिलासी।
श्रुति मारग भक्ति प्रमोद प्रकासी ॥ ७ ॥

जदुबंसिन में नहि राज कह्यौ जू।
न्रप उग्र जजातिह श्राप भयौ जू ॥
भुवमंडल राज तहाँ लगि लेखौ।
तुव सेव करैं चरनाम्बुज देखौ ॥ ८ ॥

न्रपकंस प्रताप तचे नर जेते।
भजिकैं सकुटुम्ब दिसान दुरेते ॥
तिनकौं प्रभु दूत पठै बुलवाये।
सुखबास बसाइ तिन्हैं समुझाये ॥ ९ ॥

दो०—राम क्रस्न पालित नगर सकल सिध्धि सम्पन्न।
नर नारी छबिवान अति महागुननि वितपन्न ॥ १० ॥

श्रवण सुखद०—

पहुँचे तहाँ चलि ब्रजचंद, मेले जहाँ उपबन नंद।
पूजा करी सोम सुभाइ, मोती रतन थार भराइ ॥ ११ ॥

दीन्हैं अमित मनिगन चीर, बोले जुगल बंधव धीर।
तुम सम कहौ जगमें कोह, ऐसौ कस्यौ हम पर मोह ॥ १२ ॥
पाले बिबिध बिधकर रीति, जैसे करत सुत पर प्रीति।
यह जसु रहइ जुग जुग छाइ, ब्रजमें बसहु सुख सौं जाइ ॥ १३ ॥

पोखी सकल बिधि तुम देह, हम पर राखियौ अति नेह।
सुनि सुनि नंद मन उचाट, खुलगे हृदय लगे कपाट ॥ १४ ॥

फीके वदन कंपित गात, तिनसौं कहत बनत न बात।
देहौं कहां जसुधै ज्वाब, बैठ्यौ हृदय दुख सुख दाब ॥ १५ ॥

दो०—मन उदास सुत आस तजि ब्रज कौं गवने नंद।
सहित बंधु करि बोधकौं इत आये नँदनंद ॥ १६ ॥

हरिगीतिका०—

बसुदेव जू उपरोहितन बुलवाइ कोविद तैं लिये।
सुत कर्म श्रुति बिधिवत करथौ जज्ञोपवीतन कौं किये॥
मिलि स्वर्न शृंग सबच्छ गौवैं पय स्रवत सुन्दर नई।
धन धान्य पाटम्बर अलंकृत सहित बिप्रन कौं दई॥ १७॥
करि करि अधर्म अनेक धन नृप कंस जोर्‌यौ तौ जहाँ।
बसुदेव जू सज्ञान मत दै दान बिलस्यौ है तहाँ॥
फिरि महामुनि श्रीगर्ग आये तप तरनि गुरु ज्ञानजू।
जदुबंस के सुख दैन जो त्रैकालगति मन मान जू॥ १८॥
उपदेस गाइत्री करथौ सह मंत्र जहँ मुनिनाथ जू।
कुलधर्म सिखवत धर्म निधि कौं देत सिच्छा गाथ जू॥
तब ब्रह्मचर्ज पवित्र मति बसुदेव पुत्रन कौं करे।
फिरि पढन पठवत बंधु दोऊ नेह आनँद सौं भरे॥ १९॥

सोरठा०—जुगलबंधु सुख देन सिन्दन पै आरूढ हुव।
गये पढन उज्जैन संदीपन दुजराज कैं॥ २०॥

दो०—सहित भक्ति पूजे गुरू अस्तुति करि पग बन्दि।
संजमादि ब्रत साधिकैं करि अध्ययन अनन्दि॥ २१॥

छप्पय०—सष्टि दिवस महँ पढी सकल बिद्या परिपूरन।
तरक काव्य मिलि नीति संधि बिग्रह अति तूरन॥
धनुस सास्त्र सटसास्त्र वेद व्याकरन बिसारद।
बिद्या दस अरु चार कला चौसठ अति आदर।
भनि 'मान' रमायौ जगत जिहि जिहि गुन गन सब भाखियौ।
* ... ... ॥ २२॥

दो०—गुरु आगे ठाढे भये जुगल बंध सुरदेव।
मनि इच्छित गुरु दच्छिना माँगि आसिसा देव॥ २३॥

---

* इस छंद के अन्तिम दो चरण मूल पुस्तक में नहीं हैं।

सोरठा०—अति अद्भुत मति जानि संदीपन सज्ञान मति।
महापुरुस पहिचानि सहित भारजा मंत्र करि॥ २४॥

दो०—राम कृश्न भगवन्त तुम सब लाइक बरदान।
प्रभा छेत्र मम सुत मृतक ते दीजे सुख मान॥ २५॥

पद्धटिका०—

गुरु पाइ सासना मृदु सुभाइ।
प्रभु तुरत चढे सिन्दन मँगाइ॥
जब जोरि तुरंगम गति समीर।
चलि गये जगतपति जलधि तीर॥ २६॥

प्रभु सुनत आगमन जलभँडार।
मनिमाल जाल सौं भरे थार॥
लै गये जहाँ भुवनादि भूप।
पल थके लखत वह अमित रूप॥ २७॥

पग बन्दि पूजि करि जोरि हाथ।
फिरि करतु प्रसंसा गुनन गाथ॥
करि बिनय अम्बुनिधि नमित सीस।
करिये निदेस सो करहुँ ईस॥ २८॥

तुव बढी लोल उमगी हिलोर।
गुरु सूनु बूडि जल जाल जोर॥
तैं हृदय दीह तैं दै निकास।
इहि कारन आये जलअबास॥ २९॥

सुनि परब्रह्म देवाधि देव।
गुरु पुत्रन कौ जानौं न भेव॥
मम उदर करैं जलचर प्रचार।
झख मकर कमठ कोटिन अपार॥ ३०॥

जिन मिल्यौ रहत दैयत अदेख।
वह सदा संख कौ रहत भेख॥
हर लये होहिं जिहि जगतनाथ।
कर जोरि कहतु यह जलधि गाथ॥ ३१॥

प्रभु सुनत जलधि की बिनय बानि।
तिहि निधन करन मन भई आनि॥
कर लेत चक्र खर भ्रमत धार।
झल झलत जुलत जोतन अपार॥ ३२॥

वह करन अरिन के हृदय ताप।
खर भरत असुर देखत प्रताप॥
गये प्रबिस जगतपति जलमझार।
सिर काटि दुष्ट को उदर फार॥ ३३॥

नहिं कढे तहाँ गुरु के कुमार।
फिर गये जमपुरी जम अधार॥
प्रभु संख सब्द कीन्हौ कठोर।
जमराज श्रवन में पर्यौ घोर॥ ३४॥

वह सुनत घोर रव अकबकाइ।
सजि कलस थार पूजा मँगाइ॥
चल गये समन जह जुगल बंधु।
करि जोरि बिनय करि नमित कंधु॥ ३५॥

मैं महाभाग्य भौ दरस पाइ।
प्रभु करहु हुकम सो करहुँ जाइ॥
प्रभु बचन कहे धुर धर्मपाल।
गुरु के कुमार ल्यावौ उताल॥ ३६॥

तहँ बचन सुनत तूरन सुभाइ।
गुरु सूनु तुरत लीन्हैं मँगाइ॥

गुरुपुत्र पाइ तब बिस्वपाल।
गुरु गेह गवन कीन्हौं उताल ॥ ३७ ॥

दो०—गुरु आगे ठाढे करे गुरुकुमार लै आनि।
जो चाहौ गुरु और बर माँगि लेउ सुख मानि ॥ ३८ ॥

सो०—सिन्दीपन पहिचानि परब्रह्म पर तैं परैं।
चार पदारथ दानि बचन कहत सुख मानि अति ॥ ३९ ॥
तुम से सिष्यन पाइ रही न कौनौ साधि मन।
गवन करौ सुख पाइ सफल होहिं बिद्या सकल ॥ ४० ॥

छंद तारक०—गुरु आइस पाइ चले गिरिधारी।
रथ हाँकि सबंध महाजवकारी ॥
पुर मध्य प्रबेस कर्यौ जब ही है।
सुख सिन्धु भराउ भर्यौ तब ही है ॥ ४१ ॥
प्रभु देखि सबै नर नारि सुखारी।
पितु मातु सप्रेम प्रमोदन भारी ॥
दुज बोल अनेक बिधान ठयेजू।
धन धान्य सबस्त्र हदान दयेजू ॥ ४२ ॥

दो०—इहि प्रकार सुख बास में ब्रजसुधि करि अकुलाइ।
कृपासिन्धु करुनाकरन उद्धव लिये बुलाइ ॥ ४३ ॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द वृन्ददायिन्यां शरचन्द्र चारुमरीचिकायां द्विज गुमान विरचितायां श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिकायामुग्रसेनाभिषेक गुरुगृहपठनो नामा पंचविंशातिप्रकाशः समाप्तः।

———

षटविंश प्रकाश

सो०—सटबिंसतें प्रकास उद्धव ब्रज पठवाइयौ ।
दीनन दया निबास खबर सुनहिं गोपीन की ॥ १ ॥

दो०—सुनिजे महिन्नप मौलिमनि प्रभु के चरित अपार ।
गुनन रहित गुन सहित के को गुन जानन हार ॥ २ ॥

सो०—पूरब ही पहिचानि सुर गुरु सिष्य प्रबीन अति ।
नारायन यह जानि उद्धव सों बोलत भये ॥ ३ ॥
हे उद्धव तुम जाउ मेरे बिरह समुद्र ते ।
बूडत ब्रजै बचाउ गोपी गोपनि बोधकरि ॥ ४ ॥
जानतु हौ परबीन जदुवंसिन में श्रेष्ठ अति ।
मेरे दुखकर दीन मात पितहि समुझाइयौ ॥ ५ ॥

दो०—उद्धव प्रभु के बचन सुनि सिर धरि आइस मानि ।
बेर बेर दंडवत करि रथ चढि करिव पयान ॥ ६ ॥

पद्धटिका०—

रथ सज्यौ साज सुबरन अपार, चलि तुरग सुरग जव करि प्रचार ।
अँग अंग अलंकृत रतन भार, कुंडलनि श्रवन उध्धत उदार ॥ ७ ॥

मग चले जात मन में हुलास, कब देखि परै ब्रज सुखनिबास।
रवि अस्त भये पहुँचे प्रवीन, उर उमँग प्रेम आनँद नवीन ॥ ८॥

छप्पय०—गोखुर धूसर धूर पूर ब्रज धुंधर छाइव।
जहँ तहँ दौरत फिरत ग्वालगन गलिन सुहाइव॥
छन छन नाद कठोर ब्रखभ उनमत्त फिरत तहँ।
स्रवत दुग्ध हुंकार धेनु धावहिं पुत्रन कहँ॥
भनि'मान'खिरक द्वारिन रहैं नंद गोप गाइन लगन।
यह चरित देखि ब्रजभूमि पर सुद्ध बुद्ध उद्धव मगन ॥९॥
जब तें नंद कुमार गये मधुपुरी त्रपत जहँ।
तब तें नर अरु नारि करत संजम ब्रज जहँ तहँ॥
वेद बिदित दै दान अमित बिप्रन सनमाने।
होमादिक करि नेम देवपूजन कहँ ठाने॥
भनि'मान'गान हरि गुनकरहिं हर बिधि हरिसों हियहि लहि।
इहि लाग करहिं उपचार सब कबहि स्याम सुन्दर मिलहि १०

दो०—उद्धव देखे नारि नर कृस अति बिरह सरीर।
लाल मिलन की चाह मन द्रगन दरस की पीर ॥ ११ ॥

सो०—नंद सुमत गंभीर चलि उद्धव भेटे तहाँ।
अति आनंद सरीर बाँह पकरि ग्रह लै चले ॥ १२ ॥

ललित छंद०—

पग प्रछाल आसन बैठारे प्रीति रीति अति बाढी।
भोजन मिस्ट सुधा सम ल्याये जेंवँत ही रुचि बाढी॥
भोजन अन्त दये बीरा परजंक ललित बिछवायौ।
तापर पौंढि खोह श्रम मग कौ हिये परम सुख पायौ ॥ १३ ॥
जसुमति नंद आइ ढिग बैठे उतकंठित मुख हेरैं।
जिनके मन सुत प्रेम कोट में मोह महीपतु घेरैं॥
बोलत नंद गरौ भरि आयौ उद्धव सौं यह भाखैं।
हे उद्धव! बसुदेव पुत्र वे खबर हमारी राखैं ॥ १४ ॥

कबहुँ करत सुधि ब्रज मंडल की ललित कदम्ब बिहाये।
बृन्दारन्य कुंज कुंजन करि अमित बिनोद सुहाये ॥
लहर छहर उमगै जमुनाजल पुलनि प्रमोदनि पावै।
सुमन बंधु अलि बंधु मते तहँ कुसुम कलिनि गुहि गावै ॥१५॥

हे उद्धव गोवन गोपिन कौं ग्वालन कबहुँ गनायौ।
उमडि घुमडि झर करी घनाघन बूडत जिनहिं बचायौ ॥
त्रनावर्त्त बलवन्त बछासुर बका अघासुर मारयौ।
बिस दारुन झारन काली की बालक गननि उबारयौ ॥१६॥

धेनुक ध्वंस करयौ छिन में जिनि बिपिन उजार बिहारयौ।
बिना विलम्ब प्रलम्ब क्रुद्ध ह्वै बल उद्धतबल मारयौ ॥
हे उद्धव ऐसे ब्रज राख्यौ को ऐसौ प्रनधारी।
गहन दहन धाई दावागिनि तामें दया बिचारी ॥ १७ ॥

खनत भूमि उनमत ब्रज राखत घन समान तहँ आयौ।
मधु अरिष्ट करि नष्ट महाबल देवनि में जसु छायौ ॥
प्रबल प्रचंड उमंडि मंडि रन केसी सनमुख मारौ।
कठिन कराल हाल लखि लालन ख्यालहि में संघारौ ॥१८॥
बल सामद मातंग मरे सौ फेर मल्ल बल भारे।
दुरद सँघार उखार रदन चलि मल्लन जाइ पछारे ॥
अयुत नाग बल कह्यौ कंस कौ मंचहि चढि गहि भारौ।
भृंगी कीट ग्रहन करि जैसे तैसे भुव पर डारौ ॥ १९ ॥
जो कछु भाख्यौ गर्ग मुनीस्वर सो उद्धव हम देख्यौ।
दुष्ट भूमि कौ भार उतारन नारायन बपु लेख्यौ ॥
गुन गन कथत नंद पुत्रन के प्रेमाकुल ह्वै आये।
उठी मोह की लहरैं तन में फिरि मन बचन न आये ॥२०॥
सनि सनि बचन नद जसुधा कौ हृदय उमगि भरि आयौ।
उरज श्रवत पय धारन कौ तहँ द्रगन जलजजल छायौ ॥

सिथिल अंग रोमावलि उलही मुख कछु बचन न आवै।
मोहसिन्धु में बूडी जसुधा कैसे प्यारे पावै ॥ २१ ॥
दम्पति दसा देखि उद्धव जू मन में अति सुख मान्यौ।
तिन कौं बोध सोध घर अपनौ परम प्रेम पहिचान्यौ ॥
धनि धनि नंद देहधारिन में दम्पति तुम बडभागी।
मन बच काइ कर्म कर जिन श्रीकृस्न बिसै अनुरागी ॥२२॥
तुम ते नहिं उतपन्न पुत्र वे बिस्वचराचर कर्ता।
प्रकृत पुरान पुरुस पूरन जे अखिल लोक के भर्त्ता ॥
गुनातीत गुन सहित गुनाकर भार हरन भुवहारी।
जिनके गुनगन गनत निगम नहिं पार लहत ब्रतधारी ॥२३॥
जो परब्रह्म स्वयंभु संभु सुर ध्यान धरत अधिकारी।
कौ बडभाग नंद जसुधा तें जिनके अजिर बिहारी ॥
पुत्रनि सम तुम मोह करो हौ भ्रमै मोह माया में।
* ... ... ॥ २४ ॥
प्रेम प्रीतिसौं घट घट प्रगटत उरअंतर के बासी।
जैसे कढत दारु घर्सन तैं दारुन दारु निबासी ॥
जगतजाल के जीव जहाँ लगि बीज जिन्हैं पहिचानौ।
पुत्र भाव दंपति तुम छोड़ौ परब्रह्म मन आनौ ॥ २५ ॥

दो०—इहि प्रकार समुझाइकै सुख सोये मति धीर।
प्रात होत जागे जबै घुमडे माँठ गभीर ॥ २६ ॥

श्रवण सुखद०—

घुमडे माठ घन गंभीर, गावैं नारि गुन बलबीर।
उद्दित उदै उत दिननाथ, कीन्हौं कोक कोकिन साथ ॥ २७ ॥
माच्यौ खग कुलाहल रंग, मुकले कंज गुंजत भ्रंग।
गोपिन लख्यौ नंद दुवार, देख्यौ रथ जटित मनिसार ॥ २८ ॥

---

* इस का चतुर्थ पाद मूल पुस्तक में हीं है।

धोखौ होत कै अक्रूर, आयौ फेर ब्रज मतिक्रूर।
उद्धव क्त्त कर सज्ञान, निकसे ब्रज बिसैं मतिमान॥ २६॥
सुन्दर बदन कुंडल लोल, बिलसत हँसत ललित कपोल।
भूसित अंग भूसन जाल, मोतिन माल बच्छ बिसाल॥ ३०॥
ऐसौ पुरुस रूप निहारि, मोदित भईं ब्रज की नारि।
राज जहाँ जीवन प्रान, आये तहाँ ते सुखमान॥ ३१॥
यह मन मानि हर्ख्यौं जीव, अब सुधि लई प्रीतम पीव।
सिमिटी सकल जुरिकैं ओर, आसन दियौ उत्तिम ठौर॥ ३२॥
हे हम मित्र के तुम मित्र, तिन के कहौ चरित बिचित्र।
उद्धव नाम सुनि सुख पाइ, उठियौ प्रेम उर अकुलाइ॥ ३३॥
अंजुल जोर रचतीं बैन, जल सों भरे जलरुह नैन।
छोडीं बिरह धार मझार, ऊधौ कबै लहैं हम पार॥ ३४॥
भुलईं बिरह बन में नार, तिन कौं तन न बदन सम्हार।
ऐसे छली छलिगो छैल, ढूँढैं दरस की हम गैल॥ ३५॥
कुबजा मीत के तुम मीत, जानत सकल उनकी रीत।
अब तुम कहहु स्याम सँदेस, ताते मिटइ कछुक कलेस॥ ३६॥

दो०—गोपी ऐसे बचन कहि फेर रहीं गहि मौन।
उद्धव हरि संदेस कहि ज्यों डाहे पर नौन॥ ३७॥

*हरिगी०—जार पति कौ भोग भामिनि हृदय ऐसो मानिये।
सुमन गंध मिलिन्द लै थिर रहतु नहिं जिय मानिये॥

---

* ये छंद सूरदास जी के पदों से मिलते जुलते हैं।
गोपी सुनहु हरि संदेस। कह्यौ पूरन ब्रह्म ध्यावौ त्रिगुन मिथ्या भेस।
मैं कहौं सो सत्य मानहु, त्रिगुन डारौ नास।
पंचत्रय गुन सकल देही, जगत ऐसौ भास॥
ज्ञान बिन नर मुक्ति नाहीं, यह बिसै संसार।
रूप रेख न नाम कुल गुन, बरन औरै न सार॥

जिमि दहे बन म्रग रहतु नाहीं बात यह चित में धरौ ।
बसुदेव सुत परब्रह्म जानौ बिरह बारिधि कौं हरौ ॥ ३८ ॥

तिनि पाइ आतम ज्ञान सीखौ जोग जुगत बिचारिकैं ।
फिर ध्यान धारि समाधि धारौ धारना कौं धारिकैं ॥
व्रत नेम संजम साधिकैं सब वेद बिधि की रीतिकै ।
तप करहु मोह निबारिकैं सम दमन इन्द्रिन जीतिकै ॥३६॥

यह कहिव हरि मैं निकट उन के बसत सदा हुलास में ।
इमि बसत अन्तर भूत जैसे, दहन दार निबास में ॥
फिर बसत सूछम थूल में ज्यों पंच तत्त्व प्रमान में ।
तुममें बसहुँ नहिं लखहुँ मोकौं मोह तम अज्ञान में ॥४०॥

मातु पितु कोइ नाहिं नारी, जगत मिथ्या लाइ ।
सूर सुख दुख नाहिं जाके, भजौ ताकौं जाइ ॥

ज्ञान बिना कहुवै सुख नाहीं ।
घट घट व्यापक दारु अग्नि ज्यों, सदा बसै उर माहीं ।
निर्गुन छाँडि सगुन कौं दौरति, सोचि कहौ किहि बाहीं ॥
तत्व भजौ त्यों निकट न छूटै, ज्यों तनु के संग छाहीं ।
तिन के कहौ कौन जस पायौ, जे अबलौं अवगाहीं ।
सूरदास ऐसे कर लागत ज्यों कृषि कीन्हें पाहीं ॥

सुनहु गोपी हरि को संदेस ।
करि समाधि अन्तर्गति ध्यावहु, यह उनकौ उपदेस ॥
वे अविगति अविनासी पूरन, सब घट रहे समाइ ।
निर्गुन ज्ञान बिनु मुक्ति नहीं है, वेद पुराननि गाइ ॥
सगुन रूप तजि निर्गुन ध्यावौ, इकचित इकमन लाइ ।
यह उपाव करि बिरह तरौ तुम, मिलै ब्रह्म तब आइ ॥
दुसह सँदेस सुनत माधौ कौ, गोपीजन बिलखानी ।
सूर बिरह की कौन चलावै, बूडत मन बिन पानी ॥

इहि देह आतम ज्ञान धरि अद्वैत मत बिज्ञानकैं।
सुख लहौ बिरहातपन मेटौ ब्रह्म भक्तिहि आनिकैं॥
चर अचर व्यापक सर्व में मैं सर्व बीजहि कौं धरौं।
उतपन्न पालन प्रलय कारन भूमि भारन कौं हरौं॥४१॥
तहँ अहंकारहि आदि दै मन बुद्धि चित इन्द्रिन लहौ।
फिर पंचतत्त्व पचीस गुन कै मोह कामादिक कहौ॥
यह सकल माया कौ पसारौ जग उज्यारौ जानिये।
इन रहत न्यारौ फेर भारौ मिलि सम्हारौ मानिये॥ ४२॥

दो०—तुरी अवस्था ईस में जड चेतन के माँहि।
बसत भूत अन्तर सदा तातै अन्तर नाहिं॥ ४३॥

सो०—बिकल भई सब बाल उद्धव प्रति संदेस सुनि।
जैसे नलिनी हाल ससि कर परसे होत है॥ ४४॥

ललित०—धरि धीरज बोली इक मोही सकल गोपिका स्यानी।
उद्धव ऐसौ को बिबेकमय को ऐसौ बिज्ञानी॥
हरि संदेस कह्यौ तुम नीकौ नीकौ मतौ सुनावौ।
*जैसे त्रिसित निदाघ आध दिन ताहि दवागि दिखावौ॥४५
जो नर सीत भीत में कंपित मुख तिहि बचन न आवै।
ता कहँ उद्धव तुम से जनवा घसि घनसार लगावै॥
पीडित छत लागे तन ताकौ भोजन पानि न पीवै।
गरल घोर तापर छिरकत हौ उद्धव जू कत जीवै॥४६॥
† बर बिमुख झख बार बिलासी तापै यह मन रोपौ।
आतप तेज तपी सिकता लै तामें तिनकौ तोपौ॥

---

* फिरि फिरि कहा सिखावत मौन।
बचन दुसह लागत अलि तेरे ज्यों पजरे पर लौन।
सींगीं मुद्रा भस्म अधारी अरु आराधन पौन॥

† इस पाद में एक मात्रा कम है।

जे जिहिकौं चाहत हैं ऊधौ सो तिहि की करि आसै।
कुमुदिनि चंद चंद्रिका चाहै, नलिनी सूर प्रकासै ॥४७॥

जोग जुगत तुम सिखवत ऊधौ सो मन कैसे आवै।
सुखमा सिन्धु साँवरी सूरत कैसे छोडन भावै॥
जब ते बिछुरौ बदन सरद बिधु तब तैं आपत बोडे।
दृग चकोर चौंकत चाहत हैं तलफत कैसे छोडे॥४८॥

वे दृग रंज कंज खंजन के मद गंजन अनियारे।
सुमन सरासन सान चढे सर बिधे प्रान में प्यारे॥
हे उद्धव कैसे बिसरति है मोहन कसन तिरीछी।
हँसन मिठान सुधा की साढी लागत तऊ न छीछी॥४९॥

अलकन झलक छलक कुंडल की छवि गंडनि अनुरागी।
भरत भ्रमत उमगत गति जामें अजहूँ नैनन लागी॥
हे उद्धव वह सरद निसामें सरद इंदु उजियारी।
महकत पुलिन मल्लिका फूली उमगि प्रमोदन भारी॥५०॥

हम अबला अहीर सठ मधुकर धर जानहिं कहि कौन।
यह मत जाइ तिनहि तुम सिखबहु जिनही यह मत सोहत।
'सूर' आज लौं सुनी न देखी पोत पूतरी पोहत॥

ऊधौ क्यों राखौं इन नैननि।

सुमिरि सुमिरि गुन अधिक तपत हैं, सुनत तुम्हारे बैननि।
ए जु मनोहर बदन इन्दु के, सारद कुमुद चकोर।
परम तृषारत सजल स्याम घन, तन के चातक मोर॥
मधु मराल जुगपद पंकज के, गति बिलास जल मीन।
चक्रवाक द्युतिमन दिनकर के, मृग मुरली आधीन॥
सकल लोक सूनो लागत है, बिन देखे वह रूप।
सूरदास प्रभु नँद नन्दन के, नख सिख अंग अनूप॥

तिहि निसि रमै रसिक सुन्दर बर गुन मंदिर पिय प्यारे।
हम मिलि जूह समूह रचे सुख कर गहि कान्ह दुलारे॥
गुहि गुहि वह बनमाल लाल ने आपु पहिरि पहिराई।
कुसुम कलिन भूसन दुख दूसन सजि सजि अंग लगाई॥५१॥
ठाडी हौन त्रिभंग अंग की कोटि अनंगन बाढी।
पट फहरन छहरन मुरली की हियतें जाइ न काढी॥
गुंजत भ्रंग कुंज कुंजन में पुहुप पुंज तहँ छाये।
खेलत फिरत मेल गल बाहन ते सुख जात बिहाये॥५२॥
जोग जुगत तुम सिखवत ऊधौ कैसे मन में आवै।
सुधा सिन्धु कौं छाडि दुरमती कौ पय पीवन धावै॥
मरकति मनि सौ रूप स्याम कौ समता काम न पावै।
सो चिन्ता मन छोडि कौन बिधि काँच साँच मन लावै॥५३॥

दो०—गोपिन के ये बचन सुन उद्धव अचिरज मान।
प्रेमसनी अति भक्तिमय ब्रज तिय लखीं सुजान॥५४॥

ललित०—मंजु गुंज करि भ्रंग एक तहँ ताही समय सिधायौ।
क्रस्न दूत ठहराइ ताहि लखि गोपिन बचन सुनायौ॥
क्रस्न प्रेम ओपी इक गोपी बोली बैन सुहायौ।
अहो मधुप किहि कारन तुमकौं इत ब्रजराज पठायौ॥५५॥
आइ पाँइ परसत काहे कौं इत सुगंध नहिं ठायौ।
तुम खटपद उत्तिम रसग्राही रूप पीउ कौ पायौ॥
पिय प्यारी पतिनी कुच कुंकुम रंग पीतमुख छायौ।
सो जादव कौं जदुकुल ही में करहु हास मनभायौ॥५६॥
और एक ब्रजबनिता बोली हे मधुकर रस रंगी।
परतिय कुच कुंकुम सौं मुख रँगि कहा फिरत तजि रंगी॥
अति सुकुमार मालती रस बस दिन प्रति रहत प्रसंगी।
सो तजि कहाँ यहाँ भ्रम भूले भये फिरत हौ जंगी॥५७॥
ऐसे हि एक बेर हरि हम कौं मधुर अधर रस प्यायौ।

करि अनुराग त्याग करिकै अब बिरहागिनि तन तायौ ॥
तिनही के संगी रंगी हौ मधुकर गीतनि गायौ ।
त्यौ तुम पुहुप सुगन्धिन लैकै ललित लतानि बिहायौ॥५८॥
भ्रंग सुनौ इहि स्याम रंग के लंपट कपटी मानौं ।
निज सुभाइ तैं समझ लीजियै नित नवरस बस आनौं ।
अचिरज ये कर माधव सौं हम रमी निरन्तर जानौं ।
कर कमलनि सों हरिपद पंकज पलटत रहत बखानौं ॥५६॥
मोहन रूप बिसाल लालकौ सो बिचारि किमि कहिये ।
सब ब्रजबधू प्रेमरस बस ह्वै सरबस समझि निबहिये ॥
करि अति प्रीति रीति लीलासौं बन बन बिहरत रहिये ।
फेर फेर दृग हेर बिहस करि चितयौ चौगुन गहिये ॥६०॥
कपट भरी भ्रकुटी की मटकनि हास रास रचि मोह्यौ ।
रस बोलनि डोलनि ब्रजबीथिनि अनुपम छबि लै सोह्यौ॥
कौन कौन कहिये केसब की रूप बसीकर दोह्यौ ।
हम अबलनिकौं समझि परयौ नहिं हरि मन बहुबिधि टोह्यौ ६१

दो०—हम अजान अबला भ्रमर भक्तबछल भगवान ।
क्रपन कमलिनी हम सबै कृपासिंधु वे भान ॥ ६२ ॥

श्रवणसुखद०—

हम पति पुत्र त्यागि समाज, मोहन भेटियौ तजि लाज ।
नहिं कुलकान सौं कछु काज, तिनि सब हमहिं तजि ब्रजराज ॥६३॥
तिहि ते सुनहुँ साँची भ्रंग, हे हरि कपट निरदय अंग ।
सोऊ सुनहु त्रेता रंग, प्रकटे राम रूप अभंग ॥ ६४ ॥
लुब्धक धर्म धरि ततकाल, छिपिकै मारियौ कपि बाल ।
कीन्ही सूपनखा कुरूप, छलियौ बिप्र ह्वै बलि भूप ॥ ६५ ॥

हरिगी०—

करि तान गान सुतान बान म्रगान व्याधि बिनासियौ ।
टाटी डगैननि फाँद बिहगनि मीन बंसी फाँसियौ ॥

यौं भूप अनगन राज सुख तजि साधु गति अब राधियौ ।
करिकै महातप गात गारहिं मुक्ति हित चित साधियौ ॥ ६६ ॥
जल हीन दीन सुमीन ज्यौं यौं तपत ब्रजतिय गात हैं ।
बिन हरिन हरिनी ज्यौं न हरखैं यौं हमहिं उतपात हैं ॥
सुनि लेहु अलि सब भेद यह, प्रभु मिलहिं सो वर दीजिये ।
तुम पूजिबे को जोग सब बिधि पीउ सुखरस पीजिये ॥ ६७ ॥
दो०—अलि प्रबीन तुम रहत हौ मथुरा श्रीपति पास ।
खबर करत ब्रज की कबहुँ श्रीनँदनंद सहास ॥ ६८ ॥
सो०—ये गोपिन के बैन सुनि उद्धव अति प्रेममय ।
कहत सिखावन ऐन करि प्रबोध गोपीन कौं ॥ ६९ ॥
गीतिका०—
धन धन्य तुम सब गोपिका हरि प्रेम भक्ति हियै धरैं ।
तुम सौं न अन्तर स्याम सौं दिन रैन गुन गनती करैं ॥
ह्वै रहीं तनमन भिन्न लखियतु सब्द अर्थनि ज्यौं जुरै ।
हरि वेद भेदनि तैं अगोचर प्रेम रस बस ढिग ढरै ॥ ७० ॥
नित खबर ब्रजकी करत माधव प्रीति रीतिहि गाइकै ।
जदुबंस कौं करि बोध कछु दिन राजकाज दिढाइकै ॥
ब्रज पाधरें हरि धरहु धीरज भेंटिहैं उर लाइकैं ।
दुख दूर करि सुख पूर कछु दिन सुबस बसि हैं आइकैं ॥७१॥
इहि भाँति प्रिय संदेस सुनि सब बचन उद्धव सौं कहैं ।
करि तान मोहन मोहियौ मन मदनमोहन हीं रहैं ॥
सहि जात हरि कौ बिरह नाहीं सुमिर गुन छवि निर्बहै ।
कुसलात जादवनाथ की निस द्यैस नित प्रति ही चहैं ॥७२॥
अब सुनहु उद्धव काज दीरघ करैं मोहनलाल जू ।
जदुबंस द्रोही नास कीन्हौं कंस आदि कराल जू ॥
तहँ सुघर सुन्दर सहर जोसित रहत देखि बिसाल जू ।
न्रप कन्यकनि कौं सोध सेजनि लेत नवरस लाल जू ॥७३॥

किहि भाँति हरि इत आइहैं, सुख राज कौ बिसराइकैं।
श्री संग कबहूँ तजत नाहीं सरस सोभा पाइकैं॥
कब स्याम सूरति देखिबी अनिमेख नैन लगाइकैं।
मुसक्यान संजुत चंदमुख लखि बैन सुनिबी आइकैं॥७४॥

दो०—श्री उद्धव ब्रजतिय लखी प्रेम बिबस इह रीति।
रहि कछु दिन गोपी सकल समुझाई करि प्रीति॥ ७५॥
समाधान बहु ज्ञान करि समुझाई ब्रज नारि।
लहि सनमान बिदा भये श्री उद्धव सुख धारि॥ ७६॥

तोमरछंद०—
मथुरा सौं उद्धव जाइ, चलि भैंटियौ जदुराइ।
ब्रजरीति बरनी आइ, जसुधा सुनंद सुभाइ॥७७॥
पुनि गोपिकनि की प्रीति, बरनी जथाबिध रीति।
धन धन्य गोपी गीत, मिलि रहीं प्रेम प्रतीत॥ ७८॥
ब्रजतियनि हिय अति भक्ति, प्रभु रूप गुन अनुरक्ति।
ब्रजभूमि गुल्मनि जाइ, लखि चिन्ह हिय हुलसाइ॥७९॥
करती वहै बिधि केलि, मिलि मिथुन कर गल मेलि।
श्रीसूरतनया नीर, लखि पूजतीं बलबीर॥ ८०॥
सजि सेज फूल बिछाइ, जुरि सेवती प्रभु ध्याइ।
इहि भाँति ब्रजतिय प्रेम, नित प्रति सुधारहिं नेम॥ ८१॥
तिनि कौं कृपा करि नाथ, कबहूँ सुदीबी साथ।
इहि भाँति गुनगन गाइ, उद्धव सुरहिं अरगाइ॥ ८२॥

दो०—इँहि बिधि ब्रज की सब कथा उद्धव करी बखान।
पुनि हरि मूरति माधुरी थिर उर राखी ध्यान॥ ८३॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द वृन्ददायिन्यां शरच्चन्द्रचारुमरीचिकायां द्विज-गुमान विरचितायां श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिकायामुद्धवागमन ब्रजसंदेशवर्णनो नामा षट्विंशतिप्रकाशः समाप्तः।

सप्तविंश प्रकाश

दो०—सत्ताइसैं प्रकास में सैरंध्री ग्रह जाइ।
खबर पाण्डवन की करैं अक्रूरहि पठवाइ॥ १ ॥
कृस्न आगमन की खबर सैरंध्री सुनि कान।
चंदनादि के चौकु रचि बैठी तान बितान॥ २ ॥

चौ०—जलजनि के बंधन बँधवाये, सज्जा बिरचि कुसुम बिछवाये।
घसि कपूर कुंकुम छिरकाये, सकल सुगन्ध समूह जुराये॥३॥
माला धूप दीप बिस्तारे, गजमोतिन के हार सम्हारे।
ग्रह आवत देखे हरि प्यारे, उठी उताइल अरघ पसारे॥४॥
भाँति भाँति पूजन करि नीकौ, आनँद मगन करयौ प्रभु टीकौ।
प्रथम पूजि उद्धव सुख पाई, आसन सुभ बैठार सिहाई॥५॥
ग्रह मझार जो सेज सम्हारी, तहाँ गई लै कृस्न बिहारी।
लोक उचित आचार सम्हारे, रचि भूसन शृंगार सुधारे॥६॥
ताम्बूलादिक अनगन भोगा, करे बिहँसि श्री माधव जोगा।
स्याम सलौनी सुंदर सोभा, देखत ही दासी मन छोभा॥७॥
करि कटाछ हँसि ठाडी भई, काम बिबस बिह्वल ढिग गई।
तिय सुभाइ संकित सकुचाई, तब कर गहि गोपाल बुलाई॥८॥

पद्धटि०—प्रभु पानि परसि हरखी अपार ।
पद्मा समेत जिमि श्रीमुरार ॥
पूरन बिलास ससि परस सार ।
हरि संग रंग बिरच्यौ बिहार ॥ ६ ॥
त्रैताप काम तप दूर कीन्ह ।
करि भोग अमित सुख लीन्ह चीन्ह ॥
फिर बिनय कीन्ह कर जोर बाम ।
प्रभु कछुक दिनन बसिये सुधाम ॥१०॥
पिय संग रावरौ तजि न जाइ ।
लखि रूपरासि मन नहिं अघाइ ॥
इहि भाँति बिनय दासी सुनाइ ।
सुख सरस पाइ पुनि परिय पाँइ ॥११॥
सुनि बिनय क्रस्न बरदै सु ताहि ।
पर पुरुस प्रेममय प्रन निबाहि ॥
उद्धव समेत पितु सदन आइ ।
दै दरस मातु पितु कौं सिहाइ ॥१२॥
पुनि संग लिये उद्धव सुराम ।
आये प्रसन्न अक्रूर धाम ॥
अक्रूर देखि आये गुपाल ।
उद्धव समेत सँग कामपाल ॥१३॥

छप्पय०—लखि अक्रूर गुपाल सहित उद्धव संकर्सन ।
आनंदित अति उठिव भयौ तन मन सुख वर्षन ॥
राम क्रस्न सों धाइ मिले हीतल करि सीतल ।
फिरि उद्धव कहँ भेंटि मिली बिधि मनहुँ महीतल ॥
पुनि पुनि प्रणाम करि वेद बिधि सनमान्यौ त्रिपदी सुकरि ।
आसन सु अर्घ पूजा बिरचि दिव्याम्बर मनि अग्र धरि ॥१४॥

तन सुगंध अति रुचिर हार मुक्ता पहिराये।
चरन प्रछाल बिसाल अमल जल सीस चढाये॥
करि दंडौत सप्रेम जोरि अंजुलि मृदु बोलिव।
सीस नवाइ सिहाइ करत अस्तुति मतु खोलिव॥
भगवान भूतभावन सुनहुँ कंस सगन खल बध करिव।
जदुकुल दिनेस अति भय हरिव निजधारे जग सुख धरिव॥१५॥

ललितपद०—

तुम जुगबंधु ब्रह्म जग कारन जगमय थिर चर व्यापक।
परमातम कर्ता खलहर्ता जनभर्ता गुनज्ञापक॥
ऊखलादि के चरित अनेकनि किये भक्ति हित भारी।
बरनि सकै सो को सारै गुन श्री बिराट बपुधारी॥ १६ ॥

तुव माया मोहित ब्रह्मादिक हम किहि बिधि पहिचाने।
नारदादि सनकादिक लौमस सेस महेस भुलाने॥
धरि सत रूप औतरे जदुकुल भूमिभार के नासक।
श्री बसुदेव तनय ह्वै प्रगटे जगन जीव आभासक॥ १७ ॥

वेदरूप मेरे ग्रह आये अति पवित्र कुल कीन्हें।
जापग तोइ भई श्री गंगा तिहु पुर पावन चीन्हें॥
सुहृद सनेही सरनागत प्रभु अति कृतज्ञ सुनि लीन्हें।
कामदानि कल्यान रूप हरि दरस कृपाकरि दीन्हें॥ १८॥

दो०—जोगेस्वर अखिलेस लखि पूजी तन मन आस।
भक्तनि के सुख दैन कौं नरबर रूप प्रकास॥ १९ ॥

सो०—सुत दारा धन धान, बंधु ज्ञाति तन मोह बस।
सरन देहु घनस्याम, जग निबर्त करि भक्ति दै॥ २० ॥

गीतिका०—

अक्रूर की सुनि बिनय इहि बिधि बिहँसि हरि बोलत भये।
तुम भक्त राजा गुरु हमारे अनुज श्री पितु के ठये॥

अक्रूर अस्तुति जोग हौ तुम प्रीति दिन दिन धारिये ।
करि प्रेम पोसन हमहिं देखौ दया देव बिचारिये ॥ २१ ॥
सो साधु तुम से पूजिबै हित देह पर काजहिं धरैं ।
जो देव सिलमय काल बहु फल सोहु तुरतहिं फल करैं ॥
सो साधु तुम मम दृष्टि उत्तम भक्ति भाव पतीजिये ।
मम सुहृद पंडव हस्तिनापुर खबर तिनकी लीजिये ॥ २२ ॥
सुत पंच पंडव पण्डु केते तात बिन अति दीन हैं ।
ध्रतराम्ट्र के पुर में बसैं त्रप पुत्रबस द्रगहीन हैं ॥
सो देखि उनकी है कहा गति तौन रीति बिचारिये ।
अक्रूरजू कीजै क्रपा अब बेगि उत पग धारिये ॥ २३ ॥

दो०—वह ब्रतांत सब समुझि जिय तिहि बिधि करिय बिचार ।
सुहृदन के सुख दैन कौं हम लीन्हौ अवतार ॥ २४ ॥
इहि प्रकार अक्रूर कौं दै अज्ञा अनुसार ।
राम क्रसन उद्धव सहित पितु ग्रहकौं पग धार ॥ २५ ॥

सो०—हरि अज्ञा सिर धार गजपुर गे अक्रूर जू ।
पहुँचे जाइ उदार लखी हस्तिनापुर प्रभा ॥ २६ ॥

छप्प०—हस्तिनपुर में जाइ सबै मिलियौ हितु मानिय ।
श्री ध्रतराम्ट्र नरेस द्रौन भीसम गुन ज्ञानिय ॥
बिदुर अम्बिका देवि बहिन कुन्ती फिर भेटी ।
पण्डव हिये लगाइ तपन तनकी सब मेटी ॥
कछु दिन रहि करि लखिय गति दुस्ट चौकरी समुझि लिय ।
दुर्जोधनादि करनादि खल राजाहू पुनि कपट हिय ॥ २७ ॥

दो०—बिदुर गेह अक्रूरजू गये देखि यह रीति ।
कह्यौ बिदुर ब्रतांत सब करि सनमान सप्रीति ॥ २८ ॥

चौ०—लाक्षाग्रह बिसकथा सुनाई, सुनि अक्रूर हिये पछिताई ।
बूझी बहुरि बिदुर हरि लीला, कही सबिधि अक्रूर ससीला ॥

जनम आदि जे कथा जताई, कंस आदि लीला सब गाई ।
सो सुनि बिदुर नैन जल ढारे, पुनि धरि धीरज बचन उचारे ॥
खबर करत कबहूँ हरि प्यारे, हम सेवक सब भाँति तिहारे ।
सरनागत पालक श्रीस्वामी, भक्तपच्छकर अन्तरजामी ॥३१॥
कबहुँ हमारौ सुमिरन करहीं, भ्रातन की जु खबर मन धरहीं ।
श्रीबलदेव दया के सागर, सुहृद सहाइक बल के आगर ॥३२॥
सुनि अक्रूर इहाँ हम रहिये, सत्रुनि बीच महादुख सहिये ।
खबर करैं जो स्याम हमारी, तौ दुख मिटैं होंहि सुख भारी ॥३३
बिना पिता पांडव दुख पावत, बिना कृष्ण को सुख सरसावत ।
जब हरि कृपा दृस्टि करि हेरैं, मिटैं दुस्ट तब सब सुख नेरैं ॥३४
सुतनि सहित कुंती अति सोचति, बिन हरिदेव सु को दुख मोचति
बिन हरि सरन दीन कौ को है, गावत बेद सकल जग जो है ॥३५॥

दो०—मोच्छ रूप संसार में जगत रूप आधार ।
दीन बन्धु श्रीकृस्न हैं और न दुतिय उदार ॥ ३६ ॥
इहि प्रकार बहु बिलप करि कुंती कहत पुकार ।
चरन सरन राखौ हरी सुनिजे बेगि गुहार ॥ ३७ ॥
दासनि कौं सुख देत हौ सदा दुःख करि दूर ।
दीनबंधु श्रीकृस्न पन रह्यौ सब्द भरिपूर ॥ ३८ ॥

सो०—बिपति बिदारन स्याम सुमिर प्रथा रोदन करिव ।
पुजवत जन मन काम, निर्भय कीजै रिपुन तैं ॥ ३९ ॥

दो०—कुंती के दुख बैन सुनि बिबुध बिदुर अक्रूर ।
समुझायौ सुनियै प्रथा हरि करि हैं दुख दूर ॥ ४० ॥
कुन्ती कौं सम्बोध करि, श्री अक्रूर सुजान ।
बिदा हौन न्रप ढिग गये, बोले बचन प्रमान ॥ ४१ ॥

लितपद०—

तुम कुरुबंस सुजस बर्धन हौ न्रप सिंघासन बैठे ।
धर्मसील उरबी के पालक न्रप संतन कुल जेठे ॥

पंडु गये सुरलोक सोक तजि पांडव तुवे आधीना।
समदरसी भुवपाल चाहियतु मम पर बुद्धि कही ना॥ ४२॥
राजधरम है प्रजा पालिबौ त्रप यामें कम करहीं।
सो दूसन त्रप कौ जस हरता तन तजि जमपुर परहीं॥
मम पर छोडि होहु समदरसी, पंडुपुत्र सम राखौ।
केतिक काल ख्याल है तन कौ समझि प्रेममय भाखौ॥४३॥
नेकी बदी रहत थिर भू में त्रप बिबेक युत चहिये।
सुत कलित्र धन होत कौन कौ करता श्रीपति कहिये॥
कर्म करै जैसो जो ताकौ तैसोई फल होवै।
को बुध करै निरय की सौदा जियत लोक जस खोवै॥४४॥
गीतिका०—
करि पाप जे धन संग्रहैं, ते अन्त अति दुख पावहीं।
जिहि सिद्ध अर्थ करथौ नहीं, नर जोर धनु सु गमावहीं॥
सुत बंधु दारा तजत ताकौं, अन्त कोउ न बूझहीं।
जग स्वप्न माया मोह बस जे, बिमुख धर्म न सूझहीं॥ ४५॥
दो०—महाराज सरबज्ञ तुम जानत सबै बिचार।
पंडु पुत्र निज सुतनिमें कीजै सम बिबहार॥ ४६॥
छप्पय०—
बचन कहत ध्रतराष्ट्र सुनहु अक्रूर महामति।
कहे मधुर तुम बैन सील साने साँचे अति॥
सो सुन अति सुख भयव धरम धन संजुतबानी।
मो मन मोह भुलान पियै बिस ज्यौं मतिहानी॥
तातै सुबैन ठहरै न हिय जिमि चपला नभ मानिये।
चंचल चलाक चित लोभ में भावी कछू न जानिये॥ ४७॥
जदुकुल लिय अवतार कृस्न अखिलेसुर देवा।
भूमिभार के हरन करन जन सुख सुभ भेवा॥

अबिनासी निरमाय जगतमाया बस करहीं।
तिहि गति अपरंपार पार का पंडित परहीं॥
धृतराष्ट्र बचन इमि उच्चरे मुनि अक्रूर बिचार जिय।
द्रुत होइ बिदा परनाम करि मथुरा काज पयान किय॥ ४८।

दो०—श्री अक्रूर बिदा भये मथुरा पहुँचे आइ।
राम कृस्न सौं मिलि जथा कथा कही सब गाइ॥ ४९॥

इति श्री सज्जनकुल कैरवानन्द वृन्ददायिन्यां शरच्चन्द्र चारु मरीचिकायां द्विज गुमान विरचितायां श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिकायां अक्रूर गमन पाण्डव कुशल प्रश्नो नामा सप्तविंशप्रकाशः समाप्तः।

फलस्तुति

दो०—पढन सुनन श्रवनन करै नेम रचित मन ल्याइ।
ताहि मुक्ति भक्तै मिलै अर्थ धर्म फल पाइ॥ १॥

सो०—व्रत संजम धरि ध्यान सप्त दिवस महँ पाठ करि।
तारत तुरतहिं 'मान' सप्त गोत सत ससि कुलह॥ २॥

दो०—कृस्नचंद्र की चन्द्रिका जे नर करिहैं गान।
पाइ परमपद प्रथम ही ब्रह्म सौख्य को जान॥ ३॥
कृस्नचंद्रिका चंद्रसम सज्जन चित्त चकोर।
हियसर कुमुदिनि मन प्रफुलि चाहत नंदकिसोर॥ ४॥
नारद सारद सेस सिव गनपति गुन नहिं गाइ।
सो गुन गाइ 'गुमान' कह गाइ जथामति पाइ॥ ५॥

समाप्त।

शब्दार्थसूची

पृष्ठ संख्या १

सिन्धुरमुख=हस्तीके समान मुख गणेश

सीकर=बूँद

प्रभंजन=जोर की हवा

बिघन अघन=विघ्न रूपी पाप

पटल=समूह

विभंजन=नाश करने वाला

हेरम्ब=गणेश

मोट=गठड़ी, मोटा

वोट=ओट,सहारा

पृष्ठ २

ताटंक=कान का एक गहना

कबरी=बाल गूँथना

मंदार=कल्पवृक्ष

पारिजातिक=कल्पवृक्ष

मकरन्द=फूलों का रस

मद्धि=मध्य में

बिभ्रत=शोभायमान

चोल=कपड़ा

पृष्ठ ३

अस्मि=आत्मा, हूँ

औढर ढरनि=अचानक, या थोड़े में प्रसन्न होने वाला

नाधे=लगाये ।

पृष्ठ ४

पिस्ट=पीठ

प्रनतार=प्रण को पूरा करने वाला

कुलिस=वज्र

महारव=घोर शब्द

धाय धर=दौड़कर पकड़ लिया

पृष्ठ ५

दिनमन=सूर्य

रावनार=रावण के शत्रु, राम

कल्हार=सफेद कमल

छके=तृप्त हुए

सगबगात=घबराये हुए

पृष्ठ ६

प्रदवन पद=प्रद्युम्न के चरण

सप्तपुरी=अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, कांची, उज्जैन, द्वारिका

पृष्ठ ७

रुज=रोग

पृष्ठ ८

मृगदानबिन्द=कस्तूरी तिलक

पुलिनि=टापू

लोल=चंचल

राकेश= पूर्ण कलायुक्त चंद्रमा

रहस=एकान्त, रास

छहर=बिखरना

द्वैपायन=व्यास

पृष्ठ ६

मनमतंग=मनरूपी हाथी

तरनी=नाव

सरनी=शरण

रावरे=आपके

अयान=नासमझ

पृष्ठ ११

कहिबी=कहूँगा–यह बुन्देलखंडी भाषा का प्रयोग है।

पृष्ठ १२

अजातरिपु=जिसका कोई शत्रु नहीं हुआ

सत सिन्धु-रिंछु=सात समुद्र के समान

उर मुक्ति मनि माला भर्यौ= हृदय मोक्ष की इच्छा रूप मणियों से भरा हुआ था।

अज्जान=आजानु, घुटनों तक

झला=झलक

पृष्ठ १३

आसीविष=एक प्रकार का साँप

सचि=इकट्ठा करके

विरंचि=ब्रह्मा

उरग=साँप

पुरिष=पुरुष

मख=यज्ञ

पृष्ठ १४

मग=मार्ग, रास्ता

सुर्धुनी=आकाश गंगा

सरनी=सीढ़ी, मार्ग

पृष्ठ १५

करहाट गंध=कमल की जड़ की सुगन्ध

गौ हिय सिहाय=हृदय शीतल हो गया

पृष्ठ १६

पुहुमिपाल=पृथ्वीपाल, राजा

लीक=सत्य, अलीक का निषेधार्थ उड़ाकर यह रूप बनाया गया है

बलाहक=मेघ

पृष्ठ १७

नव असकंध=भागवत का नवम स्कंध

बहोरि=फिर

अनिन्न मति=अनन्य मति

परजन्नि=पर्जन्य, मेघ के समान गम्भीर

पृष्ठ १८

खगराज=गरुड़

उबले=उभारा
मेलदे=सहारा देकर
भेल=देर
रंचक=ज़रासी
हय हीस=घोड़े का हिनहिनाना (इन पद्यों में महाभारत के युद्ध की समता समुद्र से की गई है)

पृष्ठ १६

जवकारी=वेगवान
अतालक=वेग से, उतावले

पृष्ठ २०

पारावार=समुद्र
अर्भक=बालक

पृष्ठ २१

सर्वनिह=सब में वर्तमान
मघवा=इन्द्र
द्वारावती=द्वारिका
नाकि=लाँघकर
रहस=रास
अतुल आतुल=बहुत बेचैन। यहाँ 'आतुर' ही कवि का अभिप्राय है
अबधमातुल=किसी से न मारा जा सकने वाला मामा, कंस

पृष्ठ २२

जन मोख=जनों को मोक्ष
गद=व्याधि

पृष्ठ २३

सुरभी=गाय

पृष्ठ २४

अब्जआसन=ब्रह्मा

पृष्ठ २५

प्रलोदक=प्रलयोदक, प्रलय का जल
कलिष्ठित=दुःखी
मेदनी=पृथ्वी
गीरबान=देवता
निर्जरा=देवता
श्रुतिरंध्र=कान

पृष्ठ २६

सासनि=आज्ञा
रसा=पृथ्वी
बासब से=इन्द्र के समान
माथुर=मथुरा का राजा

पृष्ठ २७

इभ=हाथी
कालकौल=काल के ग्रास
गै=गहे, पकड़े
कोह=क्रोध
हालबाल=हालचाल, दशा

पृष्ठ २८

अखण्डल=इन्द्र
बिलज्जासुर=निर्लज्ज राक्षस

पृष्ठ २९

जितेक=जितने

प्रसूतपथ=प्रसूतिगृह, सोबर

पृष्ठ ३०

कौतूह=कौतूहल, आनन्द

भेव=भेद

पृष्ठ ३१

साँकरैं=साँकल, जंजीर

अनी=सेना

सल्ल=शल्य देश

कैकै=केकय देश

मालौ=मालवा

आभीर=अहीर

जादौ=यादव

सकाने=शंकित चित्त, दुखी

पृष्ठ ३२

फननायक=शेषनाग

अर्क=सूर्य

अर्भ=बालक

पृष्ठ ३३

उत्सालमें=आनन्द में मग्न होकर

मंगलै दंगलै=मंगल का दंगल, अधिक आनन्द

पृष्ठ ३५

पुलोमजानाथ=इन्द्र

सुपर्ण=देवता

पृष्ठ ३६

वोजस=ओजस, कान्तिमान्

सुनासीर=इन्द्र

पृष्ठ ३८

परजन्न=पर्जन्य,मेघ

सर्वरी=रात

नैरित्य=नैऋत्य पश्चिम दक्षिण का कोना

पुरट=सोना

मनिजटित=मणिजटित

मृगदान=कस्तूरी

पृष्ठ ३९

कम्बुकंठ=शंख सी ग्रीवा

अज्ञानबाहु=आजानु बाहु, घुटनों तक लम्बी भुजायें।

पृष्ठ ४०

जातरूप=सोना

गुलफ=पाँव के आस पास की गाँठ, टख़ना।

सुलफ=कोमल

जव=यवरेख

सुर्धुनी=अकाश गंगा

पृष्ठ ४१

सुचि तीय=स्वस्थचित्त स्त्री

दुचिती=दुविधा में

पृष्ठ ४३

हर्बरात=हड़बड़ाते हुए, जल्दी में

दर्बरात=वेग से धड़धड़ा कर

घर्घरात=धड़धड़ा कर, तेजी से बहती हुई।

झलानि=बौछार

पृष्ठ ४४

महरि=यशोदा

तलपहि=पलंग पर

करियहतूता=करतूत, काम करके

निगड=जंजीर, रस्सी

हनिदये=बन्द कर दिये

सँसाइध=साँस रोक कर

पृष्ठ ४६

विंधगिरिन्द=विन्ध्याचल पर्वत

बरियायी=जबर्दस्ती

पृष्ठ ४७

भै=भय

भोई=भर गया

सुपर्वान=देवता

धूर्जटि=शिव

सत्रहा=शत्रु मारने वाला

पृष्ठ ४६

अजिर=आँगन

पृष्ठ ५०

हरद=हलदी

अगिवानि=स्वागत

वाहीन=बर्ही मोर,

खूँदै=रौंदै

चाँडे=उन्मत्त

पृष्ठ ५१

अचक=अयाचक, तृप्त

लरजैं=बजैं

ऊसही=वैसे ही

सौज=सौगात

पृष्ठ ५२

राहैं=देखती हैं

दीह=दीर्घ

पृष्ठ ५३

करु=मालगुजारी

बधु=घात, बध

पृष्ठ ५४

जकीसी=हैरान सी

उगीसी=उत्सुक

पृष्ठ ५५

जरद=पीली

पृष्ठ ५६

परिव=पड़ा

दरिय=गुफा

जमल=दोनों

उसलि=उखाड़ कर

पृष्ठ ५७

उरकि=उत्सुक होकर

हिरकैं=ढूंढना

पृष्ठ ५८

अस्तन=स्तन

पृष्ठ ५६

गाडेयकी=गाड़ी की

पारेयकी=सुलाने की

व्यौंतु=उपाय

पृष्ठ ६०

अँगोछि=अँगोछे से पोंछ कर

ओंछि=बाल सँवार कर

दइत्त=दैत्य, राक्षस

पृष्ठ ६१

डगे=डिगे, कँपे

गोड=घुटने

सँसाइगे=संशयित हो गये

पृष्ठ ६४

साचार=संस्कार आदि

आचार=आचार्य, पुरोहित

पृष्ठ ६५

गोठ=गोष्ठ, गौशाला

पृष्ठ ६६

वोज=ओज

वोपन=चमत्कार

चालन=चलना

पृष्ठ ६७

विवि=दो

पृष्ठ ६६

बायौ=खोला

पृष्ठ ७१

करिचोंपि=चाव करके

पृष्ठ ७२

सीकन=छींका

झोकिन=झरोखों से

पृष्ठ ७३

रुरी=गिरी

हरबर=शीघ्र

अस्तविस्त=अस्तव्यस्त

पृष्ठ ७४

टरके=सरके

स्यों=समेत

घरके=धड़के

बरके=बच गए

पृष्ठ ७५

बेर बेर=बारबार

पृष्ठ ७६

रजतगिरि=कैलास

भव=महादेव

भृत्य=सेवक

सुअनि=लड़के

राजराज=कुबेर

पृष्ठ ७८

ललै=कृष्ण को

पृष्ठ ७६

का भा=कुत्सित आभा

पृष्ठ ८०

टरैं=बुलावें

हेरैं=देखें

पृष्ठ ८२

अचयो=आचमन किया

धौरहर=महल

फटिक=स्फटिक

अटन=अट्टालिका, अटारी

पृष्ठ ८३

सकोलि=इकट्ठा करके

ताकिकैं=देखकर

बाई=खोल कर

सीद्यमान=दुःखी

पृष्ठ ८४

खिसियाई=खीझकर, क्रुद्ध होकर

जा जुरथौ=जाकर जुट गया

वोटैं=बचाव, आड़

फका=टुकड़े फाँक

पृष्ठ ८६

खबर करि=स्मरण कर

रूँधि=रोक कर

हुतासन=आग

मो ग्रसिवे=मुझे निगलने के लिए

पृष्ठ ८७

हियगाढ=संकट में पड़ गया

नाकनटी=स्वर्ग की वेश्या

पृष्ठ ८६

पौगंड=६ वर्ष से १२ वर्ष की अवस्था

पृष्ठ ६०

अभिरे=चारों तरफ

पाबोले=पाकर बोले

पाबोले=भोजन करके बोले

पृष्ठ ६१

अब्जोनि=ब्रह्मा

जकि=हैरान

अगतार=प्रथम, पहिले

हरवा=शीघ्र

ताकत=देखत

कौर=ग्रास

मुरकि=लौटकर, मुड़कर

हते=थे (बुन्देली क्रिया)

पृष्ठ ६२

वैस=वय, अवस्था

ढिग=समीप

चौंप=चाव

खिरकन=खिड़कियों या दरवाजों से

कच=बाल
ऊँछि=सँवार कर
कलेऊ=कलेवा
रम्हाई=गाय की बोली

पृष्ठ ९४

ईखद्=ईषत, थोड़ी
भृगुचरन=भृगु ऋषि की लात का चिह्न
सकेलि=समेट
अहमेव='मैं ही हूँ' ऐसा मद अहंकार
ठई=स्थित हुई
अनामय=निष्कलङ्क, शुद्ध
अक्षि=आँख

पृष्ठ ९५

बेर बेर=बारबार

पृष्ठ ९६

ग्रह=घर

पृष्ठ ११३

दावागि=वन की आग
उरगार=उरग+अरि, गरुड़
रमनक=रमनक नाग का द्वीप, टापू
नागाधि=नागराज, या नागालय

पृष्ठ ११४

वैनतेय=विनता पुत्र गरुड़
पन्नगासन=पन्नग+अशन, गरुड़
जवमान=वेगवान
आयुत=१० हजार

पृष्ठ ११५

झंझानि=झंझा पवन
सु गरुव=बड़े भारी
आसीाबस=साँप
बरज्यौ=रोका
हटके पर=रोकने पर
सोधति=शोध, पता
ऊक=लपट या प्रकाश
खर्भर=खलबली

पृष्ठ ११६

जक्त=जगत, संसार
चंड अंसन=तेज किरण

पृष्ठ ११७

मित्रजा=यमुना
खौंसत=लगाते थे
गिरिधातु=गेरू
उत्सर्प=उछलना
बाहु छेपनत =हाथ फेंकना, एक तरह का खेल

पृष्ठ ११८

गदेलतु=विचारता
हैल=उस स्थान को कहते हैं जहाँ दौड़ने की सीमा बनाई जाय

पृष्ठ १२०

पवि=वज्र

मगलौं=मार्ग तक

पृष्ठ १२१

कृसानु=आग

ऊक=लपटें

दबियौ=दबा लिया

गैल=रास्ता

अकूत=प्रचण्डता, अधिकता

तूत=विस्तार

गंगाइ=दबी हुई या भराई हुई आवाज

पृष्ठ १२३

दबराइ=हड़बड़ाकर

हर्बराइ=हरबर=जल्दी

तर्फरे=तलफना

संघट्ट=समूह, झुंड

रँभा=गाय की बोली

ककुभ=दिशाएँ

संघात=समूह

भहरि=भहराकर

पीलयौ=पी लिया

पृष्ठ १२३

सुवैन=सुवेणु, सुन्दर बाँसुरी

गोरज=गोधूलि

पृष्ठ १२४

परिवेष=चन्द्र का घेरा

पृष्ठ १२५

निबिड=घने

रूरै=शब्द करै

पृष्ठ १२६

जुग्गिननि=खद्योत, जुगनू

इन्द्रबधू=वीर बहूटी

दाध्यौ=जलाया

तत्त=तत्त्व

पृष्ठ १२७

निगम=वेद

आगम=तंत्र शास्त्र

अर्क=मदार, आक

परसे=स्पर्श

निबरौ=ज्ञान

पृष्ठ १२८

चकतालि=धब्बों की शकल में, कहीं कहीं

बीथी=सड़क

अजोख=जिसको तोला न जा सके, अत्यधिक

पृष्ठ १२९

गंडानि=गण्डस्थल, कनपटी

बृन्दादलै=पत्तों वाली टहनी

पृष्ठ १३०

आघ्रान=सूँघने

चक्षुश्रवा सूननि–साँप के बच्चों के

इच्छन=दृष्टि

पृष्ठ १३१

उमाहन=उत्साहों, बहुवचन

अम्बर=आकाश

पृष्ठ १३३

सिकता=रेत

पृष्ठ १३४

पुलिन=तट

प्रजन्त=पर्य्यन्त

सीदित=दुखी

पृष्ठ १३५

निरौनी=अत्यधिक आनंद देने वाली

कर्कौरे=खरौंचती थीं

निचोल=वस्त्र

अम्बु अधिपति=वरुण

पृष्ठ १३८

मुरकि=लौटकर

पृष्ठ १४२

निबेरिकै=निर्णय करके

पृष्ठ १४३

धकरयौ=धड़कन भरे हुए

पृष्ठ १४४

डगन पसारै=पैर आगे धरती पर

नरहर=पिंडली के ऊपर की हड्डी

पुरहूत=इन्द्र

तूत=करतूत प्रायः सभी जगह 'तूत' से करतूत ही अर्थ निकलता है

सथ्थ=सत्य, सचमुच

पृष्ठ १४७

सुपर्वान=देवता

जंभभेदी=इन्द्र

धूम्रयोनि=मेघ

बोरबै=डुबोने

झेलु=देर, विलम्ब

घोस=शब्द

पविपात=वज्रपात

आकूत=मतलब, यहाँ इस का 'दुःख' अर्थ है।

पृष्ठ १४८

हला=हल्ला, धावा

जल मुका=मेघ

गौनके=चलने से

कूट=पर्वत

सीकरै=बूँद

ठिले=ठेल दिये गये

कीलाल=पानी

तमी=अन्धकार

पृष्ठ १४९

धराधर=मेघ

सक्यौ=सकपकाया

उमनी=उफनी

नरेज=तेजी

मघ=मार्ग, रास्ता

निघटे=कम हो गये

गल=गैल, मार्ग

पृष्ठ १५०

सिगरथौ=सब

पृष्ठ १५१

उपइन्द्रा=विष्णु, कृष्ण

पृष्ठ १५३

तरक=तड़तड़ाकर, तेजी से

ललहि=लल्ला, कृष्ण को

गरदकरि=धूल में मिला कर

पृष्ठ १५४

बारौ=बालक

गहवरगरे=रुद्धकण्ठ

पृष्ठ १५५

कामधुका=गाय, कामधेनु

नाजक्यौं=अभिमान कैसे होसकता है

पृष्ठ १५७

असाच=झूठ

अगोऊ=अगोप्य, स्पष्ट, सामने

हरौल=हरा भरा,

पृष्ठ १५८

सुनासीर=इन्द्र

गोतीत=इन्द्रियों से परे

कामधुका=कामधेनु

मंदार=कल्पवृक्ष

रसा=पृथ्वी

पृष्ठ १६३

गुनह=अपराध

पृष्ठ १६५

ओम=उत्साह

पृष्ठ १६६

पटतर=समानता

मरीचैं=किरणें

बनजबन=कमलवन

तार=किरणें

तवकन=तमकन, तेजी

दाम=माला

तुनक=पतली

तुंग=ऊंची

बितान=चाँदनी

पृष्ठ १६७

भौंरनि=गुच्छों पर

मकरंद=फूलों का रस

कुहरि=कुहुर, कोयल का शब्द

पाठीन=एक प्रकार की मछली

पृष्ठ १६८

नीरज=कमल

नीरद=मेघ

मेडें=किनारे
पुरट क्रीट=सोने का मुकुट
मयूखन=किरणें
निर्मोख=केंचुल
कुसेसय=कमल

पृष्ठ १६६

रसना=रस्सी

पृष्ठ १७०

लंक=कमर

पृष्ठ १७१

मससानी=मिसमिसाई
डबकीले=डबडबाए हुए
रुझैकै=देखकर

पृष्ठ १७२

मलयन=मलयज, चंदन
सरोरौ=सरोरुह, कमल
सभागैं=भाग जाती हैं

पृष्ठ १७३

कल्लोलिनी=नदी

पृष्ठ १७४

कादम्बिनी=मेघमाला
गोह=पिरो कर
पाटीन=पाटिया, गले का एक गहना
गुल्क=गुलिक, माला के दाने
खोर=तिलक
भारथी=इसका अर्थ यहाँ चन्द्र या सूर्य मालूम होता है । भा= शोभा का रथी ।

पृष्ठ १७५

कसीसैं=निर्दयता
कासार=तालाब
गोहैं=गूँथ रही है
हंसजा=यमुना
वृसाकन्निका=राधा

पृष्ठ १७६

इन्दिरा धाम=स्वर्ग
मन्दाकिनी=आकाश गंगा
पुष्पधन्वा=कामदेव
मौचंग=एक प्रकार का बाजा

पृष्ठ १७८

रूंज=एक प्रकार का बाजा (बाजत पवन निशान पंचविधि रूंज मुरज सहनाई)
डौरून=डमरु
मुर्ज=मुरज मृदंग
हलीबंध=हली बलराम के भाई, कृष्ण
आलात=जिसका छोर जलता हो और घुमाने से गोल मालूम हो

पृष्ठ १८०

ढौरे=हवा करती थी

गदेलै=पीछे हटाती थी
सुधुनी=आकाश गंगा
रिच्छ=ऋक्ष, नक्षत्र

पृष्ठ १८१

तुम्बरै=गन्धर्व विशेष
पंचनाराच=कामदेव

पृष्ठ १८२

कलधौत=सोना
मंगैं=माँग

पृष्ठ १८५

सिखीसिखा=आग की लपट
जोन्ह=ज्योत्स्ना, चाँदनी
परिरम्भन=आलिंगन

पृष्ठ १८६

नैपरी=झुक पड़ी

पृष्ठ १६१

सिन्धुरगति=गजगामिनी
तरनी=नौका

पृष्ठ १६८

कलापी=कोयल, मोर

पृष्ठ २००

परिवेख=चंद्र मण्डल
गुलक=मोती के दाने
सिलाह=कवच
अंगद=बाजूबन्द

कण्ठीरव=सिंह
कौंचनग=क्रौंच पर्वत की मणि

पृष्ठ २०८

उल्मुख=मशाल

पृष्ठ २०६

भग्गिव=भागा
झपट्टिव=झपटा
चपट्टिव=चपेट
कुप्पिव=कुपित हुआ
मुक्किव=छोड़ा
कन्हरि=कृष्ण ने

पृष्ठ २१४

पुहुमी=पृथ्वी

पृष्ठ २१७

अच्छि=तोड़कर

पृ० २१६

कुरक=कुड़कुड़ाकर
संनंध्य=सांनिध्य, सामने

पृ० २२०

आंख मिचामिच=आँख मिचौनी

पृ० २२१

खिभिरयौ=खलबली मचा दी

पृ० २२३

आइसु=आज्ञा

पृ० २२४

अँकवार=आलिंगन

खिरक=बांस के टट्टरों का द्वार

अबार=देर, अबेर

दुकन=दिक होना, नाराज होना

पृ० २२५

बलवह=बलभद्र

पृ० २२६

गोइ=छिपाकर

पृ० २२७

ककुभकेस=दिशा के किनारे

पृ० २२८

सिंदन=स्यंदन, रथ

पृ० २२९

विग्रह=शरीर

पृ० २३०

पारखत=पारिषद, सभ्य

पृ० २३२

वैडुर्ज=वैदुर्य, नीलम

पारावत=कबूतर

नटसाल=टूटा हुआ काँटा

छतवारि=छज्जे पर

पृ० २३४

अत्तक=भृत्य

बगरे=बिखरे

पृ० २३८

श्रोनधारा=शोणितधार, रुधिरधार

पृ० २४०

कबंध=धड़

पृ० २४२

गडदार=महावत

पृ० २४५

ब्याम=व्यायाम

पृ० २४८

नागभत्ती=गरुड़

मौलि=मुकुट

दुरद=हाथी

पृ० २५७

हदान=हयदान

पृ० २६४

घनसार=चंदन

पृ० २७०

उताइल=उतावली से, शीघ्रता से

पृ० २७१

रावरौ=आपका

पृ० २७३

गजपुर=हस्तिनापुर

शुद्धाशुद्धि पत्र

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
७	१	बरख्यो	बरख्यौ
,,	१०	रूज	रुज
१२	१६	विजय	बिजय
२५	१४	बिरचि	ब्रह्मादि
२५	१७	बाधि	बोधि
,,	३४	करौं	करौ
२७	१	कस	कंस
३३	१९	आयु	आपु
३४	१२	षट	पट
३८	११	अघरात	अधरात
४१	८	विपति	बिपति
४२	११	तव	तब
,,	२१	अप	अब
,,	२३	करौ	करौं
४६	६	भरबी	भैरवी
५१	१२	सुखरित	मुखरित
२	४	मुंज	मंजु
५८	१६	जान्यो	जान्यौ
६३	७	सग	सन
•	८	भजिभ जिचलत	भजि भजि चलत
८६	७	सों	सौं
८९	६	यौगंड	पौगण्ड
९०	१६	बौले	बोले
१२९	११	सौरम	सौरभ
,,	,,	धारें	धारै
,,	२२	घनीपुष्प मयी	घनीपुष्पमयी
१३०	१५	सग	सँग
,,	,,	गेरि	गोप
१३५	२३	अंगताई	अंग ताई
,,	२४	आई	आईं
१३७	१७	मानिक	मानिकैं
१३९	२१	खाइ	पाइ
१४१	८	सौंज	सौज
१४३	६	बोध	वोघ
,,	१६	वकतीं	बकतीं
१४४	९	बरखर	बरखन
,,	२५	पगार	अगार
१४७	८	बोरबै	बोरिबे
,,	१५	घरकै	घेरकैं
१४८	२४	रूझैं	सूझैं
१४९	१	लेख	लेखैं

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
१५३	१	अचिज	अचिर्ज
१५९	२५	वोकि	बोलि
१६२	२	काहूँ	काहू
१६६	२	फरतु	करतु
१८४	१०	चाह	चाहैं
१८५	१३	भारथ कहि	भार थकहिं
१८७	१८	चलाई	चलाइ
१९७	१२	करि	करी
२०२	१६	सोम	साभ
२०५	१९	ने	नैं
,,	२२	तिनहि	तिनहिं
२०९	२४	परताप न	परतापन
२१४	४	मदँध	मदंध
२१९	३	सूरता जी	सूर ता जी
,,	४	धुधरत	धुधरं
,,	१८	पछिले	पाछि
२२४	१	कब	कर्बा
२२५	१२	वंचन	बचन
२२६	१	टग	दृग
२३३	२४	पहिर	पहिं
२३७	१५	अब	अबेर
२४०	६	सिरक बंध	सिर कबंध
२४३	६	लित	मिलत
२४६	९	गातवहिनिर्बल	गातनिर्बल
२४८	१	सिख	सिखा
२४९	१६	भूमिय	भूमिय
२६०	२५	सनि सनि	सुनि सुनि